ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत बोध

(भाग-3)

पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर
विभिन्न स्थानों पर हुए
पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय

अन्तिम जिनेश्वर महावीरस्वामी के प्रवर्तमान शासन में अनेक आचार्य भगवन्तों, मुनि भगवन्तों ने स्वयं की प्रचण्ड साधना द्वारा मोक्षमार्ग को जीवन्त रखा है। उनकी सातिशय दिव्य प्रज्ञा के निमित्त से प्रवाहित अनेक परमागमों में मोक्षमार्ग का रहस्य स्पष्ट करके रखा है। उनके प्रत्येक वचनों में अमृत नितर रहा है। हम सभी का महान सद्भाग्य है कि ऐसे परमागम आज भी मौजूद हैं।

प्रवर्तमान काल हुण्डावसर्पिणी नाम से प्रचलित है ऐसे निकृष्ट काल में मोक्षमार्ग का जीवन्त रहना एक आश्चर्यकारक घटना है। भगवान की दिव्यध्वनि की मधुर गुंजार जिनागमों में जीवन्त है ही, परन्तु उनको स्पष्ट करनेवाला कोई नहीं था। समाज घोर रुढ़िवाद में जकड़ा हुआ था। क्रियाकाण्ड में धर्म माननेवाले तथा मनवानेवालों का प्रभाव वर्तता था। सत्य मोक्षमार्ग क्या है, जन्म-मरण का अन्त किस प्रकार आये, आत्मिकसुख किस प्रकार प्राप्त हो—इत्यादि अनेक विषय प्रायः लुप्त हो गये थे।

ऐसे घोर तिमिरमय काल में एक ऐसे सूर्य का प्रकाश हुआ जिसने सम्पूर्ण समाज को नयी दिशा प्रदान कर असीम-अमाप उपकार किया है। सौराष्ट्र के उमराला जैसे छोटे से गाँव में हम सभी के तारणहार परमोपकारी ज्ञान दिवाकर अज्ञान का नाश करनेवाले, कृपालु कहान गुरुदेव का जन्म हम सभी को तारने के लिये ही हुआ है। स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्म हुआ तथा उसी में दीक्षित भी हुए तथापि सत्य की शोध, आत्महित करने की प्रचण्ड भावना से आपश्री शाश्वत् सुख के पन्थ में आये। आपश्री के गुणगान क्या करना! जिसकी कोई कीमत नहीं हो सकती ऐसे परम निर्मल मोक्षमार्ग को आपश्री ने स्वयं की निष्कारण करुणा से प्रकाशित कर वर्तमान समाज पर अनन्त-अनन्त उपकार किया है।

आपश्री का आत्मा के प्रति प्रेम, मुमुक्षु किस प्रकार मोक्षमार्ग तक पहुँचे ऐसी निष्कारण करुणा, जिनदेव-जिनधर्म, जिनवाणी आदि के सातिशय बहुमान से नितरती आपश्री की वाणी मुमुक्षुओं को सराबोर कर देती है। प्रत्येक वचन में प्रवाहित अमृत मुमुक्षुओं को अजरामर पद की प्राप्ति कराता है। जिस शुद्धोपयोग में से बाहर आने पर आपश्री का उत्पन्न हुआ विकल्प मुमुक्षुओं के जन्म-मरण मिटा सकता हो तो आपश्री के शुद्धोपयोग की क्या बात करना, आपका अन्तरंग वैभव तो जो स्वसंवेदन ज्ञान में आवे, वही जानता है।

ऐसे परमपवित्र स्वसंवेदन को जन्म देनेवाली प्रशममूर्ति धन्य अवतार पूज्य भगवती माता चम्पाबेन, धर्मरत्न, धर्म की शोभा इत्यादि अनेक प्रशंसायुक्त शब्दों से पूज्य गुरुदेवश्री मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे। पूज्य गुरुदेव ने परमागमों के ऊपर प्रवचन करके मोक्षमार्ग का रहस्य तो खोला ही है, परन्तु अन्तिम वर्षों में पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर भी आपश्री ने प्रवचन किये हैं। पूज्य गुरुदेव प्रवचनों में अनेक बार फरमाते थे, हमने कभी कोई शास्त्र छपाओ, ऐसा नहीं कहा। परन्तु यह 'बहिनश्री के वचनामृत' पुस्तक एक लाख छपाओ। ऐसी सर्व प्रथम आज्ञा दी। ऐसा तो

उनके वचनामृत में क्या भरा है ? यह तो प्रस्तुत प्रवचनों का जब मुमुक्षु रसपान करेंगे, तब वे स्वयं ही समझ जाएँगे।

जो गूढ़ सिद्धान्त परमागमों में से निकालना, समझना, मुमुक्षुओं को कठिन लगता है उन्हीं सिद्धान्तों को सादी भाषा में वचनामृत में स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मुमुक्षुओं के कलेजे की कोर समान पूज्य बहिनश्री की सातिशय प्रज्ञा में रही हुई गहराई, उनकी विशालता, मुमुक्षुओं की प्रत्येक उलझन दूर करनेवाले उनके वचनामृत वास्तव में इस काल की अजायबी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न जगह हुए कुल 21 प्रवचन तीसरे भाग में लिये गये हैं। सर्व प्रथम इन प्रवचनों को सी.डी. से उतारकर, जहाँ कोष्ठक भरने की आवश्यकता लगी, वहाँ कोष्ठक भरा गया है तथा वाक्य रचना पूर्ण की गयी है। जहाँ कुछ सुनाई नहीं दिया वहाँ '....' करके छोड़ दिया गया है। पाठकवर्ग स्वयं की समझ अनुसार अर्थ घटन करे यही प्रार्थना है। 25 प्रवचन पहले भाग में, 25 प्रवचन दूसरे भाग में तथा 21 प्रवचन तीसरे भाग में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की 104वीं मंगल जयन्ती प्रसंग पर प्रथम भाग (गुजराती लिपि में) तथा द्वितीय भाग भगवान महावीर निर्वाण दिवस के अवसर पर प्रकाशित किया गया। अब यह तृतीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। शब्दशः प्रवचनों को उतारने और सम्पादित करने का कार्य श्री नीलेशभाई जैन भावनगर द्वारा किया गया है। इन्हीं प्रवचनों को प्रस्तुतरूप से हिन्दी में प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। यदि प्रस्तुत प्रवचनों में किसी प्रकार की क्षति रह गयी हो तो देव-शास्त्र-गुरु की शुद्ध अन्तकरणपूर्वक क्षमायाचना करते हैं। मुमुक्षुवर्ग से विनम्र प्रार्थना है कि यदि उन्हें कोई क्षति ज्ञात हो तो सुधारकर हमें भेजें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन www.vitragvani.com पर रखे गये हैं।

अन्त में, प्रस्तुत प्रवचनों का रसपान करके सभी जीव शाश्वत् सुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की

देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार

दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और

उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

क्रम	प्रवचन क्रं०	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१	१४	११-४-१९८०	३३, ३६, ४३	१
२	१५	१२-४-१९८०	४४, ४५, ५५, ६२, ७१	१३
३	१६	१५-४-१९८०	२०१	२५
४	१७	०७-८-१९७९	१, ३०६, २१७, २२१, २२३	३९
५	१८	०८-८-१९७९	२३२, २४१, २४५, २४७, २४८, २५१	५३
६	१९	०९-८-१९७९	२६६, २८१, २८५, ३२८	६९
७	२०	०९-८-१९७९	३२८, ३२९, ३३१, ३४२, ३८४	८५
८	२१		१७-२१	१०२
९	२३	२५-५-१९८०	२०४, २०८	११३
१०	७६३	१७-४-१९७९	११, २१, ३३	१३१
११	७६४	१८-४-१९७९	३४, ३६, ४५	१४६
१२	७६५	१९-४-१९७९	४५, ६०	१६०
१३	७६६	२०-४-१९७९	७९, ८१	१७४
१४	७६७	२१-४-१९७९	८२, ८६, १००	१८९
१५	७६८	२२-४-१९७९	१०५, १३६, १३८	२०५
१६	७६९	२३-४-१९७९	१३९, १४०, १५९	२२१
१७	७७०	२४-४-१९७९	१६१, १६२, १६८, ४०१, ३४९	२३५
१८	७७१	२५-४-१९७९	१६२, ४०१, १६७, १७८	२५०
१९	७७२	२६-४-१९७९	१८०, १८२, १९३	२६६
२०	७७३	२७-४-१९७९	१९७	२८१
२१	७७४	२८-४-१९७९	१९८, २००	२९७

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्‌गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्‌श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्‌भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत बोध

(भाग-३)

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर विविध प्रवचन)

१

चैत्र कृष्ण - ११, शुक्रवार, दिनांक - ११-४-१९८०
वचनामृत - ३३, ३६, ४३, प्रवचन-१४ (DVD 15)

'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

वचनामृत, ३३ बोल। '**जिसे लगी है, उसी को लगी है**'... यहाँ से शुरु किया। आहाहा! एक ही आत्मा अनादि सनातन सत्य, राग के विकल्प से भिन्न—ऐसी जिसे अन्दर लगन लगी है। '**जिसे लगी है, उसी को लगी है**'... आहाहा! ऊपर-ऊपर से वांचन

करे, श्रवण करे, वांचन करे और बोले, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। **परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है,...** वस्तु बदलती है। परिणमन होता है, पर्याय है। आहाहा! क्या कहना है? कि शुभाशुभभाव होंगे, क्योंकि परिणमनशील है; इसलिए वे हैं। **कूटस्थ नहीं है;...** कूटस्थ ध्रुव है, परन्तु पर्याय में पलटता है। एकरूप वस्तु रहे, ऐसा वस्तु का स्वरूप पर्याय का नहीं है। यह बात सिद्ध करनी है। है?

कूटस्थ नहीं है;... कूटस्थ अर्थात् पलटती अवस्था बिल्कुल नहीं है, ऐसा नहीं है। पलटती है और ध्रुव है। **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** आहाहा! ४९३ में आ गया है। शुभभाव भी काला नाग है। ऐसा आ गया है। आहाहा! चैतन्य अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप में शुभभाव भी काला नाग (लगता है)। अर्थात् आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध जहर-जहर है। आहाहा! तो भी होंगे, ऐसा कहते हैं। वीतराग नहीं है, सम्यक्त्व हुआ है, तो भी वीतराग नहीं है, इसलिए वे भाव होंगे। है न?

शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य... अर्थात्? वस्तु जो है... जरा सूक्ष्म बात है। वस्तु है, उस पर दृष्टि छूटकर शुभाशुभभाव को छोड़ने जाएगा (तो) मिथ्यात्व होगा। सूक्ष्म बात है। आहाहा! है? **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** जब तक वीतराग नहीं है, तब तक वे परिणाम होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा अर्थात्? द्रव्य ज्ञायकस्वरूप की ओर दृष्टि छोड़कर शुभ और अशुभभाव को छोड़ने जाएगा तो दृष्टि पर्यायदृष्टि— मिथ्यादृष्टि होगी। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! है? **उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा।** शून्य अर्थात्? वस्तुस्वरूप हाथ नहीं आयेगा। शून्य हो जाएगा। अकेला राग दिखेगा। दूसरा कुछ नहीं दिखेगा। शून्य हो जाएगा और शुष्क हो जाएगा। अन्तर आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उस ओर की दृष्टि को छोड़कर शुभाशुभ को छोड़ने जाएगा तो शुष्क और शून्य हो जाएगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! छोड़ना नहीं।

निश्चय से तो आत्मा शुभपरिणाम का नाश करनेवाला भी नहीं है। ३४वीं गाथा में आया है। समयसार। आहाहा! ऐसा मार्ग! प्रभु चिदानन्दस्वरूप को दृष्टि में से छोड़कर तू शुभ और अशुभराग नाश करने जाएगा तो शून्य हो जाएगा, शुष्क हो जाएगा और ३४वीं गाथा के हिसाब से राग का नाश (कर्ता) आत्मा नाममात्र है। आहाहा! अर्थात् क्या कहा?

आत्मा राग का नाश करता है, यह भी नाममात्र है। क्यों ?—कि वस्तु जो है, वह दृष्टि में जहाँ आयी, वहाँ राग वस्तु में है नहीं। है नहीं, इसलिए राग का नाश आत्मा करेगा, ऐसा है नहीं। है जरा सूक्ष्म बात। आहाहा!

(समयसार) ३४वीं गाथा में तो ऐसा ही कहा है कि राग का भी नाश आत्मा करे, यह नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का नाश करे, वह आत्मा नहीं है। आहाहा! गजब बात है, भाई! अन्तर की चीज़ आनन्दकन्द प्रभु की जिसे लगन लगी, उसे तो राग का नाश करना भी नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। राग सहज उत्पन्न होकर नाश हो जाएगा। उत्पन्न होगा, यह तो कहा। शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उत्पन्न होंगे। वीतराग नहीं है, इसलिए उत्पन्न होंगे। आहाहा! यह तो बड़ी बातें! तो भी उनका नाश करूँ, ऐसा लक्ष्य ज्ञानी को नहीं रहता। आहाहा!

ज्ञानी राग के विकल्प शुभभाव को भी नाश करने जाए तो दृष्टि वहाँ अकेली पर्याय पर जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! तत्त्वज्ञान वीतराग त्रिलोकनाथ के मुख में से निकला हुआ परम तत्त्व सत्य बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! शुभाशुभ परिणाम होंगे। कूटस्थ नहीं है, तथापि वहाँ यदि नाश करने जाएगा, उन पर लक्ष्य रखकर (तो शून्य हो जाएगा)। लालचन्दभाई! आहाहा! सूक्ष्म बात तो ऐसी है, भाई! शुभाशुभभाव होंगे, परन्तु उनसे लाभ तो नहीं है, परन्तु उनका नाश करने जाएगा, वहाँ तेरी दृष्टि पर्याय (दृष्टि) और शुष्क हो जाएगा। सूक्ष्म बात, प्रभु! आहाहा!

अन्दर में तो भगवान है, बापू! सभी आत्माएँ अन्दर भगवान हैं। राग को आत्मा ने स्पर्श भी नहीं किया है। आहाहा! राग—शुभराग, दया, दान, अरे! तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा राग, उस राग को भी प्रभु ने स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! ऐसी चैतन्य की अस्तित्त्व दशा कूटस्थ जो है, उस पर दृष्टि के जोर से राग का नाश करने का भी उसे अवसर है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? है जरा सूक्ष्म बात।

'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। बहुत खेद करने जाएगा, राग का नाश करने जाएगा तो तेरी बुद्धि-दृष्टि बदल जाएगी। आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़ता है। **उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा।** आहाहा! **इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना।** अर्थात् क्या ? एकदम शुभ और

अशुभ को नाश करने के जोर में दौड़ नहीं जाना, ऐसा कहते हैं। शुभ और अशुभ को नाश करने में एकदम दौड़ नहीं जाना, नहीं तो दृष्टि... वस्तु पड़ी रहेगी। आहाहा! ऐसा अधिकार अब। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, प्रभु! अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवलियों ने (ऐसा वस्तु का स्वरूप देखा है)।

जो वस्तु शुद्ध चैतन्यघन, जिसे राग का स्पर्श हुआ नहीं, कर्म को तो छुआ नहीं... आहाहा! भगवान आत्मतत्त्व, कर्म तत्त्व जो जड़ है, उसे तो तीनों काल में कभी स्पर्श ही नहीं किया। अभी जैन में यह पुकार है (कि) कर्म के कारण विकार होता है, कर्म के कारण शुभभाव होता है, कर्म के कारण यह होता है। भगवान! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह जड़ अजीव कर्म है, उसे जीव स्पर्श भी नहीं करता और वह स्वयं स्पर्श नहीं करता तथा कर्म भी इसे स्पर्श नहीं करता। मात्र अपनी पर्याय में शुभाशुभभाव होगा। आया न! वह कर्म से होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

उस समय की अवस्था में उसे जन्म का क्षण—राग की उत्पत्ति का क्षण होगा तो होगा, कर्म से नहीं। आहाहा! परन्तु उसे एकदम नाश करने के लिये दृष्टि वहाँ पर के ऊपर जाएगी तो शुष्क हो जाएगा। आहाहा! यहाँ बात यह सिद्ध करनी है कि चैतन्यस्वरूप है, उसमें दृष्टि दे, उसका आश्रय ले, उसका अवलम्बन ले। उसके अवलम्बन को ले नहीं, कमजोरी के कारण राग तो होगा, परन्तु उसे नाश करने की उतावल करना नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,... क्या कहते हैं? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी शुभाशुभभाव में जुड़ता है। उल्लास के कार्य में भी जुड़ता है। उल्लास दिखता है। आहाहा! इन्द्र भी समकिती एकभवतारी नन्दीश्वर द्वीप में घुँघरु बाँधकर नाचते हैं तो भी उनकी दृष्टि में उल्लास शुभभाव पर नहीं है। बाहर में दिखता है। बाहर में उल्लास दिखता है। तीन लोक के नाथ के सन्मुख ऐसे कूदते हैं।

मुमुक्षु : ताण्डव नृत्य करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाचते हैं। कहा न, घुँघरु बाँधकर नाचते हैं। तथापि वह उल्लास दिखता है, उल्लास के कार्य में भी जुड़ते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, हों!

साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,... गहराई में खटक रहा ही करती है कि उस चीज़ में मैं नहीं हूँ। वह मुझमें नहीं है और मैं उसमें नहीं हूँ। ऐसी खटक तो रहा ही करती है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! साधकपना अलौकिक चीज़ है। साधारण लोग साधकपना मानकर मनवा ले शुभभाव से... आत्मा आदि, यह मार्ग अत्यन्त भिन्न है, भाई! आहाहा! भाव आयेगा, कहते हैं। उल्लास भी दिखायी देगा, तो भी... आहाहा! अन्दर से गहराई में खटक रहा ही करती है। सन्तोष नहीं होता। अर्थात्? वह भाव-शुभभाव आयेगा, उससे सन्तोष नहीं होता। आहाहा! सन्तोष तो अन्तर आनन्दस्वरूप में सन्तोष है। वह सन्तोष शुभभाव में नहीं होता और शुभभाव आये बिना रहेंगे भी नहीं तथा शुभभाव में उल्लासपना दिखे बिना भी नहीं रहेगा। आहाहा! उल्लासपना दिखायी देगा तो भी वहाँ सन्तोषपना है नहीं। उस राग से भिन्न भगवान आत्मा वहाँ धर्मी जीव की दृष्टि चिपटी है।

चाहे जैसे कार्य के प्रसंग में धर्मी की दृष्टि द्रव्य के ध्रुव से हटती नहीं है। चाहे जैसे प्रसंग में। आहाहा! उस विषय के भोग में भी होता है ज्ञानी, तथापि दृष्टि धर्म का ध्रुव जो ध्यान है, उसमें से दृष्टि हटती नहीं है। आहाहा! अजर प्याला है, बापू! साधकपने का मार्ग अजर-अजर है। कहते हैं कि अन्दर खटक रहा ही करती है। **सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है...** आहाहा! मुझे करना तो पूर्णानन्द की प्राप्ति है। वह अशुभभाव में सन्तुष्ट नहीं होगा। बीच में आयेगा, उल्लास भी दिखेगा, तो भी वहाँ सन्तुष्ट नहीं होगा। उसमें स्वयं का अपनापन मानकर अटकेगा नहीं। अन्दर में खटक रहा ही करेगी। आहाहा! ऐसा मार्ग!

ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,... मुझे जो करना है, वह बाकी रह जाता है। स्वरूप में स्थिर होना, पूर्ण स्थिर होना, पूर्ण वीतरागता करना, यह गहरी खटक निरन्तर रहा ही करती है। **इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भगवान की भक्ति के भाव भी आते हैं, वहाँ वह सन्तुष्ट नहीं होता। आहाहा! उस राग को भी काला नाग देखता है। समकिती राग को भी काला नाग—जहर देखता है—दुःख देखता है। क्योंकि शुभराग है, वह आकुलता—दुःख है। भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द है। आहाहा! तो भी पूर्ण नहीं है, इसलिए वहाँ शुभाशुभ तो आयेंगे, तो

भी वहाँ सन्तुष्ट नहीं होगा। अन्तर सन्मुख के झुकाव में से हटेगा नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है,... शुरुआतवाले को। शुभभाव छूटकर अन्दर में ज्ञायकभाव हाथ न आवे, तब तक जरा उलझन भी होती है। **परन्तु इधर-उधर न जाकर...** आहाहा! परन्तु पर्यायबुद्धि के सन्तोष में न जाकर। आहाहा! **वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।** अन्दर में से शोध निकालता है। आहाहा! चैतन्यस्वरूप पूर्णानन्द के नाथ को अन्दर में से खोजकर अन्दर उलझन निकाल डालता है। उलझन नहीं होती। यह पैराग्राफ जरा सूक्ष्म है। शुरुआत की दशा में भी थोड़ी उलझन होती है, अन्दर में जाने के लिये खटक रहा करती है तो भी शुभभाव आये बिना नहीं रहते। तो भी वहाँ सन्तुष्ट नहीं होता, तो भी खटक रहा करती है कि वहाँ से हटकर इसमें (स्वभाव में) आना। यह खटक रहा ही करती है। इतने बोल सिद्ध किये हैं। आहाहा! है?

इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है। आहाहा! उलझन में से शोधता है अर्थात्? जरा रागादिभाव आते हैं, उनमें से हटकर अन्दर में शोध निकालता है। उलझन में से अर्थात् राग में से शोध निकालता है, ऐसा नहीं है। राग आवे तो भी खटक अन्दर में आनन्द में रही है। इससे उसका मार्ग अन्दर में शोध लेगा और उसे अनुभव हो जाएगा, परन्तु यह रीति और यह पद्धति होगी तो (अनुभव हो जाएगा)। आड़ी-टेढ़ी कुछ भी पद्धति करने जाएगा (तो) वस्तु हाथ नहीं आयेगी, आड़े रास्ते चला जाएगा। आहाहा! यह बहिन की वाणी अन्तर की है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आड़े रास्ते अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : आड़े रास्ते अर्थात् उस राग के रास्ते। राग आयेगा, राग होगा, ऐसा कहा न? तो भी उसके रास्ते वह नहीं जाएगा। दृष्टि का झुकाव वहाँ नहीं रहेगा। आहाहा! झुकाव अन्दर में रहेगा। अन्दर खटक, अन्दर खटक। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ऐसी खटक में ज्ञायक को खोज लेगा। आहाहा! तैंतीसवाँ बोल है। जरा सूक्ष्म पड़े ऐसा है। शब्द ऐसे हैं। यह मूल चीज़ है।

मूल क्या कहा? कि मूल चीज़ तो कूटस्थ है। परन्तु परिणाम हुए बिना नहीं रहते।

पर्याय में परिणाम है। उन परिणाम में शुभाशुभ परिणाम भी होंगे, तो भी ध्रुव को पकड़ने जाने में तुझे उलझन आयेगी परन्तु उलझना नहीं और उसकी ओर के झुकाव की खटक छोड़कर, अन्दर के झुकाव की खटक को खड़ी कर। आहाहा! समझ में आया? यह ३३वाँ बोल है। फिर कौन सा लेना है? ३६?

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है॥ ३६॥

३६, **जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है...** क्या कहते हैं? आहाहा! आत्मा की वर्तमान ज्ञान की पर्याय का जो व्यापार वह पर सन्मुख ढला हुआ, झुका हुआ है, उसे अन्तर में झुकाना है। आहाहा! **प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,...** यह क्या कहते हैं? पर्याय की ओर की रुचि को छोड़ता नहीं और उपयोग को पलटाना चाहता है। क्या कही यह बात? आहाहा! उपयोग जो है परसन्मुख, उसे अन्तर में झुकाना चाहता है, परन्तु पर की रुचि को नहीं छोड़ता। रुचि अनुयायी वीर्य। जो उसे रुचे, वहाँ वीर्य काम करेगा। रुचि में पोषाण यह आवे, पर्याय राग शुभराग की रुचि में पोषाण आवे और पलटा स्वभाव की ओर जाए, ऐसा नहीं होता। सूक्ष्म बात है, भाई! यह सब (सूक्ष्म है)। आहाहा! अन्तर के रास्ते का मार्ग है, बापू! आहाहा!

कहते हैं... ३६ न? **प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,...** अर्थात् क्या? शुभभाव की रुचि को छोड़ता नहीं और उपयोग को पलटना चाहता है, तो यह तो दोनों विरुद्ध है। आहाहा! **उसे मार्ग का ख्याल नहीं है।** देखा! जिसकी रुचि ही पलटी नहीं, उसे ख्याल ही मार्ग का नहीं है। शुभभाव की भी रुचि रहे और छूटी नहीं और छोड़ता नहीं, उसे मार्ग का ख्याल ही नहीं है। आहाहा! अब मार्ग ऐसा सूक्ष्म लगे। बहिन ने तो लड़कियों में कहा होगा। उसमें से यह लिखावट बाहर आ गयी। अनुभूति में से यह सब बात आयी है। आहाहा!

अभी कितने ही कहते हैं, विद्यासागर (कहते हैं कि) चौथे गुणस्थान में अनुभूति

नहीं होती। ऐसा वे कहते हैं। अनुभूति नहीं होती। क्योंकि लोगों को क्रियाकाण्ड में सब समाहित कर देना है। पंच महाव्रत और यह और त्याग और बाहर का नग्नपना... परन्तु अनुभूति के बिना यह सब व्यर्थ है। सम्यग्दर्शन में ही अनुभूति होती है। अन्तर सन्मुख झुकाव में अनुभव अर्थात् आनन्द का स्वाद चौथे गुणस्थान में (आता है)।

सर्व गुणांश वह समकित, सर्व गुणांश वह समकित।—ऐसा श्रीमद् का वचन है न? अपने यह टोडरमलजी का वचन रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है (कि) प्रत्येक जितने गुण हैं, उन सब गुणों का एक अंश व्यक्तरूप से वेदन में आवे, उसे समकित कहते हैं। समझ में आया? जितने संख्या से गुण हैं... आहाहा! अनन्तानन्त, उसकी जहाँ अन्तर रुचि हुई और उसका जहाँ पोषाण हुआ तो जितनी संख्या है, उतनी संख्या का अंश व्यक्त-प्रगट में आता है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द तो आता है... शुरुआत यहाँ से हो जाती है। चौदहवें (गुणस्थान में) अयोगी—अकम्प हो जाता है। अकम्प का अंश चौथे से शुरु हो जाता है। आहाहा! क्योंकि जितने गुण हैं, उन सब गुणों का एकरूप द्रव्य जो है, उस द्रव्य का जहाँ अनुभव हुआ, जितनी शक्तियाँ हैं, उसकी सब शक्तियों में से पर्याय में व्यक्तरूप से एक अंश व्यक्तरूप से सब शक्ति का व्यक्तरूप अनुभव होता है, उसे सर्व गुणांश वह समकित कहा है। आहाहा! यह चौथे में योग के कम्प का अंश नाश होता है। आहाहा! अयोगी चौदहवें में होता है। चौथे से अयोग का एक अंश शुरु हो जाता है। आहाहा!

यह यहाँ कहा जाता है। है? आहाहा! रुचि का पलटा कर। रुचि अन्दर में जितने गुण हैं, उन सबकी रुचि कर, ऐसा। **उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,...** पोषाण अन्दर... आहाहा! अकम्पस्वरूप की भी रुचि वहाँ... हो जाती है। आहाहा! समयसार में आता है। क्या है? समकिती के सब गुणों का अंश नाश हो जाता है। सब गुणों अर्थात् अवगुण। समकित होने पर सब गुणों का एक अंश व्यक्तरूप से नाश हो जाता है और एक अंश व्यक्तरूप से प्रगट होता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह समयसार के कलश में आता है। भावार्थ में आता है।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! (जो प्रथम) उपयोग को पलटाना (चाहता है), उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। आहाहा! उपयोग को राग में ही रखा करता है और सम्यग्दर्शन

प्राप्त करना चाहता है, उस तरह प्राप्त नहीं होता। आहाहा! विधि भी कठिन है। अनन्त-अनन्त काल में नहीं हुआ अपूर्व अचिन्त्य निर्विकल्प... आहाहा! जो चीज़ है, उस चीज़ के अंश का नमूना उसकी पर्याय में स्वाद में आ जाता है। जो वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड है, उतने सब गुणों का रुचि के कारण रुचि। उपयोग पलटना चाहता है परन्तु रुचि को नहीं पलटाता। तो अनन्त रुचि उसे नहीं है। अनन्त गुण की उसे रुचि नहीं हुई है। आहाहा! सूक्ष्म तो है, भाई!

उपयोग सहज ही पलट जाएगा। प्रथम उपयोग का पलटा कहे... आहाहा! शुभ और अशुभ का पोषाण, रुचि छूटने पर उपयोग का पलटा सहज हो जाएगा। उपयोग सहज अन्दर आनन्द में आ जाएगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है। **मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।** मार्ग की—अन्तर के मार्ग की विधि का यह क्रम है। एक जगह ऐसा भी कहते हैं कि जिसमें विधि और निषेध दोनों नहीं है। परन्तु यह विधि अस्तिरूप है। वह विधि ऐसा करूँ... करूँ... करूँ... ऐसी है और यह तो अस्तिरूप विधि। यही क्रम है कि पूर्णानन्द के नाथ को रुचि में पोषाण में लाने से उपयोग पलट जाता है। उपयोग परसन्मुख है, वह आनन्द के नाथ की रुचि करने पर, उसका पोषाण (होने पर) आनन्द का सागर उसे पोसाने पर उपयोग पलट जाता है। उपयोग सहज उस ओर ढल जाता है। आहाहा! **यथार्थ विधि का यह क्रम है।** लगता तो सूक्ष्म है। आहाहा! वस्तु (की) तो यह स्थिति है। फिर कौन सा लेना है?

मुमुक्षु : ४३-४३।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४३? लिये हैं सब तुमने? आहाहा!

जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरा गाँव कौन?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरे माता-पिता कौन हैं?' तो कहता है 'मेरी माँ', उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है, उसे हर एक प्रसङ्ग में 'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसी की निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है॥ ४३॥

दृष्टान्त देते हैं। **जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो,...** आहाहा! **उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या ?' तो कहता है 'मेरी माँ',...** एक ही धुन लगी होती है। नजरों से देखा है। पोरबन्दर। पोरबन्दर के उपाश्रय के पास उसकी माँ बिछुड़ गयी, लड़की रह गयी। पुलिस आकर पूछती है, चाहे जो तेरी पहचान क्या ? तेरी गली कौन सी ? एक मेरी माँ... मेरी माँ... एक ही रटन लगी रहती है।

जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि 'तेरा नाम क्या ?' तो कहता है 'मेरी माँ',... अर्थात् कि उसे माँ की धुन लगी है। मेरी माँ कहाँ गयी ? माँ कहाँ गयी ? अँगुली पकड़कर चलता हो और बिछुड़ गयी हो। आहाहा! **'तेरा गाँव कौन ?' तो कहता है 'मेरी माँ',...** एक ही लगन लगी होती है। मेरी माँ के अतिरिक्त उसे कहीं सुहाता नहीं है। **तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरे माता-पिता कौन हैं ?' तो कहता है 'मेरी माँ',...** आहाहा!

उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है... आहाहा! **उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से...** यहाँ शब्द है। आहाहा! आनन्द के नाथ का जहाँ पोषाण होता है, रुचि अनुयायी वीर्य जहाँ अन्दर जागता है, पलटा-रुचि के कारण उपयोग बदलता है। आहाहा! वास्तविक रुचि से, **आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है...** आहाहा! दुनिया को दिखाना नहीं, दुनिया में मुझे माने, यह क्षयोपशम दिखलाना नहीं। आहाहा! मुझे कुछ आता है, ऐसी क्षयोपशम को भी जिसे बाहर बताना नहीं है। आहाहा!

समाधितन्त्र में तो यहाँ तक कहा है, अरे! मैं समझाता हूँ, यह विकल्प उन्माद है। आहाहा! यह राग है। समझाता हूँ, दूसरे को उपदेश देता हूँ, सत्य उपदेश देता हूँ, ऐसा जो विकल्प, वह उन्माद है। आहाहा! क्योंकि राग है, वह स्वभाव नहीं है। स्वरूप में उस विकल्प का तो त्रिकाल अभाव है। त्रिकाल अभाव है, इसमें आकर उपदेश करता है, वहाँ कहते हैं कि आहाहा! अरे! मैं उन्माद में आ गया। मेरा नाथ अन्दर स्थित रहा और इस विकल्प में आ गया। उपदेश का विकल्प करने पर। आहाहा! जिसे विकल्प की रुचि का पोषाण नहीं है, उसे रुचि सुहाती नहीं, इसलिए उस ओर का झुकाव उसे सुहाता नहीं। आत्मा... आत्मा... आत्मा...

जो माँ से पृथक् पड़ा है, (उसे पूछे कि) तेरी माँ कौन? कहता है माँ। तेरा नाम क्या? कहे, मेरी माँ... मेरी माँ... मेरी माँ... चाहे जो पूछे कि तेरी सखी कौन? कहे, मेरी माँ। तेरी गली कौन सी? कहे, मेरी माँ। आहाहा! इसी प्रकार जिसे आत्मा के आनन्द की रुचि जमी है, उसे किसी राग की रुचि का अंश भी (सुहाता) नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। मूल बात है। आहाहा!

सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है, उसे हर एक प्रसङ्ग में 'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है,... आहाहा! रटन, घोलन, घोंटन। आहाहा! जिसे आत्मा ज्ञायकभाव प्रगट करना है, उसे उसका रटन और घोंटन हुआ ही करता है, रहा ही करता है। आहाहा! जैसे उसे उसमें से (माँ से) पृथक् पड़ा लड़का, उसे चाहे जो पूछे तो उसकी माँ-माँ कहता है। उसी प्रकार यहाँ ज्ञायक... ज्ञायक... आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान एक समय की पर्याय का संसार। इसके अतिरिक्त पूरा भगवान, उस द्रव्य को तो संसार भी नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। आहाहा!

वस्तु जो सम्यग्दर्शन का विषय, (वह तो) त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है, अविनश्वर है, शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। आहाहा! ३२० गाथा। समयसार की ३२० गाथा, यह जयसेनाचार्य की टीका है। उसे ऐसी लगन लग जाती है, कहते हैं। आहाहा! सकल त्रिकाल निरावरण, सकल निरावरण। मेरी चीज़ को आवरण नहीं है। वस्तु को आवरण होवे तो वस्तु अवस्तु हो जाए। क्या कहा? प्रभु! एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। वस्तु जो त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वह तो त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रतिभासमय शुद्ध पारिणामिक परमभाव। विकल्पमात्र नहीं, मैं अबद्ध हूँ... यह पहले अन्दर आ गया है। मैं अबद्ध हूँ... पहले कहीं आ गया है। है, यह ३७ बोल है। ३७।

'मैं अबद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ' ये विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं... हैं? ३७। **'मैं अबद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ' ये विकल्प...** विकल्पवृत्ति। समयसार में १४२ गाथा में ऐसा आया है कि मैं अबद्ध हूँ और शुद्ध हूँ चैतन्यमूर्ति अखण्ड अभेद—ऐसे विकल्प में आया, उससे क्या? ऐसा संस्कृत पाठ है। किम्? व्यवहारपुंज, दया, दान के शुभभाव को तो कहीं निकाल डाला परन्तु मैं अबद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ, प्रत्यक्ष होने के योग्य हूँ—ऐसा

भी जो विकल्प उठे... आहाहा! उससे क्या? ऐसा संस्कृत है। अमृतचन्द्राचार्य की संस्कृत में यह है कि यहाँ तक आया, उससे क्या? आहाहा! अभी तो जीव कहीं का कहीं, उसके अतिरिक्त अन्यत्र सन्तुष्ट हो जाता है। कहीं शास्त्र का जानपना हो और वह हो जाए, इसलिए मानो अपने को क्षयोपशम हो गया, अपने को कुछ श्रद्धा हुई। बापू! मार्ग अलग, बापू! आहाहा!

कहते हैं कि अबद्ध और अस्पृष्ट तक विकल्प आया, विकल्प आया, उससे क्या? उसमें तुझे क्या लाभ? ऐसा कहा। व्यवहार से तो लाभ नहीं। ऐसा आया है उसमें, भाई-लालचन्दभाई! व्यवहार तो हम छुड़ाते आये हैं। पाठ में आया है। व्यवहार तो हम छुड़ाते आये हैं, परन्तु निश्चय में अबद्ध और अस्पृष्ट का जो विकल्प है, उससे क्या? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! वहाँ तक भी राग, विकार और जहर है। आहाहा! वहाँ तक इसे प्रभु हाथ नहीं आया। इस विकल्प से छूटकर... है?

'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव'—ऐसी लगन बनी ही रहती है,... भले विकल्प है, परन्तु फिर विकल्प में जोर है, ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव का। उस ओर का जोर है। **उसी की निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है।** लो! आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... आज सूक्ष्म पढ़ा, बापू! यह दोनों अधिकार। आहाहा! वस्तु तो यह है। ऐसी ही है, इस प्रकार ही है, ऐसे ही प्राप्त होती है; दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। मैं ज्ञायक और अबद्ध हूँ, ऐसा भी विकल्प छोड़ दे। आहाहा! मैं तो पूर्णानन्द का नाथ हूँ, ऐसा भी शुभ विकल्प राग है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! उसे छोड़ दे, नाथ! तुझे तत्त्व चाहिए हो तो। तुझे तेरा तत्त्व पोसाता हो, वह तत्त्व पोषाता तो राग का पोषाण छोड़ दे। आहाहा! तो वहाँ ज्ञायकपना हाथ आयेगा, ऐसा कहते हैं। देखा? **निरन्तर रुचि एवं भावना रहती है।** निरन्तर पोषाण। आत्मा का आनन्द ही पोषाण रहता है, ऐसा कहते हैं। राग पोसाता नहीं। यह रुचि निरन्तर रहा करती है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२ चैत्र कृष्ण-१२, शनिवार, दिनांक - १२-४-१९८०
वचनामृत - ४४, ४५, ५५, ६२, ७१ प्रवचन-१५ (DVD 15)

रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन, मन्थन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरन्तर बना ही रहता है; उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो, वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो, तथापि अन्तर में खटका तो आत्मा का ही रहता है। 'माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवार के समूह में बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है — 'अरे! मेरी माँ... मेरी माँ!'; उसी प्रकार आत्मा का खटका रहना चाहिए। चाहे जिस प्रसङ्ग में 'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा!' यही खटका और रुचि रहना चाहिए। ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती॥ ४४॥

वचनामृत ४४। मुद्दे की बात है। **रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे...** क्या कहते हैं? आत्मा आनन्द ज्ञायकभाव, भूतार्थ भाव त्रिकाली की रुचि और लगन लगे। **रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे...** कहीं अटके बिना। शुभराग भक्ति आदि के प्रेम में भी अटके बिना। आहाहा! वास्तव में रुचि में स्वयं को आवश्यकता लगे। 'आनन्दस्वरूप, वह मैं हूँ' उसकी दृष्टि में जिसे जोर आवे, **तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं।** दूसरा कोई उपाय नहीं है।

चिदानन्द भगवान के प्रेम की रुचि। इसके अतिरिक्त किसी भी चीज़ के प्रेम में न रुककर, अपने स्वरूप के रुचि की लगन में लगन लगे तो अवश्य वस्तु की प्राप्ति हो।

यह क्रियाकाण्ड और बाहर से प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! क्योंकि वह तो सब विकल्प और राग है। राग है, उस राग की रुचि, अरागी ऐसा वीतरागी स्वभाव राग के रस

के प्रेम से वीतराग का रस कैसे आये? आहाहा! पूरी दुनिया से हटकर एक स्वरूप चिदानन्द के प्रति झुकाव करने पर वास्तव में प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती।

उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिन्तन,... आहाहा! ज्ञायक आनन्द, शुद्ध पवित्र परमानन्द का सागर ऐसा बारम्बार एक ही चिन्तन, एक ही **मन्थन, खटका बना रहता है।** आहाहा! **जिस प्रकार किसी को 'माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरन्तर बना ही रहता है;...** आहाहा! छोटी उम्र में माँ मर गयी हो और उस बालक को उसकी माँ की हृदय में जो खटक रहा करे... आहाहा! मेरी माँ... मेरी माँ... ऐसी जो छोटी उम्र में बालक को दो वर्ष की उम्र में माँ गुजर जाने से उसके घोलन में उसकी माँ ही रहा करती है। आहाहा! दूसरी बात उसे कहीं अन्दर में... नहीं होती। ऐसी खटक निरन्तर रहा करती है।

उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो, वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो,... शुभपरिणाम में भक्ति में उल्लास दिखायी दे, शास्त्र वाँचन, श्रवण में भी उल्लास दिखायी दे, **तथापि अन्तर में खटका तो आत्मा का ही रहता है।** आहाहा! भाषा है। भाव तो अन्दर में है। आहाहा! अन्तर्मुख के आनन्द में जाने के लिये उसकी खटक वहाँ ही रहा करती है। दूसरी किसी चीज में उसे अटकना, रुकना नहीं हो सकता। आहाहा! **'माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुम्ब-परिवार के समूह में बैठा हो, आनन्द करता हो, परन्तु मन तो 'माँ' में ही लगा रहता है...** आहाहा! छोटी उम्र में लड़के की माँ मर गयी हो, देखा है न? आहाहा! उस लड़के के... बाहर से चाहे जैसी चीज़ में रुकना हो। **आत्मा का खटका रहना चाहिए।** तो भी अन्तर तो आत्मा में आनन्दमय ध्रुव चीज़ की अन्दर खटक रहा ही करती है। आहाहा!

चाहे जिस प्रसङ्ग में 'मेरा आत्मा... जैसे उसे 'मेरी माँ' (रहा करता है), उसी प्रकार मेरा आत्मा प्रभु, मैं आनन्द और ज्ञानसागर, मेरा आत्मा प्रभु परमात्मा। आहाहा! मेरा आत्मा, दो बार आया न? **'मेरा आत्मा... मेरा आत्मा!'...** मेरा शब्द में भगवान का आत्मा भी नहीं। आहाहा! यह चैतन्यमूर्ति भगवान एक ही। मेरी चीज़ वह है और वह ही मैं हूँ, ऐसे जिसे अन्तर में खटक रहा करती है। **यही खटका और रुचि रहना चाहिए।**

वही खटक और रुचि रहना। **ऐसा खटका बना रहे तो 'आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।** आत्मारूपी माँ मिले बिना रहती नहीं। आहाहा!

ऊपर का वाँचन और विचार तथा ऊपरी वाँचन आदि में रुक जाए और कुछ थोड़ी धारणा हुई, उसका उसे जानपने का अभिमान आ जाए। मुझे कुछ आता है, मैं दूसरे को समझा सकता हूँ। आहाहा! वहाँ रुकने से उसका प्रभु उसे नहीं मिलेगा। परमात्मा अन्तर में चिदानन्द प्रभु, उसमें जिसे रस लगा, उसे पूरी दुनिया का रस टूट जाता है। पूरी दुनिया का रस टूट जाता। तीन लोक के नाथ के भक्ति का राग भी टूट जाता है। आहाहा! क्योंकि वे परद्रव्य हैं। स्वद्रव्य **'सदव्वा हु सुग्गइ होइ।' 'परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।'** परद्रव्य में किसी का भी विचार और झुकाव में राग ही रहा करता है। वह चैतन्य की दुर्गति है। आहाहा! वह चैतन्य की गति सिद्धगति नहीं मिलती। सूक्ष्म बात है, भाई!

भगवान आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप (है), उसकी खटक रहा करे तो आत्मा मिले बिना रहता ही नहीं। आहाहा! यह क्रिया। यह धार्मिक परिणति, धार्मिक परिणति। आहाहा! शुद्ध चिदानन्द आत्मा की लगनी का जिसे रस लगा, उसे दूसरे किसी में भी रस नहीं लगता। विषय के भोग में जाने पर भी ज्ञानी को जहर लगता है, दु:ख लगता है, काला नाग हो, ऐसा लगता है। आहाहा! धर्मी की दृष्टि में आनन्द का नाथ बारम्बार तैरता है, इसलिए दूसरी चीज में उसे कहीं रस नहीं लगता। आहाहा! है ?... यह ४४ हुआ।

अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता॥ ४५॥

४५, है इसमें ? **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** यह क्या कहते हैं ? पर्याय और राग पर लक्ष्य न रखकर अन्तर का पर्याय के तल में—तल में एक समय की पर्याय के तल में परमात्मा अन्दर विराजमान है। ऐसे तल को खोजकर, उस तल को खोजकर... आहाहा! यह तो कोई बात! अन्तर में भगवान आनन्दसागर के तल को। तल क्यों कहा ? कि पर्याय है, वह ऊपर तैरती है। पर्याय के नीचे अन्तर में अनन्त काल में कभी गया नहीं। पर्यायबुद्धि में से हटकर राग और उसके प्रेम में रहा है। नौवें ग्रैवेयक रहा, जैन दिगम्बर साधु हुआ। आहाहा! ग्यारह अंग का पठन किया परन्तु प्रभु हाथ नहीं आया। क्योंकि उसमें यह आत्मा कहाँ है ? आत्मा तो यहाँ तल में... में से अन्दर जाने पर उसे बाहर की कोई अपेक्षा नहीं रहती। ऐसे आत्मा को... आहाहा! तल खोजकर... शब्द है।

तल खोजकर... इस चैतन्य का तल। एक समय की पर्याय के नीचे, जो... पाताल लोक पाताल। परमात्मा का बड़ा पाताल भरा है। आहाहा! उस ओर नजर करते हुए आत्मा को पहिचान। पर्याय खोजकर आत्मा को पहिचान; राग करके आत्मा को पहिचान या पुण्य करके; व्यवहार करके आत्मा को पहिचान—ऐसा है नहीं। आहाहा! **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** आहाहा! ... भगवान आत्मा अन्दर में बढ़ने के बदले बाहर की धारणा और शुभभाव में रुकने से 'मैंने कुछ किया है और मैं कुछ करता हूँ' ऐसे अभिमान में रुकने से अन्तर के परिणाम में जा नहीं सका। है ?

'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर,... आहाहा! भाषा तो सादी है। भाव बहुत गहरे गम्भीर हैं। आहाहा! शास्त्र का जान कुछ किया, शुभभाव किया, वहाँ उसे लगा कि मुझे अब बहुत आया। मैं बहुत सीखा, मुझे बहुत आया, ऐसे अभिमान में आत्मा की ओर का झुकाव नहीं कर सकता। **वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का...** यह क्या कहते हैं ? यह शुभभाव या शास्त्र का ज्ञान, इससे वस्तु अगाध है। इससे वस्तु अगाध गम्भीर है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान और शुभभाव से चीज़ अन्दर अगाध है। महागम्भीर है। जिससे तल में जाने पर अनन्त-अनन्त आनन्द आवे, ऐसी अगाध चीज़ को भूलकर बाहर की धारणा और शुभभाव में अभिमान हो जाए, वह आगे नहीं बढ़ सकता। आहाहा! है ?

अगाध स्वरूप का... अगाध! आहाहा! अरे! जिसके समक्ष बारह अंग का ज्ञान भी जिसके अगाध स्वभाव के समक्ष कुछ नहीं है। बारह अंग का ज्ञान, चौदह पूर्व का ज्ञान जिसके अगाध स्वभाव की शक्ति के समक्ष उसकी कुछ गिनती में नहीं है। आहाहा! ऐसा अगाध स्वभाव अन्दर भगवान स्थित है, उसके ऊपर दृष्टि कर। आहाहा! **क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;...** साधारण जानना और साधारण शुभभाव (में) अटककर अगाधस्वभाव की ओर का इसे बहुमान है ही नहीं। आहाहा! ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ा। एक-एक अंग में अठारह हजार पद। एक-एक पद में इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक। ऐसे भी अनन्त बार (पढ़ा)। एक अंग के इतने डबल, दूसरे के, तीसरे के डबल करते हुए ग्यारह अंग के डबल कण्ठस्थ किये। आहाहा! परन्तु वह कहीं ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो चैतन्यमूर्ति के स्पर्श में, पूर्णानन्द के नाथ में अन्दर स्पर्श करते हुए अगाध-गम्भीर अगाध स्वभाव में जाने पर... आहाहा!

अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। आहाहा! **ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से...** धर्मी को तो पूर्ण स्वभाव, वस्तु का पूर्ण स्वभाव, अगाध स्वभाव लक्ष्य में होने से... आहाहा! **वह अंश में नहीं अटकता।** आहाहा! अगाध स्वभाव का भान ज्ञानी को होने से ग्यारह अंग के जानपने में या शुभभाव दया, दान, भक्ति आदि में अटकता नहीं। वह तो विकार है। परलक्षी ज्ञान है। भगवान की वाणी सुने (और) यहाँ जो ज्ञान हो, वह भी परलक्षी ज्ञान है। उस ज्ञान से आत्मज्ञान नहीं होता। आहाहा! भगवान की वाणी सुनकर ज्ञान हो, वह ज्ञान भी ज्ञान नहीं है। आहाहा!

अन्तर तीन लोक का नाथ आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान के आश्रय से ज्ञान होता है, भले थोड़ा (हो), वह थोड़ा होने पर भी उसे विज्ञान कहा जाता है। अज्ञानी के ज्ञान को ग्यारह अंग का पठन होने पर भी उसे विज्ञान नहीं कहकर अज्ञान कहा जाता है और थोड़ा भी विज्ञान अन्दर ज्ञान चैतन्यस्वभाव का ज्ञान, थोड़ा भी ज्ञान... वह आता है। चौदहवीं गाथा के अर्थ में। चौदहवीं गाथा। थोड़ा भी ज्ञान, उसे विज्ञान कहा जाता है और ग्यारह अंग के पठन को भी अज्ञान कहा जाता है। इसे ज्ञान कहा जाता है, उसे अज्ञान कहा जाता है। आहाहा! करने का इसे बहुत है, भाई! अगाध महाप्रभु विराजता है। उसमें जाना,

वह अनन्त पुरुषार्थ, अनन्त चैतन्य-चमत्कारी पुरुषार्थ है। अनन्त चैतन्य-चमत्कारी पुरुषार्थ है। वह साधारण पुरुषार्थ से यह पता हाथ में आवे ऐसा नहीं है। आहाहा!

अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। आहाहा! **पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ,...** आहाहा! पूर्ण स्वभाव जो है, वह प्रगटे तो भी था, वह प्रगट हुआ; इसलिए ज्ञानी को उसमें कुछ अधिकपना नहीं लगता। क्योंकि उसका उसे अभिमान नहीं आता। आहाहा! **स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है ?** चैतन्य जागती ज्योति जलहल अनन्त गुण के स्वभाव के भण्डार से भरपूर भगवान जहाँ जागृत हुआ। आहाहा! उसे कहते हैं, नवीन कुछ लगता नहीं। वह प्रगट हुआ होने पर भी नवीन नहीं लगता। अज्ञानी को धारणा थोड़ी बहुत जहाँ हो, (वहाँ) उसे ऐसा हो जाता है कि अपने को आता है। इस जानकारी के ज्ञान में रुकने से आगे नहीं जा सकता। आहाहा!

इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता। आहाहा! ज्ञानी को ग्यारह अंग का जानपना होने पर भी, नौ पूर्व की लब्धि होने पर भी उसका उसे—धर्मी को अभिमान नहीं होता। कहाँ अगाध स्वभाव और कहाँ नौ पूर्व का ज्ञान। पामररूप से वह तो है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में एक गाथा है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा। धर्मात्मा को जब आत्मज्ञान होता है, तब भले चौदहपूर्व और बारह अंग का ज्ञान होता है तो भी वह ऐसा जानता है कि अरे! केवलज्ञान के समक्ष यह तो पामर / तुच्छ है। मैं तो पामर हूँ। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय के समक्ष बारह अंग का ज्ञान (पामर है)।

बहिन में भी आता है कि अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग एकदम पारायण कर जाए तो भी क्या ? आहाहा! अन्तर चिदानन्द भगवान आत्मा निजस्वभाव का पता न ले और पर में रुक जाए, उसे आत्मा हाथ नहीं आता। उसे सम्यग्दर्शन सच्चिदानन्द प्रभु के ज्ञान में उसका ज्ञान उसे नहीं होता। ज्ञान में उसका ज्ञेय नहीं होता। ज्ञान की एक समय की पर्याय में पूरा भगवान ज्ञेय होना चाहिए। आहाहा!

'उसमें नवीन क्या ?' कहते हैं, प्रगट हुआ; जो स्वभाव था, वह प्रगट हुआ, उसमें

नवीन क्या ? **इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।** आहाहा! बारह अंग का ज्ञान और आत्मज्ञान होने पर भी धर्मी को उसका अभिमान नहीं होता। आहाहा! जिसका गर्व गल गया है, जिसका मान गल गया है। आहाहा! जिसकी माया नाश हो गयी है, जिसके लोभ के अंश... होते नहीं। लोभ के अंश नाश हो गये हैं - ऐसा जो भगवान आत्मा अकषायभाव से अनुभव में आने से पर की जानकारी का उसे अभिमान नहीं होता। आहाहा! भाषा तो सादी है। है ऊँचा। फिर कौन सा बोल आयेगा ?

चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है॥ ५५॥

५५। **चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती,...** यह बात आ गयी है। चैतन्य की भावना, चैतन्य की भावना। अस्ति सिद्ध की है। चैतन्य पूर्णानन्द का नाथ, उसकी ओर की भावना कभी निष्फल नहीं जाती। **सफल ही होती है।** यह बात अपने पहले आ गयी है। चैतन्य की परिणति, शुद्ध चैतन्य की परिणति सफल हुए बिना नहीं रहती। उसका फल आये बिना नहीं रहता। सिद्धपद आये बिना नहीं रहता। और यदि न आवे (तो) जगत को शून्य होना पड़े अर्थात् द्रव्य का नाश हो। द्रव्य की परिणति से द्रव्य की पूर्णता की दशा न हो तो वह गति ही न रहे। और गति न रहने से चौदह ब्रह्माण्ड का भी नाश हो जाए। यह बात आ गयी है। आहाहा! भाषा सादी है, भाव जरा गहरे हैं। इस प्रकार मानो समझ गये हैं, समझ में आ गया है, ऐसा लगे। आहाहा!

अन्दर में अगाध भगवान आत्मा को देखने पर... आहाहा! **चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है।** केवल (ज्ञान) होता ही है। चैतन्य की भावना होने पर परमात्मपद होता ही है। आहाहा! **भले ही थोड़ा समय लगे,...** स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ करने में जरा समय लगे परन्तु भावना सफल होती ही है। पूर्णानन्द के नाथ की भावना करने से, पुण्य और पाप की भावना छोड़ने से, मूल चीज़ की भावना करने से वह भावना सफल हुए बिना नहीं रहती। उसे सिद्धपद हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! एक (बोल) में अपने आ गया है। २१ में, २१वें बोल में।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

.... चैतन्यमूर्ति भगवान परमात्मा का ध्येय मन्थन करते हुए कदाचित् उस क्षण या उस काल में **सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है**। स्वसन्मुख होता है। उसके संस्कार स्वसन्मुख पड़ते हैं और वे संस्कार आगामी भव में भी पूर्णता को प्राप्त करे, ऐसे संस्कार होते हैं। आहाहा! नित्यानन्द के संस्कार, पूर्णानन्द के नाथ के संस्कार फलते ही हैं। वह वस्तु है, वह अस्ति है तो उसकी पर्याय भी अस्ति ही है, उसे परमात्मपद मिलता ही है। उसके संस्कार रहे तो। उसके संस्कार अन्दर रहा करे तो। यह है न?

उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले,... उपयोग बदले जानने में, देखने में, श्रद्धा करने में। **उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,....** बहुत सूक्ष्म बात है। इतना अधिक सूक्ष्म करे। जहाँ तक भगवान पूर्णानन्द पकड़ में नहीं आता, वहाँ तक के उपयोग को स्थूल कहने में आता है। आहाहा! जो उपयोग सूक्ष्म हो और उसे पकड़ सके, उसे सूक्ष्म उपयोग कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करना किस प्रकार? आहाहा! कर्ता होकर करना किस प्रकार? परसन्मुख के झुकाववाला जो उपयोग है, उसमें स्व पकड़ में नहीं आता, इसलिए उसे सूक्ष्म करके, पतला करके... आहाहा! अन्तर सन्मुख झुके, ऐसे उपयोग को सूक्ष्म कहने में आता है। जब तक अन्दर में झुके नहीं, तब तक उस उपयोग को सूक्ष्म कहने में नहीं आता। आहाहा! करना किस प्रकार? कि पर में कर्ता होकर करता है या नहीं? पर में कर्ता होकर करता है, इस प्रकार का उसका सामर्थ्य है या नहीं? तो स्व में कर्ता होकर करे, वह सामर्थ्य कैसे न आवे? आहाहा! क्या कहा?

पर में कर्तापना होकर करता है, वह सामर्थ्य उसकी प्रतीति में है। वह तो प्रतीति विपरीत है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्दर में सूक्ष्म उपयोग उसे कहते हैं कि जिससे वह भगवान पकड़ में आये। चैतन्य का नाथ ज्ञान की परिणति में पकड़ में आये, उसे यहाँ सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहाहा! कैसे करना? किया जाए वैसे करना। कैसे करना अर्थात्? उसके सन्मुख किया जाए वैसे करना? आहाहा!

मुमुक्षु : ....समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे से कहते हैं। आत्मा का सूक्ष्म उपयोग उसे कहते हैं कि परसन्मुख से हटकर और स्वसन्मुख को पकड़े, उसे सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। कैसे किया जाए? कि जैसे पर को करता है, उसी प्रकार राग को जैसे कर्ता होकर करता है... आहाहा!

पंचास्तिकाय की २७वीं गाथा में आत्मा में यह प्रभुत्व लिया है। प्रभुत्व। प्रभुत्वशक्ति है सैंतालीस (शक्तियों में) वह दूसरी। तो उसमें एक प्रभुत्व लिया है। वह प्रभुत्व दोनों में काम करता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? पंचास्तिकाय की २७वीं गाथा में आत्मा में प्रभुत्व नाम का एक गुण लिया है। वह प्रभुत्व दोनों ओर ढलता है। राग की ओर ढले तो उसमें भी प्रभुत्व है। आहाहा! उसके सामर्थ्य को उसमें भी प्रयोग करता है और प्रभुत्व अन्तर (में) ढले तो उसमें सामर्थ्य प्रयोग करता है। चन्दुभाई! २७वीं गाथा, पंचास्तिकाय, उसमें प्रभुत्वगुण लिया है।

सैंतालीस शक्तियों में प्रभुत्वगुण है, वह अलग है। वह प्रभुत्व नाम का गुण तो आत्मा में त्रिकाल निर्मल अनन्त गुण की परिणति को प्रगट करे, वह प्रभुत्व है। परन्तु २७वीं गाथा में वह प्रभुत्व जो कहा है, वह स्वयं ही आत्मा... उल्टे राग में भी प्रभुता का सामर्थ्य प्रयोग कर सकता है। आहाहा! और सुलटे शुद्धोपयोग में भी प्रभुत्वता प्रयोग कर सकता है। ऐसी गाथा है। पंचास्तिकाय की २७वीं गाथा। प्रभुत्वगुण तो सैंतालीस शक्ति में भी कहा है। वह प्रभुत्वगुण तो आनन्द... वहाँ मलिनता की बात ही नहीं। मलिनता प्रभुत्वगुण में है ही नहीं।

प्रभुत्वगुण के धारक को दृष्टि में लिया, उसे पवित्रता प्रगट हुए बिना रहती ही

नहीं। त्रिकाल शुद्ध पवित्र प्रगट होता है। यह सैंतालीस शक्ति में गुण लिया। २७वीं गाथा में दोनों ओर का प्रभुत्व (लिया है)। राग में प्रयोग करे तो भी प्रभुत्व है और आत्मा में प्रयोग करे तो भी प्रभुत्व है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! यह कोई पण्डिताई का विषय नहीं है। यह कोई पण्डिताई का विषय नहीं है। आहाहा! यह तो अन्तर के घर में सूक्ष्म-सूक्ष्म घर, अनन्त सूक्ष्म गुण से भरपूर भगवान के घर में जाना है, वह सूक्ष्म उपयोग है।

जिस घर में राग के उपयोग को स्वयं अपने पुरुषार्थ से ही करता है। राग में भी अपने पुरुषार्थ से ही करता है। कर्म के कारण नहीं। समझ में आया? है? **उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,...** है? यह कर्ता है, उसका अर्थ कर्ता, स्थूलरूप से कर्ता है, वह भी स्वयं कर्ता है। राग और द्वेष में जो उपयोग कर्ता है, वह भी स्वयं ही अपने ही पुरुषार्थ से कर्ता है। ऐसे सूक्ष्मरूप से पुरुषार्थ कर्ता है, वह अपने पुरुषार्थ से है। वह स्वसन्मुख के... आहाहा! जिसमें उपयोग अन्दर जाने पर चैतन्य भगवान की भेंट हो, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, अनन्त गुण की शक्ति की व्यक्तता हो, अनन्त गुण की शक्ति की व्यक्तता हो, उसे यहाँ सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहाहा!

सूक्ष्म से सूक्ष्म... उपयोग में सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए... आहाहा! अन्दर चैतन्यतत्त्व को अनुभवता हुआ, उसे पकड़कर उसे अनुभव करता हुआ। आहाहा! **आगे बढ़े,...** पुरुषार्थ करता हुआ वह स्वभाव की ओर आगे बढ़े। राग में पुरुषार्थ करता घटे। आहाहा! भाषा सादी है, भाव बहुत ऊँचे हैं। अन्तर में उपयोग को... उपयोग सूक्ष्म उसे किया कहलाता है कि जिसमें आत्मा पकड़ में आये। सूक्ष्म उपयोग उसे कहा जाता है... आहाहा! जिसमें भगवान पकड़ में आये। स्थूल उपयोग (उसे) कहा जाता है, जिसमें राग-द्वेष पकड़ में आये। आहाहा! अन्तर के तत्त्व की बात है। अन्तर के अनुभव में से निकली हुई वाणी यह है। यह अनुभवी जाने। आहाहा!

'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को, दूसरा कुछ न कहना रे। अनुभवी को इतना, आनन्द में रहना।' आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द में जो रहना, उसका नाम अनुभव, उसका नाम अनुभूति, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म की प्रथम शुरुआत, धर्म का पहला सोपान। आहाहा! इसके बिना एक भी सोपान पहला नहीं। कहते हैं, अन्दर में... **सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े,...**

वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। अन्तर में झुकाव करनेवाला सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। सूक्ष्म उपयोग से अन्तर चैतन्य अगाध स्वभाव से भरपूर, उसकी ओर जाता हुआ यह सूक्ष्म उपयोग चैतन्य को पकड़ लेता है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन और आत्मा को जाना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा प्रथम व्यवहार करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहार नहीं। वह पर्याय है, व्यवहार है परन्तु वह पर्याय झुकी है अन्दर में, वह व्यवहार है। पर्याय है वह व्यवहार है। चाहे तो केवलज्ञान भी व्यवहार है। द्रव्य, वह निश्चय और पर्याय, वह व्यवहार है। मोक्ष का मार्ग, वह है, निश्चयमोक्ष का मार्ग... ... जीव **क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** राग के झुकाववाला जीव मिथ्यात्व को, राग को पाता है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! ...है। ६२ हुआ। पश्चात्?

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी। मुनि को अन्तर में चैतन्य के अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबन्धरहित सहज दशा होती है; शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है॥ ७१॥

७१ **धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा!** आहाहा! **मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी।** केवलज्ञान की तलहटी। आहाहा! **मुनि को अन्तर में चैतन्य के अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है;...** परिग्रह होता है। अनन्त गुण का परिग्रह-पकड़ होती है। परिग्रह अर्थात्— परि अर्थात् सर्वथा प्रकार से पकड़ना। **मुनि को अन्तर...** आहाहा! **अनन्त गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है; विभाव बहुत छूट गया होता है।** यह मुनि की दशा का वर्णन है। **विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है।** निमित्तमात्र देह तो होती है। देह छोड़ने से छूटती नहीं। आहाहा!

उपदेश का विकल्प असमाधि और दु:खरूप है। आहाहा! उपदेश देने का भी विकल्प उठे, वह असमाधि और दु:खरूप है। समाधिशतक में उसे उन्मार्ग कहा है। आहाहा! इसलिए कहीं उपदेश हम देते हैं और दुनिया समझे, कुछ हमें महत्ता दे... आहाहा! वह तो बड़ी भूल में रहा है। आहाहा! यहाँ तो उपदेश का विकल्प ही दु:खरूप है। आनन्द का नाथ सागर, उसमें विकल्प उठे, वह तो आनन्द नहीं, दु:ख है।

श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबन्धरहित सहज दशा होती है; शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है। आहाहा! धन्य मुनिदशा! जिसे अन्तर में आनन्द की ऋद्धि होते-होते पूर्णानन्द की ओर का ध्येय है। आहाहा! साध्य, वह पूर्ण आनन्द है। ध्येय, वह पूर्ण आनन्द का नाथ आत्मा है। साधते-साधते पूर्ण आनन्द हो, वह मुनिपने की दशा है, उसे मुनिपना कहते हैं। कोई पंच महाव्रत पालन करे और क्रिया करे, उसे मुनि कहते हैं, वह यहाँ है नहीं। आहाहा!

प्रतिबन्धरहित... स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है। स्वरूप में लीनता की... आहाहा! अगाध गम्भीर स्वभाव, भगवान है, उसमें ढलते हैं, इसलिए शान्ति की वृद्धि (होती है)। कुन्दकुन्दाचार्य ने पाँचवीं गाथा में कहा, प्रचुर स्वसंवेदन। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं प्रचुर स्वसंवेदन के वैभव से बात करूँगा। आहाहा! मुनिपने में प्रचुर... समकित में स्वसंवेदन होता है परन्तु थोड़ा (होता है); मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन होता है। उग्र अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है। यह आत्मा का वैभव है। मुनिराज कहते हैं, यह ऐसे मेरे वैभव से (कहूँगा), भगवान कहते हैं, इसलिए सुनकर कहता हूँ—ऐसा भी नहीं है। मैं तो मेरे वैभव से कहूँगा। आहाहा! समयसार मेरे वैभव से कहूँगा। ऐसी शैली से समयसार कहा गया है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३ चैत्र शुक्ल-१, मंगलवार, दिनांक - १५-४-१९८०
वचनामृत - २०१ प्रवचन-१६ (DVD 15)

अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है, वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते। परिणाम कहाँ चले जायँ? परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है, सिद्ध में भी परिणति तो होती है।

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि ही सम्यक् दृष्टि है। इसलिये 'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिए रुकता है? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर—दृष्टि स्थापित कर न!

परिणाम तो होते ही रहेंगे। परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिए देता है? पर्याय में—पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है? उस परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न!

ज्ञानानन्दसागर की तरंगों को न देखकर उसके दल पर दृष्टि स्थापित कर। तरंगें तो उछलती ही रहेंगी; तू उनका अवलम्बन किसलिए लेता है?

अनंत गुणों के भेद पर से भी दृष्टि हटा ले। अनंत गुणमय एक नित्य निजतत्त्व—अपरिणामी अभेद एक दल—उसमें दृष्टि दे। पूर्ण नित्य अभेद का जोर ला; तू ज्ञातादृष्टा हो जाएगा॥२०१॥

वचनामृत २०१। देखो, **अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है...** क्या कहते हैं ? आत्मा अपरिणामी अर्थात् ध्रुव, पर्यायरहित कूटस्थ। **अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को कहा जाता है, वहाँ अपरिणामी मानें पूर्ण ज्ञायक; शास्त्र में निश्चयनय के विषयभूत जो अखण्ड ज्ञायक कहा है, वही यह 'अपरिणामी' निजात्मा।** है। अपरिणामी की व्याख्या की है। जहाँ-तहाँ जगह अपरिणामी का जोर दिया है परन्तु अपरिणामी का जोर देने पर भी प्रमाणरूप पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। अपरिणामी का जोर देने पर भी ग्यारहवीं गाथा में पर्याय को अभूतार्थ कहा '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार अर्थात् पर्यायमात्र झूठी है, ऐसी भाषा कही है, ग्यारहवीं गाथा में। अब उसमें कोई ऐसा ले लेवे कि पर्याय झूठी ही है, ऐसा नहीं। पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर 'नहीं है' ऐसा कहा है। अब त्रिकाली को निश्चय कहकर, मुख्य करके 'वह है' ऐसा कहा है। न्याय समझ में आता है ? पर्याय को गौण करके, व्यवहार करके अभूतार्थ अर्थात् नहीं है, ऐसा कहा है और त्रिकाली चीज़ को मुख्य करके निश्चय कहा है, ऐसा कहा है दोनों में समझ में आया ? आहाहा ! एक को नहीं, एक है, ऐसा दोनों कहा। दो में अपेक्षा भेद है।

अपरिणामी निज आत्मा का आश्रय लेने को शास्त्र में जहाँ-तहाँ सर्वत्र मुख्य में तो यह कहने में आता है, क्योंकि सार तो यह है। एक समय में भगवान कूटस्थ अपरिणामी नहीं पलटता, नहीं बदलता, पर्यायरूप नहीं होता—ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेना, वह सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन अथवा धर्म की शुरुआत वह है। इसलिए जहाँ-तहाँ त्रिकाल को है, ऐसा कहा है और पर्याय को नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया ?

ध्रुव को है, ऐसा कहा है, भूतार्थ है, ऐसा कहा है। भूतार्थ / विद्यमान पदार्थ है और पर्याय को अभूतार्थ कहा है। अभूतार्थ अर्थात् ? नहीं है। किस अपेक्षा से नहीं ? लक्ष्य करने के लिये गौण करके उसे 'नहीं है' ऐसा कहा है। आहाहा ! लक्ष्य करना है त्रिकाल का, इसलिए पर्याय को गौण करके, व्यवहार करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। वह अपरिणामी निजात्मा।

प्रमाण-अपेक्षा से... आहाहा ! सवेरे आया था कि प्रमत्त और अप्रमत्त दो पर्याय में तत्त्व है। पर्याय में उसका तत्त्व है; नहीं-ऐसा नहीं। चौदहवीं गाथा के अर्थ में भी पर्याय का अस्तित्व है, (ऐसा कहा है)। वेदान्त जो कहता है कि पर्याय नहीं है, एक व्यापक

ही है—ऐसा नहीं है। पर्याय है परन्तु उस पर्याय को गौण करके, अभाव बताकर, भाववाला त्रिकाली तत्त्व है, वहाँ नजर करानी है और उसे सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ परम आनन्द का अनुभव होता है। पर्याय की दृष्टि से दु:ख होता है। आहाहा! है अवश्य, पर्याय है अवश्य परन्तु उसके आश्रय से दु:ख होता है।

यह तो अनादि से पर्याय का आश्रय करके दु:खी हो रहा है, इसलिए उसे गौण करके त्रिकाली का आश्रय लेने को कहा है। त्रिकाली का आश्रय लेने को कहा है, इसलिए उसकी पर्याय में प्रमाणपना है, उसका अभाव नहीं होता, यह कहते हैं। **प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है,...** आहाहा! प्रमाण अर्थात् प्र-माण—माप। त्रिकाली द्रव्य और वर्तमान दो को लक्ष्य में लेने को प्रमाण कहा है। दो को लक्ष्य में लेना वह प्रमाण है। आहाहा!

३२० गाथा में यह गाथा रखी है, '**जीवो ण बन्धइ, ण मुक्कइ**' जीव बँधता नहीं और छूटता भी नहीं। जीव तो जीव है, वह है। ३२० गाथा में योगीन्द्रदेव का आधार... बन्ध और मोक्ष नहीं करता। आत्मा उदय और निर्जरा को नहीं करता। आहाहा! आत्मा बन्ध और मोक्ष को नहीं करता। चार बोल ३२० में है। उदय के सामने राग है और उसके सामने निर्जरा अर्थात् शुद्धता की प्रगटता है। बन्ध के सामने अकेला अटकना है और मोक्ष के सामने एकदम छूट जाना है। यह चार बोल पर्याय है। यह पर्याय है, वह प्रमाण के विषय में आती है। है?

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं... आहाहा! एकदम उसे अपरिणामी का आश्रय लेने को कहा है, इसलिए प्रमाण की अपेक्षा से वह अकेला अपरिणामी नहीं है; पलटता है, बदलता है। पलटता, बदलता। एक बार राजकोट में (व्याख्यान) चलता था, उसमें एक बाबा आया। वह कहे जैन में यह आत्मा शुद्ध है और पवित्र है, ऐसी बातें जैन में कहाँ से आयी? यह क्या कहते हैं जैन में? ऐसा सुनकर आया। आया और यह बात हुई कि भाई! आत्मा पर्याय में बन्धन में है, अनित्य है, इतना कहा। आत्मा अनित्य है, इतना कहा, वहाँ भड़क गया। पण्डितजी! अनित्य है। आत्मा अनित्य हैं? अरे! मैंने तो जाना कि जैन आत्मा के मोक्ष की बातें करते हैं, तब तो ध्रुव की-त्रिकाल

की ही बात करते होंगे, अनित्य की नहीं करते होंगे। यह तो अनित्य है, (ऐसा कहते हैं)। अनित्य स्वयं नित्य का निर्णय करता है। अनित्य स्वयं नित्य का निर्णय करता है, नित्य का निर्णय नित्य नहीं करता। समझ में आया? यह अनित्य पर्याय बदलती है। पलटती पर्याय, वह नहीं पलटते का निर्णय करती है। अपरिणामी का निर्णय पर्याय करती है। आहाहा!

अपरिणामी अकेला अपरिणामी है, ऐसी स्थिति अपरिणामी में नहीं होती। अपरिणामी तो ध्रुवरूप है और निर्णय करनेवाला अनित्य है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या अनित्य कहो। वह अनित्य, नित्य का निर्णय करता है। आहाहा! अनित्य, वह ध्रुव का निर्णय करता है, अनित्य, वह ध्रुव का निर्णय करता है। पलटता, वह त्रिकाल अपरिणामी का निर्णय करता है। पलटती पर्याय त्रिकाली अपरिणामी—नहीं पलटते का निर्णय करती है। उसकी अस्ति, अपरिणामी की अस्ति, अपरिणामी के कारण से अस्ति का निर्णय नहीं होता। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म।

अपरिणामी चीज़ जो है, वह पलटती नहीं, कूटस्थ है। ध्रुव को कूटस्थ कहा है। कूट अर्थात् शिखर जैसे खड़ा होता है, खड़ा रहता है और पानी के प्रवाह में तरंग उठे, वैसे तरंग नहीं उठती, ऐसे अपरिणामी को कूटस्थ-शिखर स्थिर जैसे हो, वैसे कहा है परन्तु उस स्थिर को, ध्रुव को, अपरिणामी को अपरिणामी है, ऐसा निर्णय पर्याय करती है। आहाहा! **वह पर्याय ध्रुव का निर्णय करने पर भी वह पर्याय ध्रुव में नहीं जाती और उस पर्याय का निर्णय ध्रुव करने पर भी ध्रुव उस पर्याय में नहीं आता, ऐसी बात है। यह अपेक्षा से कहते हैं कि प्रमाण की अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है। प्रमाण की अपेक्षा से आत्मा पलटता नहीं, बदलता नहीं, ध्रुव ही है—ऐसा प्रमाण की अपेक्षा से नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई!**

अपरिणामी तथा परिणामी है। भगवान आत्मा नहीं पलटता भी है और पलटता भी है। यह तो दो विरुद्ध! दोनों विरुद्ध हुए। यह स्वरूप ही ऐसा है। अपरिणामी भी है, नहीं बदलता भी है और बदलता भी है। बदलता ही अबदलते का निर्णय करता है। आहाहा! ध्रुव जो है, उसका निर्णय तो अनित्य ही करता है। इतना अधिक वजन देना? कि

त्रिकाली अपरिणामी नित्य एकरूप स्वभाव भूतार्थ, वही वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है, इतना जोर देने पर भी उसका निर्णय करनेवाली जो दशा, वह स्वयं प्रमाण के विषय में पर्याय आती है। पर्याय है, पर्याय नहीं है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

पर्याय को ग्यारहवीं गाथा में झूठी कहा है। व्यवहार झूठा है, ऐसा कहा न पहले पद में? '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार असत्य है। उस असत्य को गौण करके त्रिकाली ज्ञायकभाव का आश्रय लेने के लिये उसे मुख्य करके निश्चय बनाकर, पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर और निषेध किया गया है। आहाहा! ऐसा विचारना?

प्रमाण-अपेक्षा से आत्मद्रव्य मात्र अपरिणामी ही नहीं है, अपरिणामी तथा परिणामी है। परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से... अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से अर्थात् नहीं बदलता तत्त्व ध्रुव—नित्य और ध्रुव, उस पर दृष्टि देने से; दृष्टि हुई पर्याय, परन्तु उस पर दृष्टि देने से **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** अर्थात्? होता है तो पर्याय में निर्णय, परन्तु उसका लक्ष्य रहता है ध्रुव पर, इसलिए निर्णय करनेवाली पर्याय गौण रहती है। गौण अर्थात्? उसकी मुख्यता ही नहीं आती। पर्याय की मुख्यता नहीं आती। मुख्यता तो त्रिकाली भगवान की ही आती है, तथापि पर्याय गौणरूप से है। गौणरूप से है ऐसा कहने पर भी वर्तमान ही है। वही पर्याय अपरिणामी का निर्णय करती है। पर्याय ही अपरिणामी का निर्णय करती है। आहाहा!

अनित्य, वह नित्य को जानता है; नित्य, नित्य को नहीं जानता। आहाहा! क्या कहा? अनित्य है, वह नित्य को जानता है; नित्य है, वह नित्य को नहीं जानता। सूक्ष्म बात है, भाई! यह जाननेवाला स्वयं अनित्य है, यह निर्णय करता है, तथापि निर्णय यह करता है तो भी उसे 'नहीं' ऐसा कहकर त्रिकाली का आश्रय कराया है। त्रिकाली द्रव्य ध्रुव का अवलम्बन कराया है। पर्याय नहीं है तो निर्णय करनेवाला नहीं है। निर्णय करनेवाला नहीं तो जिसका निर्णय करना है, जिसका निर्णय करना है, वह स्वयं ही नहीं है। जहाँ निर्णय करनेयोग्य वस्तु है, वह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाषा जरा सादी है परन्तु अपरिणामी और परिणाम दो के बीच की बात अभी ली है। कोई एकान्त न खींच जाए, प्रमाण में एकान्त खींच न जाए, (इसलिए बात ली है।)

प्रमाण में तो पर्याय और द्रव्य दोनों आते हैं, तब वह वीतरागता होती है। क्या कहा ? आहाहा ! पर्याय निर्णय करती है वीतरागता का। पर्याय वीतरागता का निर्णय करने पर भी पर्याय में वीतरागता आती है। इसलिए प्रमाण में त्रिकाल वीतरागता भी आयी और उसका निर्णय करनेवाली वीतरागपर्याय भी आयी। चन्दुभाई ! क्या कहा, समझ में आया ? निर्णय परिणाम जो अनित्य है, वह भी वीतरागता है। यह क्या कहा ? त्रिकाली वीतरागस्वरूप भगवान का निर्णय जो अनित्य करता है, वह अनित्य वीतराग है। वह अनित्य वीतरागी पर्याय है। आहाहा !

वह वीतरागी पर्याय त्रिकाली वीतराग का निर्णय करने पर भी वह त्रिकाली नहीं हो जाती, वह त्रिकाल में प्रवेश नहीं करती। आहाहा ! भगवान अपरिणामी का निर्णय करनेवाली वर्तमान पर्याय, वीतरागी पर्याय... आहाहा ! उस अपरिणामी का निर्णय करने पर भी अपरिणामीरूप नहीं होती। आहाहा ! **अपरिणामी का निर्णय, वीतरागता का निर्णय करने पर भी ध्रुव वीतरागरूप पर्याय नहीं होती। पर्याय में तो पर्याय की ध्रुवता, परिणमन की ध्रुवता आती है, और वह ध्रुवता आयी है त्रिकाली ध्रुव के लक्ष्य से, तथापि ध्रुव में से नहीं।** क्या कहा यह ? ध्रुव से पर्याय स्वतन्त्र है। क्योंकि ध्रुव एकरूप है और उसकी जो पर्याय ध्रुव में से आती यदि एकान्त कहें तो एक सरीखी पर्याय आनी चाहिए। क्या कहा ?

द्रव्य जो ध्रुव है, अपरिणामी है, एकान्त उसमें से ही पर्याय आती है, ऐसा यदि कहें तो वह ध्रुव है, तो एकरूप है तो उसमें से पर्याय आवे तो (पर्याय) एकरूप आनी चाहिए। और मोक्षमार्ग की पर्याय एकरूप नहीं आती। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, शुद्धि; शुद्धि होती है, शुद्धि टिकती है, शुद्धि बढ़ती है, शुद्धि पूर्ण होती है। आहाहा ! यह सब अवस्था में होता है। यदि वह अवस्था वीतरागी निर्णय त्रिकाल का न करे तो वीतरागी पर्याय ही नहीं होगी। आहाहा ! समझ में आया ? यह कहा।

अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण हो जाते हैं;... गौण अर्थात् ? अनुभव तो पर्याय का होता है। बीसवें बोल में कहा न ? अलिंगग्रहण। आत्मा एकरूप ध्रुव जो है, उसे स्पर्श किये बिना, उसे छुए बिना आत्मा की पर्याय में आनन्द और वीतरागता का वेदन होता है। बीसवाँ बोल। त्रिकाल द्रव्य को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली

द्रव्य ध्रुव को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली द्रव्य को... आहाहा! साथ में इकट्ठा लिये बिना अकेली पर्याय वीतराग, पर्याय, हों! उस त्रिकाली वीतरागी को साथ में लिये बिना और त्रिकाली वीतरागी को स्पर्श किये बिना, त्रिकाली वीतराग द्रव्य को स्पर्श किये बिना... आहाहा! भाषा तो आलम्बन है। वीतरागी पर्याय त्रिकाली का आलम्बन लिये बिना। आहाहा! गोदिकाजी! ऐसा सूक्ष्म है। निवृत्ति नहीं मिलती। निर्णय करने की फुरसत नहीं मिलती। ऐसी की धूल में रुकने से; पैसा, इज्जत, कीर्ति सब धूल। कीर्ति धूल, इज्जत धूल और पैसा भी धूल। शरीर भी धूल और राग भी धूल। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अपरिणामी ध्रुव जो चीज़ है, वह वीतरागमूर्ति है। उसे स्पर्श किये बिना, उसके अवलम्बन बिना पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है। यह वीतरागता वीतरागस्वभाव को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! भारी कठिन काम। समझ में आया? इसलिए कहा, **अपरिणामी तत्त्व पर दृष्टि देने से परिणाम गौण....** होने से वीतरागता होती है। उस पर लक्ष्य नहीं रहता परन्तु होती है वीतरागता। पर्याय को गौण करते हैं, तब पर्याय में वीतरागता होती है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय को गौण करने से पर्याय में वीतरागता होती है। आहाहा! वीतराग का मार्ग स्याद्वाद अनेकान्त कहीं दुनिया में नहीं है। उसमें जन्मे उन्हें समझने का ठिकाना नहीं है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा भगवानस्वरूप होने पर भी, भगवानस्वरूप को अवलम्बन लिये बिना पर्याय में भगवानपना प्रगट होता है। आहाहा! यहाँ प्राप्त की प्राप्ति तो कही परन्तु फिर भी अपने यहाँ तो दो, दो रूप से रखना है। दो दोपना रखना है, तब उसका प्रमाण ज्ञान होता है। उसमें से एक को गौण और एक को मुख्य करने जाए तो प्रमाणज्ञान नहीं होता। समझ में आया? लक्ष्य में लेना, बापू! जो समझ में आये तो समझना, बापू! वीतराग का मार्ग अलौकिक है। यह कहीं बाहर से समझ में आ जाए, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, विशिष्टता तो क्या? कि **जो पर्याय वीतरागरूप होती है, वह वीतरागी का आलम्बन लिये बिना होती है। आहाहा! समझ में आया? जो पर्याय वीतरागी होती है, वह वीतरागी ध्रुव के आलम्बन बिना होती है। वह स्वतन्त्र सत् है। यदि वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से ही एकान्त उत्पन्न होवे तो द्रव्य तो एकरूप सदा वीतराग है, तो उसके आश्रय से पर्याय एकरूप वीतराग होनी चाहिए।** क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु वीतरागस्वरूप एकरूप रहती है। उसके आश्रय से एकान्त उसके आश्रय से होवे तो उसमें तो वीतरागता अकेली एक प्रकार की है, तो वीतरागता एक प्रकार की ही आना चाहिए, परन्तु पर्याय स्वतन्त्र है। वह परिणामी होने पर भी, त्रिकाली वीतरागी का आश्रय लेने पर भी उसका अवलम्बन लिये बिना वह परिणामी वीतरागस्वरूपरूप से परिणमती है। आहाहा! पर्याय वीतरागरूप से परिणमती है। इसलिए कहते हैं कि **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** गौण का अर्थ यह। आहाहा! वीतराग का अनुभव गौण हो जाता है, ऐसा नहीं। क्या कहा?

पर्याय ने-अवस्था ने त्रिकाल को जाना और वीतरागता हुई, वह गौण हो गयी अर्थात्? वह वीतरागता पर्याय में नहीं आयी और वीतरागता पर्याय में नहीं हुई, इसलिए गौण हो गयी—ऐसा नहीं है। मात्र लक्ष्य की अपेक्षा से गौण कहा। वीतरागी पर्याय का लक्ष्य वीतरागी पर्याय के ऊपर नहीं है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म अधिकार आया। आहाहा! वीतरागी पर्याय जो अन्दर हुई, उस पर लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो ध्रुव पर है, तथापि ध्रुव को अवलम्बती नहीं, तथापि अपरिणामी, वह परिणाम में आता नहीं, तो भी परिणाम जो वीतरागता परिणाम है, उसमें अपरिणामी वीतरागता का ज्ञान और वीतरागता की पर्याय आती है। आहाहा! यह क्या कहा?

पर्याय में जो वीतरागी ज्ञान और वीतरागी पर्याय (हुई)। पर्याय में वीतरागी ज्ञान हुआ। आहाहा! त्रिकाली प्रभु भगवान को... आहाहा! इसे कुछ पुनरुक्ति नहीं लगती। बारम्बार कहे, इससे कहीं तुम्हारा पुनरुक्ति दोष नहीं लगता। बारम्बार कहे, वह तो विशेष दृढ़ता होने के लिये है। पुनरुक्ति दोष नहीं परन्तु वीतरागता की दृढ़ता के लिये है। आहाहा! आहाहा! कहते हैं, प्रभु! अरे! ऐसी बातें चली गयी। ऊपर की बातों में मान लिया गया! प्रभु! मनुष्यभव चला जाता है। यह अवतार पूरा हो जाएगा। आत्मा पूरा नहीं होगा काल में। क्या कहा? काल में पूरा अर्थात् एक समय में ही आत्मा रहेगा, ऐसा नहीं रहेगा। यह देह छूट जाएगी आत्मा त्रिकाली अनन्त आनन्द वीतरागमूर्ति तो कायम रहेगा। परन्तु कायम रहेगा, इसका वेदन और इसके अस्तित्व का त्रिकाल पर्याय प्रमाण पर्याय करती है। प्रमाण में पर्याय अपरिणामी का, पर्याय का प्रमाण जो है, वह उसका विषय करती है और वह पर्याय वीतराग यह है, ऐसा निर्णय करती है और इसलिए वीतरागी आनन्द आने पर

भी वीतरागी आनन्द को गौण करना, ऐसा यहाँ तो कहा है। इसका अर्थ ? उस पर लक्ष्य नहीं रखना। लक्ष्य ध्रुव पर रखना, तथापि उस पर्याय का लक्ष्य ध्रुव के ऊपर होने पर भी वह पर्याय परतन्त्र नहीं है। वह पर्याय स्वतन्त्र कर्ता होकर लक्ष्य करती है। आहाहा!

षट्कारक का परिणमन खड़ा करके... आहाहा! वह पर्याय त्रिकाली ध्रुव को, वीतरागता को जानकर, वह उसका जो कर्तापना है, वह द्रव्य के कारण नहीं है। वह पर्याय स्वतन्त्र करता है। स्वतन्त्र कर्ता होकर मात्र उसका स्वभाव लक्ष्य ध्रुव ऊपर करती है, ऐसा उसका स्वतन्त्र कर्तापने का स्वरूप है। पर्याय का कर्तापना का यह स्वरूप है कि वह पर्याय त्रिकाली वीतरागस्वभाव को वीतरागी पर्याय स्वयं होने पर भी, उस वीतरागी स्वभाव का आश्रय है, तथापि उसमें कर्तापना वीतरागी द्रव्य का नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? **यह वीतरागी द्रव्य का लक्ष्य किया, इसलिए वीतरागी द्रव्य कर्ता है और वीतरागी द्रव्य का आश्रय आया, इसलिए वीतरागी पर्याय पराधीन हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात!**

मुमुक्षु : कहाँ से आता है ऐसा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान जाने, उसमें से आता है। भगवान के पास से आता है। कितनी ही बातें तो मुझे भी खबर नहीं और अन्तर से आती है। क्यों आती है ? कैसे आती है ? यह भगवान जाने। यह भगवान जाने अर्थात् यह आत्मा उस प्रकार का है। आहाहा! वापस फिर भगवान जाने, अकेला डाल देना, ऐसा नहीं। आहाहा! यह आत्मा ही ऐसी जाति का स्वयं है कि स्वयं अपना त्रिकाल का अवलम्बन लिये बिना; परमात्मा का तो नहीं परन्तु त्रिकाल का अवलम्बन लिये बिना वीतरागपने में आनन्द को अनुभवता है। आहाहा! पण्डितजी! भाषा ऐसी आती है, बापू! यहाँ कहीं व्याकरण संस्कृत और पण्डिताई नहीं है। आहाहा!

कहते हैं **परिणाम गौण हो जाते हैं;...** अर्थात् ? वीतराग जो अनुभव में आता है, वीतरागी पर्याय; त्रिकाली वीतरागस्वरूप भगवान... **समझ में आये उतना समझना, नाथ! उकताहट करना नहीं, आकुलता करना नहीं, हमें नहीं समझ में आता ऐसा नहीं करना, नाथ! तू तो एक समय में केवलज्ञान लेनेवाला-ताकतवाला है न!** एक समय में केवलज्ञान

प्रगट करे, ऐसी ताकतवाला प्रभु तू है। तुझे तेरा विश्वास नहीं। विश्वास की पर्याय रागरहित वीतरागी है। आहाहा! विश्वास की पर्याय रागरहित वीतरागी है, उस वीतरागी का विश्वास करता है, तथापि उस वीतरागी का उसे अवलम्बन नहीं है। आहाहा! ऐसा आता है। कहाँ आता है?

कहते हैं, **परिणाम गौण हो जाते हैं; परिणाम कहीं चले नहीं जाते**। अर्थात् क्या कहते हैं? त्रिकाल को जब मुख्य किया, तब पर्याय को गौण किया अर्थात् कि वह पर्याय कहीं चली नहीं जाती, पर्याय का कहीं अभाव नहीं होता। पर्याय तो भावरूप रहती है परन्तु भावरूप से रहने पर भी उसे गौण क्यों कहा? गौण क्योंकि लक्ष्य मुख्य पर है, इसलिए गौण कहा। बाकी है तो उसकी ही मुख्यता, क्योंकि निर्णय करनेवाली वह स्वयं है। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाली नित्यानन्द के नाथ का निर्णय करनेवाली स्वतन्त्ररूप से गौणपने बिना, मुख्य को गौण न किये बिना... आहाहा! वह पर्याय स्वयं ही वीतरागरूप से परिणमती त्रिकाली का लक्ष्य रखकर (परिणमित हुई है), तथापि वह पराश्रय से नहीं हुई। स्वयं से वीतरागपर्याय षट्कारक से परिणमती खड़ी होती है। यह क्या कहा?

गौण है—ऐसा कहा, तथापि उस भगवान आत्मा का जहाँ अवलम्बन लिया, तथापि वह अवलम्बन लिया, ऐसा कहने पर भी कहते हैं कि वह व्यवहार हो गया। आहाहा! उस पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं है, निरपेक्ष है। वह वीतरागी पर्याय वीतरागी स्वभाव भगवान आत्मा का निर्णय करने को और अनुभव में वह आने पर भी वह चीज़ पर्याय में नहीं आयी, वह पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई। पर्याय, पर्यायरूप से रही और द्रव्य की दृष्टि की, उसे पर्याय पर लक्ष्य नहीं है, इस अपेक्षा से उसे गौण कहा। बाकी तो अनुभव में पर्याय मुख्य ही है। यह क्या कहा? आहाहा! अनुभव में द्रव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह समझ में आये इतना प्रभु, समझना। यह तो वीतराग की बात है।

तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी परमात्मा वे ऐसा वर्णन करते हैं और ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि पर्याय को गौण किया—ऐसा कहा था, तथापि पर्याय की ही मुख्यता है। क्या कहा? आहाहा! भाई! ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा! वह गौण अर्थात् उस ओर-सन्मुख झुकाव नहीं रखना, ऐसा कहा था। झुकाव ऐसा रखना, तथापि झुकाव

करनेवाली पर्याय पर की अपेक्षा नहीं रखती। वीतरागी आनन्द का अनुभव पर्याय स्वतन्त्ररूप से स्वयं कर्ता होकर अपने आनन्द के, वीतरागी आनन्द के कर्म को, वीतरागी आनन्द के कर्म अर्थात् कार्य को स्वयं अनुभव करती है। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! आहाहा! यह चला, परन्तु लम्बा। यह बड़ा बोल है।

परिणाम कहीं चले नहीं जाते। अर्थात्? परिणाम ही रहते हैं और परिणाम ने ही परिणामी का निर्णय किया है। यह वास्तव में तो परिणामी कर्ता, परिणामी का परिणाम जो हुआ, वह मुख्य वस्तु है। आहाहा! तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु का जो अनुभव किया, उस अनुभव की ही मुख्यता है। आहाहा! (अलिंगग्रहण के) बीसवें बोल की अपेक्षा से। यहाँ गौण कहा, तथापि उसे यहाँ मुख्य करते हैं। आहाहा! क्योंकि द्रव्य का अनुभव नहीं है, नाथ! अनुभव तो पर्याय का है, इसलिए उसे गौण नहीं करना, वह मुख्य है। त्रिकाल का वेदन नहीं। त्रिकाली है, वह ध्रुव है; ध्रुव का वेदन नहीं, इसलिए ध्रुव की ओर स्वतन्त्ररूप से लक्ष्य करने पर भी पर के आश्रय बिना स्वतन्त्रकर्ता होकर वीतरागी पर्याय का आनन्द करता है। वह परिणाम है, उन्हें गौण कहा, ऐसा कहा वह तो वह लक्ष्य ऐसा है, इस अपेक्षा से (कहा है), बाकी तो मुख्य तो वही है। वीतरागी आनन्द का अनुभव, वह मुख्य है। पण्डितजी! आहाहा!

परिणाम कहीं चले नहीं जाते। आहाहा! त्रिकाली नाथ की सत्ता का स्वीकार वीतरागभाव से हुआ, वह भाव कहीं चला नहीं जाता। उसने पर्याय को गौण करके अभूतार्थ करके कहा, इसलिए वह अनुभव कहीं चला नहीं जाता। अनुभव तो अनुभव में वेदन में रहता है। आहाहा! यह समझ में आये ऐसी बात है।

भगवान! यहाँ तो सब भगवान है। भगवानस्वरूप है और भगवान होनेवाले ही हैं, ऐसी यहाँ तो बात है। आहाहा! यह तो कहा नहीं था द्रव्यसंग्रह का? सब भगवान ही होओ! कर्म का नाश करके परमात्मा तेरे स्वरूप के सामर्थ्य की जो ताकत है, वह... द्रव्यसंग्रह में तो यह कहा न? सब भगवान होओ, सब वीतराग होओ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परिणाम को गौण किया, वह तो लक्ष्य की अपेक्षा से गौण किया है; अनुभव की अपेक्षा से गौण नहीं। समझ में आया? वह तो लक्ष्य की अपेक्षा से गौण किया,

अनुभव की अपेक्षा से गौण नहीं है। अनुभव की अपेक्षा से तो वही मुख्य है क्योंकि द्रव्य का अनुभव नहीं होता। आहाहा! प्रभु! यह कहाँ से आता है? कौन कहता है? प्रभु! आहाहा! यह आत्मा का पुकार है। आहाहा! आत्मा के सत् का यह अन्दर से पुकार है। पुकार है स्वयं का। मैं विकाररहित वीतराग परिणाम से हूँ क्योंकि मेरा तत्त्व जो पूर्णतत्त्व है, उसका जहाँ मैं लक्ष्य करता हूँ, वहाँ तो वीतरागीदशा होती है; इसलिए वीतरागी परिणाम ही मुझे तो मुख्य है। वेदन में आवे, वह मेरे मुख्य है। आहाहा! लक्ष्य की अपेक्षा से भले गौण किया। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अजब-गजब की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अजब-गजब की बात है, प्रभु! मुझे भी खबर नहीं। यह अन्दर से चला आता है। आहाहा! प्रभु का पुकार अन्दर से है कि मेरा जो यह वेदन है, उसे तू गौण कर डाले, यह नहीं चलेगा, नाथ! आहाहा! क्या कहा? प्रभु!

पूर्णानन्द के नाथ को तूने जाना और वेदन में आया, उसे तू गौण मत करना, हों! वह तो अपेक्षा से हमने तुझे लक्ष्य कराने के लिये गौण कहा था परन्तु मुख्य तो वही है। जो आनन्द प्रत्यक्ष अपने को वेदन में आवे, वह मुख्य है और जो वेदन में नहीं आता, वह तो गौण है। आहाहा! आहाहा! अजब-गजब की बात है, प्रभु! आहाहा! ऐसा कोई दिन, ऐसा कोई काल आया... आहाहा!

परिणाम कहाँ चले जायँ? कहते हैं कि भले परिणाम को गौण किया परन्तु परिणाम कहाँ चले जाएँगे? आहाहा! **अस्ति है, मौजूद है और वह परिणाम सत है। इससे त्रिकाली सत् की भी जिसकी अपेक्षा नहीं ऐसा परिणाम प्रभु! कहाँ जाए?** तू गौण कर, ऐसा कहा तो भी वह जाए कहाँ? प्रभु! वह अस्तिरूप से वर्तमान में वेदन में आता है, वह गौणरूप से कहाँ जाए? गौणरूप से कहाँ जाए वह? आहाहा!

परिणमन तो पर्यायस्वभाव के कारण... बदलने के परिणमन पर्यायस्वभाव के कारण **होता ही रहता है,...** आहाहा! यह वीतरागीस्वरूप भगवान, इसे जिसने स्वीकार किया और अनुभव किया, उसे वीतरागी परिणाम तो सदा निरन्तर रहा ही करते हैं। ऐसा आया न? **पर्यायस्वभाव के कारण होता ही रहता है,...** भले गौण कहा परन्तु वीतरागी

आनन्द तो समय-समय में हुआ ही करता है। उसे गौण किया जा सके, ऐसी ताकत नहीं है। द्रव्य की भी ताकत नहीं है कि उसे गौण करे। आहाहा! वेदन को मुख्य करनेवाला द्रव्य पर्याय को गौण करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता क्योंकि त्रिकाली का वेदन नहीं होता, इसलिए जिसका वेदन है, उसकी मुख्यता का ढिंढ़ोरा पीटा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

सिद्ध में भी परिणति तो होती है। (पर्याय को) सिद्ध करते हैं। पर्याय को तू गौण कर डाले तो फिर सिद्ध स्वयं पर्याय है, सिद्ध स्वयं पर्याय है, तू किसे गौण करेगा? पर्याय को गौण कर देगा? सिद्धपर्याय नहीं, ऐसा कर डालेगा? ध्रुव है और सिद्धपर्याय नहीं, गौण करके ऐसा करेगा? आहाहा! सिद्धपर्याय की परिणति भी है। आहाहा!

परन्तु अपरिणामी तत्त्व पर—ज्ञायक पर—दृष्टि... अपरिणामी तत्त्व पर पलटती पर्याय निर्णय करे, तथापि पलटती पर्याय अपरिणामी तत्त्व पर-ज्ञायक पर लक्ष्य होने से **वही सम्यक् दृष्टि है।** त्रिकाल ज्ञायक पर दृष्टि है, वह पर्याय सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! पर्याय पर पर्याय का लक्ष्य नहीं है, इतना अन्तर है। पर्याय पर पर्याय का लक्ष्य नहीं है। पर्याय का लक्ष्य द्रव्य के ऊपर और जोर वहाँ है। वह स्वयं स्वतन्त्ररूप से करती है, इसलिए वह सम्यग्दृष्टि है। वह त्रिकाली वीतरागस्वभाव की दृष्टि, भले पर्याय को गौण किया, पर्याय को गौण किया, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि गौण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए **'यह मेरी ज्ञान की पर्याय' 'यह मेरी द्रव्य की पर्याय' इस प्रकार पर्याय में किसलिए रुकता है?** क्योंकि वह वीतरागी पर्याय होगी ही। होगी ही उसमें क्या? वह पर्याय हुई और वह मेरी (पर्याय) ऐसा रुकता किसलिए है? वीतरागी आनन्द की पर्याय प्रगट होगी ही, इसलिए यह पर्याय मेरी, ऐसा लक्ष्य में न ले। पर्याय है, वह द्रव्य के लक्ष्य से, परन्तु स्वतन्त्ररूप से हुई है। आहाहा! पर्याय कर्ता, पर्याय पर्याय का कर्म, पर्याय का करण-साधन; द्रव्य-गुण साधन नहीं। आहाहा! मात्र लक्ष्य वहाँ गया है, वह भी स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर। पर्याय का स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर लक्ष्य गया है। आहाहा! इसलिए मेरी यह पर्याय (ऐसा) पर्याय के ऊपर एक लक्ष्य रखना नहीं, ऐसा कहते हैं। अनुभव करने में तो द्रव्य के ऊपर ही लक्ष्य रखना। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म आया। आहाहा!

पर्याय में किसलिए रुकता है ? निष्क्रिय तत्त्व पर—तल पर— आहाहा ! पर्याय के पीछे तल-बड़ा तल पड़ा है, पाताल है, भगवान है। उस पर लक्ष्य होने से तल पर दृष्टि रख। दृष्टि वहाँ परन्तु वह दृष्टि भी स्वतन्त्र दे। दृष्टि भी स्वतन्त्ररूप से द्रव्य पर दे। द्रव्य है, इसलिए मुझे दृष्टि करनी पड़ती है... आहाहा ! ऐसा भी नहीं है। सूक्ष्म बात है, भगवान ! वीतराग तीन लोक के नाथ की कथनी कोई अलौकिक है। आहाहा ! समझने में जरा कठिन पड़े।

तल पर दृष्टि स्थापित पर। है स्वतन्त्र दृष्टि। दृष्टि में ही सब वेदन है। परन्तु उसका लक्ष्य पर्याय के ऊपर न रहकर पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, बस ! इतना ही। **परिणाम तो होते ही रहेंगे।** है ? दूसरा पैराग्राफ। **परिणाम तो होते ही रहेंगे।** आनन्द, वीतराग, वेदन... वेदन... वेदन... वीतराग... आहाहा ! **परन्तु, यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई,..** अर्थात् ? इस पर्याय जितना मैं और इतना मुझे हुआ ऐसा न कर, प्रभु ! आहाहा ! है ? **यह मेरी अमुक गुणपर्याय हुई, यह मेरे ऐसे परिणाम हुए—ऐसा जोर किसलिए देता है ? पर्याय में—पलटते अंश में—द्रव्य का परिपूर्ण...** पर्याय में अर्थात् पलटते अंश में अर्थात् कि **द्रव्य का परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य थोड़ा ही आता है ?** आहाहा ! थोड़ा आता है अर्थात् कि पूरा द्रव्य पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु आता नहीं, इतनी अपेक्षा, हों ! द्रव्य का सामर्थ्य परिपूर्ण पर्याय में आता है, परन्तु द्रव्य पर्याय में नहीं आता। इसलिए **परिपूर्ण नित्य सामर्थ्य का अवलम्बन कर न!** परिपूर्ण भगवान का अवलम्बन ले, वह भी स्वतन्त्ररूप से वीतराग आनन्द प्रगट करके।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

४

श्रावण शुक्ल-१४, मंगलवार, दिनांक - ०७-०८-१९७९
वचनामृत - १, ३०६, २१७, २२१, २२३ प्रवचन-१७ (DVD 15)

हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा॥ १॥

...कोई बाह्य पदार्थ में तेरी रुचि न जमती हो... आहाहा! शब्द थोड़ा सूक्ष्म है। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** ये शर्त। बाह्य पदार्थ में तेरी रुचि जमती न हो तो। आहाहा! **उपयोग पलट दे...** अपना उपयोग पलट दे, प्रभु! आहाहा! जो पर्याय पर में रुचि करती है, उस पर्याय को अपने में पलट सकता नहीं। जो कोई परपदार्थ में रुचि करता नहीं और रुचि जमती नहीं तो पर्याय को पलट दे। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ विराजता है, वहाँ रुचि या उपयोग को ले जा। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! **और आत्मा में रुचि लगा।** भगवान अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, उसका पोषाण और रुचि कर। आहाहा!

आत्मा में रुचे ऐसा है। क्योंकि भगवान आत्मा में रुचे ऐसा है। आहाहा! क्यों?- कि **आत्मा में आनन्द भरा है;...** यह मांगलिक है शुरुआत का। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। तेरी रुचि पर में न जमती हो तो वहाँ जमा दे। रुचि पर में हो तो पलट सकता नहीं। आहा..! रागादि में जब तक रुचि है, तब तो अंतर में पलट सके नहीं, परन्तु तेरी रुचि में ऐसा ख्याल आये कि कहीं मेरी रुचि जमती नहीं है, मुझे मजा नहीं आता है। आहाहा! ऐसा हो तो उपयोग को आत्मा में आनन्द भरा है, वहाँ लगा दे। आहाहा! भगवान आनन्द सरोवर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, वहाँ आनन्द भरा है। **वहाँ अवश्य रुचेगा।** प्रभु! तुझे पोषाण में आत्मा आयेगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

व्यवहार के राग की रुचि जब तक रहे तो पलट सके नहीं। परन्तु व्यवहार दया, दान की रुचि भी न रहे और रुचि न जाए तो स्वरूप में रुचि लगा दे। यह साधन है, बापू! **वहाँ अवश्य रुचेगा।**

जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है... आहाहा! भगवान आनन्द के अलावा कहीं रुचि का स्थान नहीं है। **परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है।** आहाहा! **इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।** आहाहा! यह शुरुआत का मांगलिक शब्द है। पर में तुझे रुचि-मजा न लगती हो तो, मजा आता हो तो-तो तू पलट सकेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? पुण्य के शुभराग से लेकर सारी सामग्री जगत की, उस ओर तेरी रुचि गहराई में न हो तो। आहाहा! उस रुचि को पलट दे। आत्मा में रुचि लगा दे। एक बोल हुआ।

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़। जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा? अवश्य प्राप्त होगा ही॥३०६॥

३०६। है? **रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन...** है? ११९ पृष्ठ है। **रुचि का पोषण...** आहाहा! ज्ञायकस्वभाव की रुचि का पोषण और **तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए...** आहाहा! तत्त्व का मंथन और चैतन्य के साथ—भगवान ज्ञायक चैतन्यस्वरूप ध्रुव, उसमें एकाकार हो जाए **तो कार्य होता ही है।** अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्द का स्वाद आता ही है। आहाहा! ऐसी बात है।

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,... आहाहा! **अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,...** आहाहा! पुण्य और पाप, और पुण्य-पाप के फल में तेरा अभ्यास और रुचि, विभाव में तुझे प्रेम लगा है, भाषा बहुत संक्षेप में है, परन्तु अन्तर तत्त्व की बात है। बहनों में बोले होंगे तो लिख लिया था, तो बाहर आया, नहीं तो बाहर भी नहीं आता। समझ में आया? आहाहा! **अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़।**

जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता... आहाहा! जिसकी दृष्टि में आत्मा रुचता है, उसको दूसरा कुछ नहीं रुचता **और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** आहाहा! ज्ञायकभाव रुचे, उसको आत्मा अप्राप्य—न प्राप्त हो, ऐसा नहीं होगा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह तो बहिन द्वारा बहिनों में बोला गया होगा, उन्हें भी मालूम नहीं होगा कि यह कोई लिख रहा है। यहाँ से २२ लाख पुस्तक प्रकाशित हुए हैं। मैंने कभी कहा नहीं कि पुस्तक छपाओ या मन्दिर (बनाओ), हमने अभी तक कहा नहीं। परन्तु यह जहाँ हाथ में आयी तो रामजीभाई को कहा, भाई! यह पुस्तक एक लाख छपवाओ। पहला पुस्तक। इतने पुस्तक छपे, न छपे, दुनिया जाने। आहाहा! यह पुस्तक जहाँ हाथ में आयी तो कहा, एक लाख छपवाओ। साठ हजार तो छप गयी हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** आहाहा! पर की रुचि छोड़कर स्व की रुचि करे तो आत्मा प्राप्त होता है। अप्राप्त नहीं रहता। उसको आनन्द का स्वाद आता है। तब आत्मा प्राप्त हुआ, ऐसा कहने में आता है। यहाँ तो यह शब्द लेना था, इसलिए यह लिया।

जागता जीव... आहाहा! क्या कहते हैं? **जागता जीव विद्यमान है,...** गुजराती में 'जागतो जीव उभो छे'। जागता जीव चैतन्यस्वरूप भगवान उभो छे ने। उभो अर्थात् अन्दर ध्रुव है न। आहाहा! जागता जीव विद्यमान है न, ध्रुव है न। **वह कहाँ जाएगा?** ध्रुव भगवान जागृत ज्योति चैतन्य है, वह कहाँ जाएगा? प्रभु! आहाहा! शब्द तो बहुत संक्षिप्त और मीठे हैं। रतनलालजी! रतनलालजी को तो बहुत प्रेम है। ऐसी बात है।

जागता प्रभु चैतन्यज्योति खड़ा है न-विद्यमान है न-ध्रुव है न। आहाहा! वह कहाँ जाएगा? ध्रुव कहाँ जाए? खड़ा है, वह कहाँ जाए? कहीं पर्याय में आता है? राग में आता है? कहाँ जाए? आहाहा! **अवश्य प्राप्त होगा ही।** आहाहा! जरूर प्राप्त होगा। जागता जीव कहाँ जाए? **अवश्य प्राप्त होगा ही।** अवश्य प्राप्त होगा ही। आहाहा!

द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं; द्रव्य की कोटि उच्च ही है, पर्याय की कोटि निम्न ही है। द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती। भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया!' ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है॥२१७॥

२१७। ८७ पृष्ठ है। २१७। सत्रह न? क्या कहते हैं? पृष्ठ-८७। **द्रव्य...** अर्थात् वस्तु भगवान आत्मा। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी...** नयी-नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और ध्रुवपने रहता है। **द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब होने पर भी...** सब अर्थात् तीनों। **कहीं द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं;...** कहीं द्रव्य अर्थात् त्रिकाली चीज़ भगवान पूर्ण ज्ञायक और एक समय की पर्याय, दोनों समान प्रकार की कोटि के नहीं हैं। आहाहा! दोनों समान वर्ग में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह पहली कक्षा में पढ़ता है तो प्रथम कक्षावाला है, यह सातवीं कक्षावाले में आता नहीं। और सातवीं कक्षा में पहली कक्षा आती नहीं।

ऐसे भगवान आत्मा... **द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि के नहीं हैं;...** आहाहा! पर की बात तो यहाँ क्या लेनी? अपना जो द्रव्य त्रिकाली भगवान ध्रुव और एक समय की पर्याय, दोनों समान कोटि के नहीं हैं। **द्रव्य की कोटि उच्च ही है,...** पर्याय से त्रिकाली द्रव्य की कोटि उच्च ही है। आहाहा! भाषा तो सादी है। गुजराती सादी में आया है। उसमें फिर हिन्दी बनाया। **द्रव्य की कोटि...** द्रव्य का प्रकार पर्याय से ऊँचा है। एक समय की पर्याय से त्रिकाल शक्ति ऊँची शक्ति है। उच्च कोटि का द्रव्य है। आहाहा!

पर्याय की कोटि निम्न ही है। आहाहा! परपदार्थ का प्रकार तो यहाँ है ही नहीं। त्रिकाली द्रव्य की कोटि की अपेक्षा पर्याय की कोटि हीन है। आहाहा! समझ में आया? **पर्याय की कोटि निम्न ही है।** आहाहा! **द्रव्यदृष्टिवान को अन्तर में इतना अधिक**

रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है... आहाहा! द्रव्यदृष्टिवान को, वर्तमान पर्याय की दृष्टि छोड़कर त्रिकाली भगवान की रुचि प्रथम करे, हो, तो वह इतना अधिक रसकसयुक्त है... **तत्त्व दिखायी देता है...** रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है। आहाहा! रसवाला और कसवाला। कस... कस। आहाहा! पूरा माल भरा है अन्दर। अनन्त... अनन्त। **अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है...** आहाहा! **कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती।** आहाहा! रसकसयुक्त जो भगवान दृष्टि में दिखता है-सम्यग्दर्शन की पर्याय में... आहाहा! उसको **इतना अधिक रसकसयुक्त...** पर्याय से अधिक-भिन्न **इतना अधिक रसकसयुक्त तत्त्व दिखायी देता है कि उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती।** आहाहा! चाहे तो अनुभूति हुई हो, परन्तु दृष्टि में रसकसयुक्त द्रव्य दिखा, उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती, नहीं टिकती। आहाहा! ऐसा है। अभी तो प्रतिमा ले लो, यह ले लो, वस्त्र बदल दो और बाहर के त्यागी हो। और त्यागीपने दुनिया तुझे माने, इसलिए उसे मान मिले। अरे! प्रभु! वह सब अज्ञान की भ्रमणा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरी पर्याय पर से दृष्टि हटाकर रसकसवाला भगवान है, जिसमें कस पड़ा है, पूरा केवलज्ञान, अनन्त आनन्द का कस अन्दर पड़ा है... आहाहा! समझ में आया? २१७ न? **उसकी दृष्टि पर्याय में नहीं चिपकती।** पर्याय पर दृष्टि जमती नहीं। आहाहा! रसकसवाला भगवान जहाँ देखा, परमात्मा जहाँ दृष्टि में देखा, उसकी पर्याय में दृष्टि टिकती नहीं। आहाहा!

अव्यक्त के बोल हैं न? अव्यक्त। ४९ गाथा। वहाँ अन्तिम छठा बोल है। प्रथम अनुभव में चीज़ आती है, पहले जो जानने में उसका आत्मा आया है, उसका आनन्द का वेदन है। तो आनन्द के वेदन में रुचि नहीं जमती। आहाहा! आनन्द में दृष्टि नहीं टिकती। छठा बोल है। समझ में आया? अव्यक्त है न? **स्वयं अपने से ही बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है तथापि...** भगवान आत्मा पर्याय के वेदन में द्रव्य का लक्ष्य है तो द्रव्य का भी वेदन कहने में आता है। **बाह्याभ्यन्तर स्पष्ट अनुभव में आ रहा है तथापि व्यक्तता के प्रति उदासीनरूप से प्रद्योतमान (प्रकाशमान) है,...** वर्तमान आनन्द की पर्याय है परन्तु उससे उदास है। आहाहा! दृष्टि वहाँ जमती नहीं। आनन्द का वेदन आया तो भी दृष्टि वहाँ जमती नहीं। आहाहा! क्योंकि दृष्टि में भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और

अतीन्द्रिय शान्ति का रसकसवाला भगवान को जहाँ जाना और प्रतीत में आया... आहाहा! वह पर्याय में टिकता नहीं, गुलाँट मारकर द्रव्य पर जाता है। गुलाँट खाकर द्रव्य पर जाता है। छठा बोल है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा!

भले ही अनुभूति हो,... आहाहा! है? क्या कहते हैं? राग तो नहीं, राग से भिन्न होकर अपने द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि हुई तो पर्याय में अनुभूति हुई। पर्याय में अनुभूति हुई। आहाहा! **भले ही अनुभूति हो, परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती।** आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो बहिन के अन्तर अनुभव में से थोड़ा बोला गया है, उसे लिख लिया तो बाहर आया। नहीं तो वे तो मुर्दे जैसे हैं। कुछ बोले नहीं। बाहर ठाठ हो और बोले, चले तो (लोगों को दिखायी दे)। यह तो अन्तर में, अन्तर अनुभव से बात है। आहाहा!

कहते हैं, **दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती।** अनुभूति हुई, आनन्द का स्वाद आया, सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु दृष्टि वहाँ चिपक नहीं जाती। दृष्टि तो द्रव्य पर पड़ी है। रसकसवाला भगवान आत्मा... आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अनन्त-अनन्त चन्द्र की जड़ शीतलता से भी अनन्त शान्ति जिसमें पड़ी है, रसकस पड़ा है अन्दर में। आहाहा! ऐसी अनुभूति होने पर भी, सम्यग्दर्शन होने पर भी वहाँ पर्याय में-अनुभूति में दृष्टि चिपक नहीं जाती। आहाहा! गुलाँट खाकर द्रव्य में चली जाती है, दृष्टि द्रव्य में चली जाती है। कहो, ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

राग में और पर में तो दृष्टि चिपकती नहीं। परद्रव्य में, देव-गुरु-शास्त्र में और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार में, दृष्टि तो वहाँ है ही नहीं, परन्तु अनुभूति हुई, वहाँ दृष्टि रहती नहीं। कठिन बात है, भाई! उसका फल भी अनन्त आनन्द है। आहाहा! यह अपूर्व बात है, प्रभु! आहा!

दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। आहाहा! **अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव...** जिसके पाताल का पता लगा गया। आहाहा! पर्याय में पाताल का पता लग गया। वह दृष्टि पर्याय में रहती नहीं-टिकती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। जैनदर्शन के अलावा यह बात कहीं नहीं है। दूसरे सब ऐसा कहते हैं, विद्यानन्दजी तो

बहुत लिखते हैं, आज आया है, विश्वधर्म, सबमें धर्म है। अरे! प्रभु! वास्तविक तत्त्व तो सर्वज्ञ भगवान ने देखा, उसके अतिरिक्त वास्तविक तत्त्व कहीं नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञस्वभावी और सर्व आनन्दस्वभावी, सर्व वीतरागी शान्तिस्वभावी यह चीज़ जो है, वह रसकसयुक्त जहाँ दृष्टि में आया तो अनुभूति पर भी... अनुभव तो पर्याय है, समझ में आया? तो पर्याय में रसकस नहीं है, रसकस तो वहाँ द्रव्य में है। यह तो अल्प अंश बाहर है। आहाहा! नयी बात लगे, भाई! समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। अरे!

परन्तु दृष्टि अनुभूति में—पर्याय में—चिपक नहीं जाती। 'अहा! ऐसा आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ... सम्यग्दर्शन में यह आत्मा पहली चीज़ है, उसके बाद सब व्यवहार-फ्यवहार की (बात)। आहाहा! पहले दृष्टि में, अनुभव में भगवान आया नहीं, तब तक सब क्रियाकाण्ड, सारा राग बन्ध का कारण है, संसार है। आहाहा! यहाँ तो स्वभाव में रस पड़ा है, आनन्दरस, ज्ञानरस, शान्तरस, वीतरागरस, स्वसंवेदनरस, ईश्वररस, प्रभुतारस, ऐसी अनन्त शक्ति का अन्दर रस है। वह रसकस है। कस है। कस कहते हैं हिन्दी में? आहाहा! ऐसा रस और कसयुक्त जो भगवान, प्रथम करने लायक इस चीज़ पर दृष्टि पड़ी। आहाहा! रस और कसवाला प्रभु देखा। उसकी रसकस की पर्याय जो अनुभूति हुई, उसमें भी दृष्टि टिकती नहीं। गुलाँट खाकर द्रव्य में जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो बहिन का (जन्मदिवस) है, इसलिए आज से शुरु (किया)। तीन दिन है। यह तीन दिन शुरु किया। सुबह जो पढ़ते हैं उसमें... सुबह पूरा हो जाए तो सुबह। परसों सुबह लेंगे। कैसे आयेगा वह तो चलते-चलते (मालूम पड़ेगा)। सुबह अधिकार चलता है न।

आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ... आहाहा! **अर्थात् अनुभव में आया!** पर्याय में भगवान का दर्शन हुआ। आहाहा! पर्याय में आत्मा का साक्षात्कार हुआ। साक्षात् परमात्मा का पर्याय में दर्शन हुआ। आहाहा! **ऐसा ज्ञान जानता है,...** ज्ञान जानता है कि यह अनुभूति है। **परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर...** आहाहा! दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ... स्तम्भ। वज्र का स्तम्भ जैसे हो, ऐसे भगवान ध्रुव का स्तम्भ। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण का स्तम्भ। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा समझ में आये, परन्तु बापू! समझने की चीज़ तो यह है। आहाहा! बाकी .... दूसरी चीज़ कोई भी

हो, परन्तु प्रयोजनभूत तो यह है। आहाहा! दूसरा जानपना न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

तिर्यंच को सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! सिंह और बाघ, नाग, मगरमच्छ हजार योजन का। उसे पर्याय में आत्मा भासता है। आहाहा! कहीं फिर दृष्टि थमती नहीं, कहते हैं। आहाहा! असंख्य (तिर्यंच) बाहर पड़े हैं। असंख्य समकिती तिर्यंच बाहर पड़े हैं। शरीर भले तिर्यंच हो, वस्तु कहाँ तिर्यंच है। आहाहा! और उसका समकित तो जैसा सिद्ध का समकत ऐसा समकित है। सम्यग्दर्शन में... क्या कहा?

मुमुक्षु : तो मनुष्य को क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं है, क्या करें? रस है पुत्र में और पैसे में। खेत में फसल पके तीस-चालीस लाख की तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। दरबार! यह तो दृष्टान्त। हमारे कृषि पण्डित को तो कितने लाख पैदा होते हैं। कितने ही लाखों! उसमें धूल में क्या है? परन्तु उस ओर के रस में अपनी पर्याय में अपना रस आता नहीं। आहाहा! वह तो पहले कहा न, कि पर में रुचि न जमे तो तेरी रुचि अन्दर में पलट दे। परन्तु रुचि वहीं अटक जाए तो कहाँ से पलटे? आहाहा! पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, धूल... आहाहा!

मुमुक्षु : तीन में से एक को तो रखे तो कोई तकलीफ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे छोड़े? किसे छोड़े? तीन अर्थात्?

मुमुक्षु : स्त्री, पुत्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् अकेला सुमन के साथ प्रेम रखे तो स्त्री छूट जाए, उसका कुछ नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, बापू! अरे! पर का प्रेम तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत का विकल्प उठे, उसका भी प्रेम नहीं। आहाहा! अरे! प्रभु! आहाहा!

प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा,
पर की आश कहाँ करे प्रीतम, पर की आश कहाँ करे व्हाला,
कई बातें तू अधूरा?

आहाहा! नौतमभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! यहाँ तो। आहाहा! पैसा-वैसा धूल...

मुमुक्षु : धूल न हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल के सेठ कहलाये। आहाहा! धूल का सेठ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु के आगे है, बापू! दरबार! ऐसी वस्तु है, भाई! उसने सुनी नहीं। उसे ख्याल में आती नहीं। पर की महत्ता के आगे स्व चीज़ महाप्रभु अन्दर है, जिसके आगे अनुभूति की पर्याय की भी कीमत नहीं है। आहाहा! ऐसी अमूल्य चीज़ अन्दर पड़ी है, प्रभु! जिसके आगे अनुभूति की पर्याय की भी कीमत है; यह तो कोई अकीमती चीज़ है। आहाहा! लक्ष्मीचन्दभाई! ऐसा है, प्रभु! यहाँ से छोड़कर वहाँ गये और करोड़ रुपया हो गया तो सुखी हो गये ऐसा है? दुःखी है। आहाहा!

अरे..! प्रभु! तू किस बात से अधूरा है? किस भाव से तू अधूरा है? कि पर की आशा रखकर मैं दया पालूँ, मैं व्रत करूँ तो मुझे लाभ होगा। आहाहा! प्रभु! तूने तेरे स्वभाव का तो खून कर दिया। आहाहा! रसकसवाला प्रभु तुझे दिखने में आया नहीं। उसका अस्तित्व... कहा न पहले? जीव विद्यमान है न। ध्रुव है न परमात्मा अन्दर! आहाहा!

'तारी नयन से आलसे रे, मैं नीरख्या न नयणे हरि।' रज और राग बिना का हरि भगवान। नयन-लोचन, पर्याय के लोचन में पर के प्रेम में लोचन अटक गये। आहाहा! अपनी चीज में पर्याय का लोचन ढला नहीं, देखा नहीं। अन्तर की चक्षु अन्तर में गयी नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा कठिन है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है। आहाहा!

ऐसा ज्ञान जानता है,... अनुभूति हुई, ऐसा ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा ज्ञान जानता है। स्वरूप का आश्रय करके चारित्र हुआ, उसको ज्ञान जानता है। **परन्तु दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ...** आहाहा! शाश्वत स्तम्भ पड़ा है ऐसे ध्रुव प्रवाह। पानी की बाढ़ जैसे एकरूप चलती है, ऐसे यह ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... प्रवाह (चलता है)। अनादि-अनन्त ध्रुव... ध्रुव प्रवाहरूप भगवान रहता है। आहाहा! ऐसे भगवान की-ध्रुव की दृष्टि छोड़कर, प्रभु! तूने पर्याय की और राग की रुचि की। आहाहा! तो प्रभु! तुझे संसार में भटकना पड़ा। नरक और निगोद के भव... बापू! आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! बाहर में लोग, एक-दूसरे को मदद करे तो तुमको लाभ होगा। अकेली शान्ति नहीं, सबको इकट्ठा करो। किसको करे? प्रभु!

पर्याय और द्रव्य जहाँ एकत्व नहीं होते, एकरूप नहीं होते... आहाहा! पर्याय की जितनी स्थिति है, उतनी द्रव्य की स्थिति नहीं है। द्रव्य की स्थिति तो अद्‌भुत अनन्त चमत्कार परमेश्वर भगवान आत्मा, परमेश्वर के रसकसवाली चीज़ पर दृष्टि पड़ी और जहाँ अनुभूति हुई तो अनुभूति का ज्ञान करे, परन्तु दृष्टि अनुभूति पर न रहे। आहाहा! फिर भी व्यवहार बीच में आये। पर्याय पर दृष्टि न रहे तो व्यवहार आये, उस पर दृष्टि नहीं (रहती)। आहाहा! एक ओर सम्यग्दृष्टि इन्द्र बावन जिनालय हैं, बाहर आठवें द्वीप में। नन्दीश्वर द्वीप वहाँ बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ रत्न की प्रतिमाएँ (हैं)। इन्द्र समकिती एकावतारी जाते हैं। एकभवतारी! घुँघरु बाँधकर भगवान की भक्ति करे। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ घुँघरु पर, राग पर और पर्याय पर नहीं है। आहाहा! लोग बाहर से देखे तो... आहा. ! भगवान की भक्ति में कितने तल्लीन हो गये हैं! परन्तु उस भाव पर दृष्टि नहीं है। उस भाव को जाननेवाली पर्याय पर दृष्टि नहीं है। आहाहा! अन्तर्मुख भगवान जहाँ रसकस से भरा है, वहाँ से दृष्टि हटती नहीं। खसती नहीं (को क्या कहते हैं ?) हटती नहीं (कहते हैं) ? हटती नहीं।

दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ... ध्रुव स्तम्भ। ध्रुव धाम। वहाँ दृष्टि पड़ी है। वह दृष्टि कहीं पर ऊपर जाती नहीं। आहाहा! तिर्यंच समकिती हो। बाघ और सिंह। वह समकिती हो तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर से हटती नहीं। आहाहा! और वह बाघ, सिंह को माँस भोजन नहीं होता। जब आत्मज्ञान हुआ, उसके बाद भोजन में वनस्पति कमल का .... होता है, वह भोजन (होता है)। फिर भी वह भोजन और भोजन का राग और राग को जाननेवाली पर्याय पर उसकी दृष्टि नहीं है। आहाहा! केसरी सिंह। बाघ, लाखों बाघ। और अन्तर में आत्मा का अनुभव हुआ। आहाहा! (ऐसे) असंख्य तिर्यंच बाहर पड़े हैं। आहाहा! परन्तु दृष्टि का विषय जो भगवान है, उस पर से दृष्टि हटती नहीं। सिंह और बाघ... आहाहा! आत्मा कहाँ सिंह और बाघ है। आत्मा कहाँ पर्याय जितना है। पर जितना तो नहीं, राग में तो नहीं, पर्याय जितना भी कहाँ है वह ? आहाहा! जैसे भगवान का अन्तर में सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ... आहाहा! सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, उसमें परमात्मा अन्दर पूर्ण स्वरूप भगवान, (उसका अनुभव हुआ)। आहाहा! भगवान की भक्ति में राग आता है, परन्तु दृष्टि वहाँ नहीं है। आहाहा! अनुभूति पर दृष्टि नहीं है तो फिर राग पर दृष्टि कहाँ रही ? सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा!

यह मार्ग सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के अलावा कहीं नहीं है। वास्तव में तो दुःख

लगे, प्रभु! क्या कहें? श्वेताम्बर स्थानकवासी में, श्वेताम्बर में भी यह बात है नहीं। दिगम्बर में है तो परन्तु उसकी समझ में नहीं है। आहाहा! शास्त्र में सब बात पड़ी है। शास्त्र में पड़ी हो, उसका जाननेवाला न हो तो शास्त्र क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन-सी क्रिया करे? राग करे। शास्त्र के पन्नों को जय भगवान, जय भगवान (करे)।

मुमुक्षु : दिगम्बर में जाननेवाले...

पूज्य गुरुदेवश्री : हम श्वेताम्बर हैं ही नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! वह कहा न? हमारे भाई को जब कहा, बड़े भाई को कहा। दीक्षा तो ६६ साल पहले १८०० रुपया (का खर्च किया)। ६६ साल पहले १८००। हाथी के होदे पर बड़ी दीक्षा (थी)। बाहर हाथी निकले। गाँव में फिरे न। कोर्ट के वकील, न्यायाधीश सब बाहर देखने आये। वहाँ बड़ा उतारा है। आहाहा! राजकुमार जैसा दीक्षा लेता है?

मुमुक्षु : धोती फटी थी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो हाथी पर बैठने गये (तब)। धोती तो पहले ... धोती पहले ऊँची आती थी। साढ़े तीन रुपये का जोटा। साढ़े तीन रुपये का जोटा। ऊँची चीज़। कपड़े तो हम ऐसे पहनते थे। टोपी जरी की पहनते थे। पैर में कपड़े का जूता। चमड़े का नहीं। कपड़े का आता है न? वह पहनते थे। भगत थे न! वस्तु की कोई खबर नहीं थी। आहाहा!

उस समय भाई को कहा, भाई! मुझे अन्तर में दूसरा मार्ग लगता है। ये साधुपना, मुँहपत्ती का साधुपना वह साधुपना नहीं है। भाई का प्रेम था न। बहुत-बहुत सरल थे। सरल थे। अन्त में तो दुकान छोड़ दी थी। दो लोग थे, आजीविका के पैसे थे। इसलिए दुकान चलती थी, वह छोड़ दी। फिर यहीं रहते थे। एकदम व्याधि हो गयी। चल बसे। यहाँ से भावनगर दवाखाने में ले गये थे। भावनगर हॉस्पीटल में चल बसे। आहाहा! भाई! मैं तो यहाँ नहीं रह सकूँगा। महाराज! आपकी कीर्ति स्थानकवासी में बड़ी है और आप एकदम छोड़ोगे तो खलबली मच जाएगी। धीरे-धीरे छोड़ना। धीरे-धीरे। १९८७ में कहा, संवत् १९८७। चार साल (बाद छोड़ दिया)। यहाँ मकान है—स्टार ऑफ इण्डिया।

हिन्दुस्तान का चमकता तारा। बाहर मकान है। वहाँ ठहरे थे और वहाँ छोड़ दिया। सवा तीन साल वहाँ रहे। बाहर में एक मकान है। उसका स्टार ऑफ इण्डिया। हिन्दुस्तान का चमकता तारा। १०० साल पुराना है, १०० साल पुराना। यहाँ तो हमें साढ़े ४४ साल हुए। एक गृहस्थ का मकान था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सरकार ने वह मकान बेच दिया। सरकार का मकान था न। बेच दिया। गृहस्थ बनिया। अभी आया न? कनुभाई जज। जज थे, अहमदाबाद में। उनके पिता ने ले लिया। उसने कहा कि महाराज! यहाँ रहो न। हम तो गाँव में ठहरे थे पहले। दो दिन। १९९१ की बात है, संवत् १९९१। गाँव में किसी के मकान में ठहरे थे। उनके विनती थी, महाराज! यहाँ खाली मकान है, एकान्त है। सवा तीन साल रहे। स्टार ऑफ इण्डिया। मकान का नाम। हिन्दुस्तान का चमकता तारा। भाई की मौजूदगी (थी), भाई की मौजूदगी में छोड़ा। उस समय छापनेवाला बड़ा था। अहमदाबाद में है न? अतुलभाई कोठारी। यहाँ था। महाराज! आपने क्या किया? कहा, हम स्थानकवासी के साधु नहीं हैं। हमको अन्दर मार्ग दूसरा लगता है। उसने छाप दिया। १९९१ की बात है। अतुलभाई थे। अहमदाबाद में बड़ा प्रेस है। वह प्रेस यहाँ था। आहाहा!

यह प्रभु आत्मा... कहते हैं, **दृष्टि तो शाश्वत स्तम्भ पर—द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।** आहाहा! चाहे तो वचनवर्गणा से भाषा हो, चलती हो, राग अन्दर आता हो तो भी दृष्टि तो वहाँ पड़ी है। समझ में आया? धर्मी के धर्म की स्थिति यह है। आहाहा! धर्म कोई बाह्य में व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे वह कोई धर्म है नहीं। आहाहा! **द्रव्यस्वभाव पर—जमी सो जमी ही रहती है।** २१७ (पूरा हुआ)।

सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है। अन्तर्मुहूर्त को नहीं किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना वही निज स्वभाव है, वही कर्तव्य है॥२२१॥

२२१। है? **सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है।** यह राग के उपादेय (नहीं होने) की अपेक्षा से उपादेय (कहा है)। वास्तव में तो त्रिकाली वस्तु उपादेय है। परन्तु

तत्त्वार्थ राजवार्तिक में अथवा अपने मोक्षमार्ग में संवर को उपादेय कहने में आया है। संवर को... प्रकट करने की अपेक्षा से संवर उपादेय है। निर्जरा प्रगट करने की अपेक्षा से हितकर है। मोक्ष प्रगट करने की अपेक्षा से परम हितकर है। ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। यहाँ तो उस अपेक्षा से कहा है, **सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग है**। आहाहा! सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग। शुभ और अशुभराग उपादेय नहीं। आहाहा! अरेरे!

अन्तर्मुहूर्त को नहीं किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना वही निज स्वभाव है,... आहाहा! क्या कहते हैं? द्रव्य में अन्तर्मुहूर्त शुद्ध उपयोग रहता है। सम्यग्दृष्टि का भी, क्षायिक समकिती का भी परिणमन निरन्तर शुद्ध परिणति निरन्तर रहती है। परन्तु उपयोग तो किसी समय अन्दर में जाता है। उस उपयोग काल में राग का उपयोग आदि नहीं है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शुद्ध उपयोग अन्दर में रहना, वह तो अन्तर्मुहूर्त हुआ। परन्तु शाश्वत अन्दर में रहने का भाव है। धर्मी का भाव तो कायम आत्मा में रहना, यह भाव है। आहाहा! परमानन्द का नाथ प्रभु, जिसे अन्तर्दृष्टि में और ज्ञान में आया तो कहते हैं कि मैं तो उसमें कायम रहूँ।

समयसार में अन्त में आता है। वर्तमान में है ऐसी आवली अनन्त है, वह मेरे उपयोग में रहो। वहाँ आवली है। यह काल, आवली अर्थात् यह काल है, ऐसा अनन्त काल मेरा उपयोग अन्दर में रहो। समझ में आया? है कलश में। आहाहा! पीछे अन्तिम कलश में है। अन्दर जाता है उपयोग-शुद्ध उपयोग (होता है) तो कहते हैं कि वह तो अन्तर्मुहूर्त की स्थिति है। परन्तु मैं तो कायम अन्दर में रहूँ, ऐसी मेरी भावना है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी की यह भावना है। भले फिर अन्दर रह सके नहीं और राग में आ जाए। परन्तु उपयोग कायम उसमें रहे, ऐसी भावना है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। है?

अन्तर्मुहूर्त को नहीं... सर्वस्वरूप से उपादेय मात्र शुद्धोपयोग... वह! **अन्तर्मुहूर्त को नहीं...** (अर्थात्) अन्तर्मुहूर्त शुद्धोपयोग रहे, उतना नहीं, **किन्तु शाश्वत अन्तर में रह जाना...** आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। प्रभु! तेरी परमेश्वर की स्थिति की तो अलौकिक बातें हैं, भाई! तू परमात्मा है, नाथ! आहाहा! तेरी पर्याय में चाहे जो हो, परन्तु तेरी चीज़ तो परमात्मा-परमेश्वर है। आहाहा! उस चीज़ को जिसने दृष्टि में ली... आहाहा! दृष्टि वहाँ लगा दी, तो कहते हैं कि उपयोग वहाँ रहे तो अन्तर्मुहूर्त ही रहता है। अन्तर्मुहूर्त के बहुत प्रकार हैं। असंख्य समय का सूक्ष्म उपयोग, उसको भी अन्तर्मुहूर्त

कहने में आता है। समझ में आया? मुनि है, सच्चे सन्त आनन्द का वेदन करनेवाले, वे छठे गुणस्थान में पौन सेकण्ड रहते हैं और सप्तम पौन सेकेण्ड से आधा रहता है। फिर भी कहने में अन्तर्मुहूर्त आता है। छठे की स्थिति अन्तर्मुहूर्त और सातवाँ पौन सेकेण्ड से आधा उपयोग में ध्यान में रहते तो भी कहने में आता है कि अन्तर्मुहूर्त। समझ में आया?

उपयोग अन्दर में गया... आहाहा! **शाश्वत अन्तर में रह जाना वही निज स्वभाव है,...** निज स्वभाव तो यह है। जैसी शाश्वत वस्तु है, ऐसी परिणति शाश्वत उसमें रहे, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! **वही कर्तव्य है।** है? है? आहाहा!

शुद्धात्मा में स्थिर होना वही कार्य है, वही सर्वस्व है। स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है, शुभभाव आये परन्तु वह सर्वस्व नहीं है॥२२३॥

२२३। **शुद्धात्मा में स्थिर होना वही कार्य है,...** कार्य तो यह है। आहाहा! शुद्धात्मा में-परमात्मा शुद्ध चैतन्यघन भगवान... आहाहा! उसमें स्थिर होना, वही कार्य है। पर्याय है न, (इसलिए) कार्य है। द्रव्य कारण है। आहाहा! **वही सर्वस्व है।** शुद्धात्मा में स्थिर रहना, वही सर्वस्व है। आहाहा! जिसमें व्यवहाररत्नत्रय का राग भी नहीं आता है, ऐसा शुद्ध उपयोग में अन्दर में स्थिर रहना। आहा..! सूक्ष्म बात है, बापू! अभी तो फुरसत (नहीं मिलती)। पुण्य शुभभाव करने की प्रवृत्ति भी एक घण्टा जाए। मन्दिर जाए तो हो गया। उसे पुण्य का भी ठिकाना नहीं है, प्रभु! तो यह पुण्य से भी भिन्न भगवान... आहाहा! जब तक ऐसी दृष्टि न हो तब तक तो दृष्टि मिथ्यात्व है। और उस मिथ्यात्व के गर्भ में अनन्त भव करने की ताकत है। आहाहा!

और दृष्टि शुद्ध चैतन्य पर पड़ी और दृष्टि हुई, उस दृष्टि में अनन्त केवलज्ञान लाने की ताकत है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय जो द्रव्य पर पड़ी और सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन के गर्भ में अनन्त केवलज्ञान लाने की ताकत है। आहाहा! **स्थिर हो जाना ही सर्वस्व है,...** स्वरूप में स्थिर होना ही सर्वस्व (है)। सर्वस्व। **शुभभाव आये...** शुभभाव आता है। **परन्तु वह सर्वस्व नहीं है।** वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान होने के बाद भी शुभभाव आता तो है, परन्तु वह कोई चीज़ नहीं है। जानने लायक है। है, ऐसा जानते हैं। उसका आदर करते नहीं।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५ श्रावण शुक्ल-१५, बुधवार, दिनांक - ०८-०८-१९७९
वचनामृत - २३२, २४१, २४५, २४७, २४८, २५१ प्रवचन-१८ (DVD 15)

ज्ञाता का ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, ध्यानमय हो गया—एकाग्रतामय हो गया। अन्दर चैतन्य के नन्दनवन में उसे सब कुछ मिल गया; अब बाहर क्यों जाए? ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर लिया, छोड़ने योग्य सब छूट गया; अब किसलिए बाहर जाए?॥२३२॥

२३२ बोल। है न २३२? सूक्ष्म विषय है थोड़ा। कोई भाई ने लिखा है कि यह पढ़ना। पत्र आया है न? उसमें यह शब्द है। **ज्ञाता का ध्यान करते-करते...** क्या कहते हैं? मैं ज्ञायक-ज्ञाता हूँ—ऐसी दृष्टि लगाकर ध्यान करते-करते **आत्मा ज्ञानमय हो गया,...** आहाहा! उसकी विधि यह है। मैं ज्ञाता-ज्ञायक हूँ, ऐसे ज्ञायक ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... उसका ध्यान करने से, उस पर दृष्टि करने से, ध्यान करने से, करते-करते... **ध्यान करते-करते...** ध्यान करते-करते **आत्मा ज्ञानमय हो गया,...** अन्तर में आत्मा ज्ञानमय हो गया। आहाहा! आनन्द के अनुभव में आत्मा ज्ञानमय हो गया। आहाहा! राग का रटन करते-करते ज्ञानमय नहीं होता, ऐसा कहते हैं। एक समय की पर्याय का रटन करते-करते ऐसा नहीं होगा। आहाहा!

मैं तो चैतन्य ज्ञायक ज्ञाता (हूँ), ऐसा ध्यान करते-करते भगवान आत्मा ज्ञानमय परिणमन हो गया। सूक्ष्म विषय है। परन्तु यथार्थ अमृत की धारा है। आहाहा! समझ में आया? सुनते-सुनते वह ज्ञानमय हो जाता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। और पढ़ते-पढ़ते ज्ञानमय हो जाता है—ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसे दया, दान, व्रत का विकल्प करते-करते ज्ञानमय हो जाता है—ऐसा नहीं। आहाहा! ज्ञाता भगवान चिदानन्द प्रभु अकेला ज्ञायकस्वभावभाव, ऐसी दृष्टि करते-करते... आहाहा! भगवान ज्ञानमय अनुभव में हो

गया। उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! दूसरी कोई क्रिया उसमें है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भगवान! सूक्ष्म विषय है, प्रभु! आहाहा!

ध्यानमय हो गया... ज्ञानमय हो गया अर्थात् ध्यानमय हो गया। ध्यान में एकाकार ज्ञायक का अनुभव हुआ। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। यह यथार्थ विधि और यह क्रम है। आहाहा! कोई सुनते-सुनते, पढ़ते-पढ़ते, बहुत पढ़ा और बहुत पढ़े, इसलिए ज्ञानमय और सम्यग्दर्शन हो जाता है—ऐसा नहीं है, प्रभु! आहाहा! भगवन्त! तेरा स्वरूप ही भगवत् स्वरूप है। भगवत् महिमावन्त ज्ञाता का ध्यान करते-करते ज्ञानमय एकाकार हो गया अथवा ध्यानमय हो गया। आहाहा! उसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है।

एकाग्रतामय हो गया। तीन बोल लिये। ज्ञातास्वभाव ध्रुव... ध्रुव ज्ञाता, उस पर ध्यान करते-करते आत्मा ज्ञानमय हो गया, भगवन्त ध्यानमय हो गया, एकाग्रतामय हो गया। लाईन की है न? ज्ञानमय-ध्यानमय का अर्थ यह। आहाहा! ये चीज़ ऐसी है। **अन्दर चैतन्य के नन्दनवन में...** ज्ञान जब आत्मा में एकाकार हो जाता है... आहाहा! तो **अन्दर चैतन्य के नन्दनवन में उसे सब कुछ मिल गया;...** भगवान आत्मा नन्दनवन... आहाहा! मेरु पर्वत पर नन्दनवन है। उसमें बहुत फल है, बहुत वृक्ष है। बहुत फल है, बहुत वृक्ष है। शास्त्र में है। मेरु पर्वत पर नन्दनवन है। सब प्रकार के फल, इतने फल... इतने फल..! आहाहा! ऐसे यह आत्मा अन्तर के ध्यान में, ज्ञान में एकाकार हुआ तो नन्दनवन में सबकुछ मिल गया। आहाहा! ये नन्दनवन। आहाहा!

सब कुछ मिल गया;... भगवान आत्मा के अनुभव में आनन्द में, ध्यान में जहाँ आत्मा ज्ञानमय हो गया, वहाँ ज्ञानमय सारी चीज़ नन्दनवन मिल गयी। आनन्द मिला, श्रद्धा मिली, शान्ति मिली, स्वच्छता मिली, प्रभुता मिली... सब मिल गया। आहाहा! जितने अनन्त गुण है, उन अनन्त गुण में एकाग्रता करते-करते, ध्यान करते, ज्ञानमय करते, एकाग्रता करते अनन्त गुण की निर्मल पर्याय वहाँ प्रगट हुई तो नन्दनवन में क्या कुछ बाकी है? आहाहा! वह तो दो-तीन बार कहा था न?

प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा। आहाहा!
पर की आश कहाँ करे प्रीतम?

हे प्रिय नाथ! वालम-वालम मेरा प्रभु!

पर की आश कहाँ करे प्रीतम? कई बातें प्रभु तुम अधूरा? आहाहा!
कई बातें तुम अधूरा? प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा। आहाहा!
पर की आश कहाँ करे व्हाला! तू किस बातें अधूरा,
प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा...

आहाहा! **नन्दनवन में उसे सब कुछ मिल गया; अब बाहर क्यों जाए?** जहाँ आनन्द का स्वाद आया और अन्तर में आत्मा मिल गया, आहाहा! अब बाहर क्यों जाए? आहाहा! रतनलालजी! वचनामृत का उसको बहुत प्रेम है, प्रिय है। रतनलालजी कहते हैं कि सौ बार पढ़े तो भी सन्तोष नहीं होता है। इतना पैसेवाला है, फिर भी यह रस (है)। आहाहा! प्रभु! पैसा क्या? पैसा तो धूल है। उसकी इज्जत भी धूल है। आहाहा!

अन्तर आनन्द का नाथ, उसका ध्यान-एकाग्रता करते-करते अन्दर में नन्दनवन में चला गया। तो नन्दनवन में सबकुछ मिल गया। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्तरस मिल गया। आनन्द मिल गया, ईश्वर की शक्ति सब पर्याय में मिल गयी। आहाहा! कहो, रमेशभाई! ऐसी बात है यह। ऐसी बात है, प्रभु!

ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर लिया,... समयसार में आता है न, उसका वाँचन (चलता होगा)। ग्रहण करनेयोग्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वहाँ दृष्टि का स्वीकार होकर। दृष्टि ने वहाँ सत्कार किया, स्वीकार किया कि चिदानन्द भगवान मैं हूँ। आहाहा! **ग्रहण करने योग्य आत्मा को ग्रहण कर लिया,...** प्रभु को जो कुछ ग्रहण करना था, वह तो दृष्टि में आ गया। परमात्मा अनन्त आनन्दमय ग्रहण किया और **छोड़ने योग्य सब छूट गया;...** आहाहा! निमित्त, राग और पर्याय का लक्ष्य था, वह सब छूट गया। आहाहा! **अब किसलिए बाहर जाए?** जहाँ भगवान की भेंट हुई अन्दर में, अब उसको छोड़कर पामर में जाने का प्रयास क्यों करे? आहाहा! ऐसी बातें हैं। वह २३२ (बोल पूरा) हुआ। अब कौन-सा है? २४१?

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द ॥२४१॥

२४१। आहाहा! ... पत्र के अन्दर लिखा है कि ये-ये पढ़ना। ... भाई ने, सन्तोषभाई ने। हमारे सन्तोषकुमार है न? किसी ने लिखा था। **ओहो! यह तो भगवान आत्मा!** आहाहा! दृष्टि जहाँ अन्तर में जम गयी,... जेठालालभाई! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! बालगोपाल में भगवान विराजता है, हों! परमात्मा। शरीर को मत देखो। शरीर को जानने में भी मत रुको। आहाहा! अपनी चीज़ में... **ओहो! यह तो भगवान आत्मा!** दृष्टि में जहाँ अनुभव में आया, उस ओर के झुकाव से जब अनुभव में पहली बार आया। **ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति!** सर्वांग। सारे असंख्य प्रदेश में आनन्दमय अनन्त। सहजानन्द, ये स्वामीनारायण के सहजानन्द नहीं है, हों! वह कोई कहता था। मुझे एक बार सम्प्रदाय में हुआ था। सम्प्रदाय में एक बार उमराला ठहरे थे। सम्प्रदाय छोड़कर। वहाँ एक स्थानकवासी की जैनशाला थी, उसमें उतरते थे। सामने सेठ की स्त्री थी। यहाँ सहजानन्दी (सुना होगा)। उसे लगा, सहजानन्दी तो स्वामीनारायण हैं, अपने में कहाँ से आये? आहाहा! सहजानन्द स्वामीनारायण का यह नहीं। आहाहा!

यह तो सहजानन्द की मूर्ति, यह आत्मा सहज स्वाभाविक आनन्द की मूर्ति प्रभु। आहाहा! अरे! तेरा घर तो देख। आहाहा! परघर में तू भटकता है। आहाहा! वह आता है न? भजन में आता है न?

अब हम कबहू न निजघर आये, अब हम कबहू न निजघर आये,
परघर भ्रमत अनेक नाम धराये,...

परघर भ्रमत अनेक नाम... 'मैं सेठ हूँ, मैं पैसेवाला हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं पापी हूँ, मैं पाप करनेवाला हूँ' ऐसा अनेक नाम धराया प्रभु तूने। आहाहा! 'अब हम कबहू न निजघर आये' जहाँ नन्दनवन भगवान विराजता है, वहाँ तू आया नहीं और परघर भ्रमत... राग किया, दया-दान किया, व्रत किया, भक्ति की, पूजा की... आहाहा! परघर भ्रमत अनेक नाम धराया। मैं पुजारी हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द,...** अन्तर में देखो तो जहाँ देखो वहाँ आनन्द.. आनन्द... आनन्द अतीन्द्रिय। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! परन्तु परम सत्य है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा का... बाह्य भगवान का तो विरह, अन्तर भगवान का अनादि से विरह (था), वह विरह टूट गया। आहाहा! भगवान आत्मा सहजानन्द की मूर्ति है, वह तो। मूर्ति अर्थात? स्वरूप। सहजानन्द की मूर्ति प्रभु। सहजानन्दस्वरूप है। आहाहा! शान्तिभाई! ये आपके हीरा-माणेक में पच्चीस-तीस (लोग) काम करे। सब बुद्धिवाले, हों! पच्चीस लोग तो उसके घर पर काम करते हैं। हीरा घिसने का। एक-एक को पाँच सौ-सात सौ तो मिलते होंगे न? पंकजभाई! ज्यादा? ऐसे सब होशियार थे। महीने-महीने का हजार रुपया पैदा करते होंगे। ऐसे पच्चीस लोग काम करे।

मुमुक्षु : .... अलग करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग करते होंगे, कुछ भी करते होंगे। जैसे पच्चीस लोग तो काम करे। पच्चीस हजार तो उनको देना पड़े, एक महीने में। उसमें आनन्द कितना आये? आहाहा! अपने कितनी कमाई है!

मुमुक्षु : आप बोलो, इसलिए दूसरों को महिमा तो आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उसकी क्या महिमा है? धूल में है नहीं। यह तो एक बताना है। आहाहा!

कहते हैं, **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द,...** आनन्द ही आनन्द। आहाहा! भगवत् स्वरूप जहाँ अन्तर की दृष्टि में आया तो जहाँ देखो, वहाँ आनन्द ही आनन्द। दुःख की वहाँ गन्ध नहीं, क्लेश की वहाँ वासना नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान। जहाँ अन्तर दृष्टि पड़ी और आनन्द देखा, जहाँ देखो वहाँ आनन्द। असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द। एक-एक गुण का अनन्त आनन्द, ऐसा अनन्त गुण का आनन्द। आहाहा! समझ में आया? आनन्द जो है, वह एक-एक गुण का आनन्द।

आनन्द का रूप अनन्त गुण में है। आहाहा! अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्द, जीवतरशक्ति का आनन्द, प्रभुत्वशक्ति का आनन्द, कर्ताशक्ति का आनन्द, कर्मशक्ति का आनन्द, करणशक्ति का आनन्द, सम्प्रदानशक्ति का आनन्द। ऐसी अनन्त शक्तियाँ

भगवान में हैं। आहाहा! वह भी एक-एक शक्ति अनन्त रूप धारण करती है आनन्द का। और एक-एक शक्ति अनन्त पर्याय को प्रगट करती है, ऐसी एक-एक शक्ति है। आहाहा! ऐसा अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान जहाँ देखो, वहाँ नजर में आनन्द ही आनन्द आता है। आहाहा! बाहर में समकिती को विकल्प आता है तो बाहर में दिखता है कि बाहर में उल्लास है। आहाहा! (किन्तु) अन्दर में उल्लास हटता नहीं। अन्दर में आनन्द का उल्लास किसी क्षण भी अन्दर से हटता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ से देखो वहाँ आनन्द,... जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास,... शक्कर में सर्वांग मिठास (है)। शक्कर... शक्कर। सर्वांग मिठास। सर्व अंग में सर्व प्रकार की मिठास। आहाहा! **वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द**। आहाहा! उसकी दृष्टि अन्दर में जमते ही... आहाहा! ओर वही करने लायक और कार्य वही है। आहाहा! **आत्मा में सर्वांग आनन्द**। आहाहा! **जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द**। आहाहा! यह तो निश्चय... निश्चय की बातें करते हैं, ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! निश्चय अर्थात् तेरी चीज़ जो परमानन्दमय है, वह निश्चय। आहाहा! बाकी रागादि पर्याय भी व्यवहार है। आनन्द की पर्याय हुई; जहाँ देखो, वहाँ आनन्द—ऐसा पर्याय में आनन्द आया, परन्तु वह आनन्द आया, वह भी पर्याय और व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! परन्तु वह आनन्द की पर्याय और सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय त्रिकाली आनन्द है। आहाहा! त्रिकाली आनन्द में से आनन्द झरता है। पर्वत में से जैसे पानी झरता है, परन्तु वह पर्वत और पानी तो भिन्न चीज़ है। यह तो आत्मा और आनन्द अभिन्न है अन्दर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि करना, वह कर्तव्य है।

जैसे शक्कर में सर्वांग मिठास पड़ी है, वैसे भगवान आत्मा में सर्वांग आनन्द है। उस आनन्द के आगे स्वर्ग के देव, करोड़ों अप्सराओं का स्वामी, बत्तीस लाख विमान का स्वामी, एक-एक विमान में असंख्य देव, करोड़ों अप्सरायें, जिसे अनाज की जरूरत नहीं, ये स्त्रियाँ तो अनाज का खिलौना कि जो दो-चार दिन खाये नहीं तो शरीर ऐं... ऐं... ऐं... हो जाए। आहाहा! करोड़ों अप्सरायें, जिन्हें अनाज की जरूरत नहीं। आहाहा! एक हजार वर्ष के बाद तो अमृत की डकार आये। ऐसी अप्सराओं का भोग आनन्द के आगे दुःखरूप और जहर लगे। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा में सर्वांग आनन्द। आहाहा! २४१ हुआ। २४५? २४५

'मैं मुक्त ही हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो परिपूर्ण द्रव्य को पकड़कर बैठा हूँ।'—इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है, वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है॥२४५॥

२४५। **मैं मुक्त ही हूँ**। ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने अत्मा को जानते और मानते हैं। आहाहा! **मैं मुक्त ही हूँ**। आहाहा! आज कुछ आया था। पहलेवाले पत्रों में कहीं पर आया था। मुक्त... मुक्त... मुक्त का... ४७। बोल। **त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है**। इसमें कितने शब्द पड़े हैं मुक्त के। **मुक्त है या बँधा है, वह व्यवहारनय से है,...** पर्यायदृष्टि से कहने में आता है। वस्तु सदा मुक्त है। बन्ध है, वह तो पर्याय है। आहाहा! **जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है,...** मकड़ी। अपनी लार में बँधी है। लार तोड़ दे तो मुक्त है। आहाहा! **जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है, वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जंजाल में फँसा है परन्तु मनुष्यरूप से छूटा है;...** मनुष्यपना से कोई छूटता नहीं। वैसे भगवान अनेक प्रकार के विकल्पादि में (दिखे), परन्तु मुक्तस्वरूप से छूटता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। फिर एकान्त कहे न। क्रिया व्यवहार है, वह धर्म नहीं, उससे आत्मा का कल्याण नहीं है। इसलिए सोनगढ़ का एकान्त है, ऐसा कहते हैं। कहो, प्रभु! तू भी प्रभु है न! 'जामे जितनी बुद्धि है, इतनो दिये बताय, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये'। तीन लोक का नाथ, जिसकी उसे कीमत नहीं है। और कीमत करने की पर्याय से निर्मल कीमत होती है। राग से उसकी कीमत नहीं होती। आहाहा! राग तो मैल है। वह चीज़ में नहीं है। आहाहा! निर्मलानन्द का नाथ भगवान आत्मा... ७२ गाथा में कहा है न? ७२ गाथा। भगवान आत्मा... पुण्य-पाप का भाव अशुचि-मैल है, भगवान आत्मा निर्मलानन्द है। ७२ गाथा में, समयसार।

यहाँ तो वह कहा, मनुष्यपने से छूटा नहीं। **वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है,...** मकड़ी समझे ना? गुजराती भाषा में करोलिया कहते हैं। **विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परन्तु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है...** आहाहा! अरे! पहले मुक्त आया, उसके बाद यह मुक्त आया। **ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है**। तीसरी बार

मुक्त आया। चैतन्य तो ज्ञान, आनन्द की मूर्ति, ज्ञायकमूर्ति है। परन्तु स्वयं अपने को भूल गया है। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' कोई कर्म ने भुलाया है, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

विभाव का जाल बिछा है, उसमें फँस गया है, परन्तु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। आया? कितनी बार 'मुक्त' आया? चार बार आया। मुक्त-मुक्त प्रभु। मुक्ति की मुक्तता तो पर्याय की है। द्रव्य तो त्रिकाल मुक्त है। आहाहा! अरे! मुक्त की... जिसे १४-१५ गाथा में अबद्ध कहा। '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' अबद्ध कहो या मुक्त कहो। मुक्त को देखे, अनुभवे, उसने जिनशासन देखा। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं है, नाथ! परन्तु कहाँ-कहाँ जकड़ गया।

सत् सुनने मिला तो कठिन है करके निकाल दिया। कुछ सरल तो होना चाहिए न। पहली शुरुआत दया, दान, भक्ति करना.. ऐसा करते-करते (होगा)। ऐस कहकर निषेध करके सत् का आदर नहीं किया। आहाहा! सुनने मिला तो... ये तो व्यवहार... पूरा दिन हमें संसार का व्यवहार करना, उसमें से छूटकर थोड़ा देवदर्शन, मन्दिर बनाना, उसे तो कहते हैं कि नहीं, वह धर्म नहीं है। लक्ष्मीचन्दभाई! तुमने पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया, उसमें धर्म नहीं है। आहाहा! यह तो २६ लाख का बना है। यह मकान (परमागम मन्दिर) २६ लाख का है। मात्र आरसपहाण का है न। आसरपहाण को क्या कहते हैं? संगमरमर। पौने चार लाख अक्षर है। साठ हजार अक्षर लोगों को सोने के करने थे। हम किसी को कहते नहीं कि करो। परन्तु ना कहना पड़े। साठ हजार सोना के अक्षर (करने का था)। भाई! हम जंगल में आ गये हैं यहाँ। आप साठ हजार सोने का अक्षर करोगे, इस जंगल में बर्दाश्त नहीं होगा। साठ हजार अक्षर सोने में लिखनेवाले थे। उसमें पन्द्रह हजार किये। पन्द्रह हजार पद लिखे। ना कहा, भाई! आप इतना करना रहने दो। यहाँ पैसा तो लाखों-करोड़ों खर्च हुए हैं। हम कहते नहीं है कि करो। परन्तु न कहनी पड़ती है। भाई! हम तो यहाँ जंगल में आ गये हैं। उसमें आप लोग साठ हजार सोने के करोगे, बापू! लोगों को ईर्ष्या होगी। आहाहा! आहाहा! एक ओर आप त्यागी कहलाओ और एक ओर साठ हजार सोने के अक्षर लिखवाकर बाहर में उसमें रहना, व्याख्यान देना। अरे..! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! भरत चक्रवर्ती ने तीन काल की प्रतिमायें सोने की बनायी। सोने में।

कैलाशगिरि। तीन काल की चौबीसी, ७२ (प्रतिमाएँ)। सोने के मन्दिर। आहाहा!

मुमुक्षु : बौद्ध के आज सोने के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। बौद्ध में भी सोने के हैं। क्योंकि बौद्ध को माननेवाले बहुत हैं। विदेश में बहुभाग बौद्ध को माननेवाले हैं, इसलिए सोने के करते हैं। उसमें क्या आया?

सुवर्णस्वरूप ऐसा भगवान, जिसको काट लगता नहीं-जंग लगता नहीं, ऐसे भगवान को जाने बिना जंग लगती है, वह तो अज्ञान के कारण से हैं। वह आ गया है न पहले? सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में आ गया। भगवान तो आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, उसको बंध कैसा है? अरे..! नाथ अबंध है, वहाँ बंध कैसा? प्रभु! वह तो अज्ञान की महिमा है। आया है। चन्दुभाई! समयसार में आया है? आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्यहीरा, मुक्तस्वरूप प्रभु को यह बंध कैसा? तो प्रभु कहते हैं कि स्वरूप की खबर नहीं है। अपना चैतन्य चमत्कारी महाप्रभु, उसके अज्ञान के कारण बन्ध है। नहीं तो वह तो अबन्धस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? कठिन लगे, परन्तु समझने की बात तो यह है। भाई!

यह मनुष्यपना चला जाता है, भाई! एक-एक दिन जाता है, वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा! आयुष्य जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे मृत्यु के समीप जाता है। अरे! अभी तो २५-२५ साल की महिलाएँ, आदमी बेचारों का देह छूट जाता है। पीलिया हुआ। पीलिया होता है न? पीलिया। उसमें से कमली होती है और कमली में से देह छूट जाता है। आहाहा! वह तो उसी प्रकार से उस समय पर्याय होनेवाली होती है, वह होती है। डॉक्टर नहीं मिला, इसलिए ऐसा हुआ...

मुमुक्षु : डॉक्टर ऐसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर ऐसा कहे। चन्दुभाई ने कहा था न। शान्तिलाल खुशाल। दो अरब चालीस करोड़ रुपया। दो सौ चालीस करोड़, दो सौ चालीस करोड़। इतना तो सुना है। सुना है उतना मालूम है। बाकी तो कितने होंगे, यहाँ कौन गिनने गया है। किसी ने कहा हो, वह सुना हो, वह कहते हैं। पैसे तो बहुत हैं। आहाहा! आखिर में पीड़ा हुई, इसलिए मुम्बई आये। स्त्री को हेमरेज हुआ था। दो-चार दिन के बाद रात को डेढ़ बजे जाग गये। मुझे दुःखता है। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर को बुलाने गये... उस भाई को

हम पहचानते हैं। मुम्बई में है, उनके समधि हैं। डॉक्टर आया उतनी देर में तो उड़ गये। डॉक्टर आकर इंजेक्शन देकर आयुष्य बढ़ा देता? धूल में भी नहीं। इंजेक्शन तो उसके शरीर को छूता भी नहीं। शरीर आत्मा को छूता नहीं, इंजेक्शन शरीर को छूता नहीं। चन्दुभाई! थोड़ी देर हो गयी। ऐसा डॉक्टर कहते थे। थोड़ी देर पहले आये होते तो उपाय कर सकता। धूल में भी नहीं है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आयुष्य था, इसलिए बचा है। वह पर के कारण, दवाई के कारण बचा, वह बिल्कुल झूठ है।

मुमुक्षु : डॉक्टर मुफ्त के पैसे लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा जाना होता है, वहाँ जाता है। परमाणु को दे कौन और ले कौन? जहाँ परमाणु का जाना हो, वहाँ जाए, नहीं जाना हो तो न जाए। परमाणु में क्रियावर्तीशक्ति है, क्रियावर्तीशक्ति है। समझ में आया? तो वह पर्याय होती है। पैसा जाता है, वह कोई आत्मा दे सके और हाथ से दे सकता है, इसलिए जाता है—ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **मुक्त ही है। द्रव्य बँधा हुआ नहीं है।** वह ४७।

अब अपने यहाँ (चलते बोल में)। आहाहा! '**मैं मुक्त ही हूँ।**' २४५। '**मैं मुक्त ही हूँ।** भगवान आत्मा अन्दर मुक्तस्वरूप विराजमान है। **मुझे कुछ नहीं चाहिए।** भगवान आत्मा अन्दर मुक्तस्वरूप विराजमान है। **मुझे कुछ नहीं चाहिए।** ऐसा जिसकी दृष्टि में, भावना में हो। **मैं तो परिपूर्ण द्रव्य को पकड़कर बैठा हूँ।** आहाहा! परिपूर्ण द्रव्य जो वस्तु है, उसको पकड़कर बैठा हूँ। सम्यग्दर्शन में ऐसा पकड़कर बैठा हूँ। समझ में आया? **इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है,...** इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है। **वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है।** वहाँ अनन्त विभूति-वैभव। जो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि मैं निज वैभव से कहूँगा। निज वैभव क्या? अतीन्द्रिय ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, समकित और आनन्द, यह निज वैभव। यह निज वैभव मुझे मिला, वह तुमको कहूँगा कि क्या चीज़ है यह। आहाहा!

यहाँ तो **अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है**। पूर्ण तो परिपूर्ण है। परन्तु जहाँ अन्तर में दृष्टि लगाकर अनुभव हुआ तो अंशतः विभूति पूर्ण विभूति में से, पूर्ण वैभव में से अंशतः वैभव अर्थात् विभूति प्रगट होती है। आहाहा! ऐसी बात है। है? २४५ (हुआ)।

आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है। अनन्त काल में न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्व में जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ, वही अलौकिक दर्शन है। सिद्धदशा तक की सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूति में जाकर मिलती हैं॥२४७॥

२४७। **आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है**। आहाहा! भगवान का दर्शन होना ही अपूर्व दर्शन है। इस भगवान का। उस भगवान के दर्शन करने में तो शुभभाव है। आहाहा! अरे! 'जवानी झोला खाय।' २५ साल की जवानी और स्त्री २०-२२ साल की जवान सुन्दर हो, उसमें पाँच-पच्चीस लाख रुपया हो.. ओहो! फिर देखो, पागल हो गया। मजा है उसमें। कैसा मजा? प्रभु! धूल में? आहाहा! स्त्री का दर्शन हो तो ऐसा हो जाए... आहाहा! बहुत अच्छी मिल गयी। सुन्दर और पैसेवाली। गृहस्थ हो और बाप को पुत्र न हो और पुत्री हो, पाँच-दस लाख रुपये दिये भी हों। आहाहा! अरे! भगवान! तुझे जहर चढ़ गया। तूने जहर का प्याला पिया, प्रभु! अमृत के सागर को तू भूल गया।

आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है। आहाहा! एक बार कहा था न? वडिया गये थे न? वडिया। (संवत्) १९९५ की बात है। वहाँ तो दरबार भी व्याख्यान में तो आये। रामजीभाई, नानालालभाई आदि सब थे। दरबार है। बहुत होशियार था। लौकिक। जिसके पास दूसरे राजा सीखने आते थे। छोटे-छोटे राजकुमारों को गद्दी पर बैठना हो तो राजा की रीति सीखने आते थे। तो हम वहाँ गिरनार से वापस आते समय गये थे। तो राजा और राजकुमार उसके पास पढ़ने आये थे। सब व्याख्यान में आते थे। एक बार दरबार ने विनती की, महाराज! हमारे घर पधारिये। रानी को दर्शन करना है। और हमारा भोजन क्षत्रिय से आप नहीं लेते हो, परन्तु हमारा ब्राह्मण का भोजन है। वहाँ आप थोड़ा आहार लो। हम तो रानी के अन्तःपुर में गये। रानी को देखो तो कुछ ठिकाना नहीं। दूसरे को तो ऐसा लगे कि रानी कैसी होगी! ऐसा सब लटके। रानी और रानी की लड़की, दोनों दर्शन

करने आये। अन्त:पुर में गये। दुनिया कहाँ भ्रमित हो गयी है। रानी साहिबा कैसी होगी? रानी साहिबा कैसी होगी? ये रानी साहिबा।

मुमुक्षु : पर्दे के कारण...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्दे के कारण मानो... आहाहा! वह तो पर्दा रखे भी, ये तो राग की ओझल में भगवान अन्दर साक्षात्कार विराजमान है। आहाहा! राग को तोड़कर अन्त:पुर में जाए, अन्त:पुर में जाए तो भगवान मिलेगा। आहाहा! **आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है।** साक्षात्कार यह तो अपूर्व दर्शन है। वह तो अपूर्व दर्शन है। अनन्त काल में एक समय भी किया नहीं। आहाहा! आत्मा का पर्याय में साक्षात्कार-वेदन हुआ, आत्मा में साक्षात् दर्शन हुआ वह अपूर्व दर्शन है। भगवान का दर्शन और समवसरण का दर्शन तो अनन्त बार किये। उसमें है नहीं। वह शुभभाव है। आहाहा!

धर्मी को तो.. जैसे एक... इसमें एक बोल है। एक आदमी जाता हो। जहाँ जाना हो वहाँ जाए, बीच में जो गाँव आये उसे छोड़ता जाए। नगर, गाँव। भले बड़ा नगर हो तो भी छोड़ता जाता है। अपने गाँव में जाना है। वैसे धर्मी अपने नगर में-पूर्णानन्द में जाना है, बीच में रागा आता है, उसे छोड़ते जाते हैं। लक्ष्मी-बक्ष्मी की तो बात भी नहीं है। वह तो बाहर में पड़ी धूल है। आहाहा! अपने निजघर में नगर में जाते-जाते बीच में शुभभाव आते हैं, अरे! अशुभभाव भी आते हैं। शुभाशुभभाव परिणति में आते हैं। आहाहा! जैसे वह नगर छोड़कर (निजघर में जाता है)। महा सुन्दर नगर हो, बड़ा राजा आदि हो, परन्तु अपना लक्ष्य जो गाँव है, भले छोटा हो, परन्तु वहाँ जाना है तो इन सब नगर को छोड़कर जाता है।

वैसे भगवान आत्मा में जाना है तो राग को छोड़कर अन्दर जाना है। जिसको आत्मा का अनुभव हुआ, उसको राग आता है, परन्तु वह राग को छोड़ते-छोड़ते अन्दर जाता है। आहाहा! ऐसी बातें। आया?

अनन्त काल में न हुआ हो ऐसा,... चैतन्य का दर्शन अपूर्व है। श्रद्धा-ज्ञान में दर्शन होता है। निश्चय से तो परमात्मप्रकाश में ऐसा कहते हैं कि अचक्षुदर्शन की दशा में दिखता है। अचक्षुदर्शन उसमें लिया है। पर्याय में अचक्षुदर्शन की पर्याय है। समकित के

विषय को ही अचक्षुदर्शन देखता है। परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव (कहते हैं)। आहाहा! इस चक्षु से तो बाहर का दिखने में आता है। और अचक्षु-इसके सिवा चार इन्द्रियाँ पर को देखती है, वह वास्तव में अचक्षुदर्शन नहीं।

अचक्षुदर्शन तो परमात्मप्रकाश में कहा कि जो अचक्षुदर्शन भगवान को देखता है, वह अचक्षुदर्शन है। आहाहा! बाकी पाँच इन्द्रिय में, चक्षु बिना चार इन्द्रिय से देखे, वह अचक्षुदर्शन, वह तो बाह्य का है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! नियमसार में लिखा है न? कोई ऐसा माने कि दर्शन स्व को देखता है और ज्ञान पर को देखता है। हे मूढ़! ऐसा कहा है टीकाकार ने। ऐसा है नहीं। दर्शन स्व को देखे, ज्ञान पर को देखे। दर्शन स्व को देखे तो पर को देखे नहीं। दर्शन... आत्मा को स्व-परप्रकाशक कहना। देखना-जानना, वह आत्मा। दर्शन स्व को देखे, ज्ञान को देखे तो-तो भिन्न चीज़ हो गयी। समझ में आया? वहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार में ऐसा शब्द लिया है, हे मूढ़! तेरे जैसा कोई मूढ़ नहीं है। ऐसा लिखा है। नियमसार में। कोई बात लक्ष्य में आने पर बहुत बात दिमाग में आये एकदम। लेकिन कुछ-कुछ कही जाती है, कुछ छूट जाती है। समझ में आया? आहाहा!

दर्शन स्व को देखे और ज्ञान पर को देखे। दर्शन और ज्ञान आत्मा का स्वभाव और आत्मा स्व-परप्रकाशक है। तू एक ही गुण को परप्रकाशक और एक गुण को स्वप्रकाशक कहता है तो हे मूढ़! तुझे आत्मा के गुण की अभेदता की खबर नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। और वह नियमसार, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरी भावना के लिये बनाया है। मैं मुनि हूँ। भावलिंगी सन्त हूँ। परन्तु मेरी भावना के लिये मैंने यह बनाया है। अशुभ से बचने को। आहाहा! शुभ विकल्प है न वह। अस्थान से बचने को... पंचास्तिकाय में आता है। अस्थान से बचने को अथवा अशुभ से बचने को शुभभाव आता है। वह भी वास्तव में तो उस समय आनेवाला है, वह आता है। अशुभ से बचने का तो एक अपेक्षा से समझाया है। जिस समय जो शुभभाव आना है वह अशुभ से बचने को आया। वह तो छद्मस्थ है तो उसको ख्याल में आया कि अरे..! अशुभ न हो। ऐसा विकल्प देखकर कहा कि अशुभ से बचने को (आया)। बाकी तो जिस समय आता है, उस समय आयेगा। परन्तु ज्ञानी उसको छोड़कर अपने लक्ष्य में जाना है अन्दर नगर में, (वहाँ जाता है)।

आहाहा! व्यवहार की क्रिया में रुकते नहीं। क्योंकि वह तो रागवाली बन्ध की सब क्रिया है। आहाहा! ऐसी बातें।

वह कहा, **अनन्त काल में न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्व में जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ,...** दिव्य दर्शन हुआ। देव का दर्शन हुआ। चैतन्यदेव प्रभु का दर्शन। अहाहा! करने का ये है। **वही अलौकिक दर्शन है।** वह अलौकिक दर्शन है। चाहे तो भगवान के समवसरण में दर्शन करे। परन्तु वह तो लौकिक है, वह तो अनन्त बार किया। आहाहा! हीरे का थाल, रत्न का दीपक और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) समवसरण में साक्षात् भगवान के अनन्त बार, (दर्शन) किये। वह तो राग है। ज्ञानी को राग आता है, परन्तु राग को छोड़कर अन्दर में जाने का भाव करते हैं। बाहर में उल्लास दिखे, ऐसे भगवान को वन्दन करे। परन्तु अन्तर की दृष्टि को छोड़ता नहीं। समझ में आया? ऐसा है, सोमचन्दभाई!

वही अलौकिक दर्शन है। सिद्धदशा तक की सर्व लब्धियाँ... आहाहा! सिद्धदशा तक की सर्व प्राप्ति शान्ति की, मोक्षमार्ग की **शुद्धात्मानुभूति में जाकर मिलती हैं।** सब सिद्धि। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति, चारित्र, वीतरागता, शुक्लध्यान, केवलज्ञान। सब अन्तर में जाकर अन्तर के आश्रय से मिलती है। आहाहा! अरे.. अरे..! ये सब क्रियाकाण्ड का झया करना है? प्रवृत्ति की क्रिया कर सकता है? भाव आता है अन्दर। परन्तु भाव को छोड़कर प्रभु! तुझे जाना कहाँ है? तेरे नगर में जाना है न? तो राग को छोड़कर अन्दर नगर में जा। जहाँ आनन्द भरा है। राग आता है, वह तो दुःखरूप है। आहाहा! क्यों करता है? कि परिणति कमजोरी की आये बिना रहती नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो शुद्धात्मानुभूति में जाकर सब लब्धि मिलती है। केवलज्ञान, शुक्लध्यान, चारित्र आदि सब अन्तर में जाकर स्वभाव में से प्राप्त होता है। कोई क्रियाकाण्ड से प्राप्त होता है, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! २४७ (पूरा हुआ)।

विश्व का अद्भुत तत्त्व तू ही है। उसके अन्दर जाने पर तेरे अनन्त गुणों का बगीचा खिल उठेगा। वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर। अनन्त काल का विश्राम वहीं है॥२४८॥

२४८। **विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है।** आहाहा! चमत्कारिक चीज़ विश्व का अद्‌भुत ... तत्त्व है अन्दर भगवान। समझ में आया? अभ्यास नहीं, ऐसी बात सुनने मिले नहीं। व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, यह करो, वह करो। आहाहा! राग करना, राग करूँ, वह करना ही मरना है। ज्ञाता-दृष्टा भगवान के पास तुम राग करवाओ? आहाहा! चक्रवर्ती से महल में झाड़ लगवाओ। वैसे भगवान तीन लोक के नाथ, उनके पास तू राग की कीमत करके राग में अटकता है। प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं। **विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है।** ठीक! परमात्मा का तत्त्व नहीं। तेरा अद्‌भुत तत्त्व। चौदह ब्रह्माण्ड में जो छह द्रव्य भरे हैं... आहाहा! उसमें अद्‌भुत तत्त्व तो तू ही, प्रभु! अद्‌भुत चमत्कारिक चीज़ तो तू है। आहाहा! अद्‌भुत 'तू ही है'। ही है। अद्‌भुत तू ही है। **उसके अन्दर जाने पर तेरे अनन्त गुणों का बगीचा खिल उठेगा।** आहाहा! भगवान! तेरे अन्तर में जाने से... आहाहा! तेरा **अनन्त गुणों का बगीचा खिल उठेगा।** अनन्त गुणों का पर्याय में विकास होगा। जैसे कमल खिल उठता है, वैसे शक्ति में जो अनन्त गुण पड़े हैं, वह द्रव्यस्वभाव है, उसमें अन्दर में जाने से सर्व शक्ति खिल जाती है। पर्याय में खिल जाती है। जैसे कमल खिलता है, ऐसे खिल जाती है। आहाहा! ऐसी बातें, लो।

वहीं ज्ञान मिलेगा,... वहाँ अन्तर में जा, प्रभु! वहाँ तुझे ज्ञान मिलेगा। **वहीं आनन्द मिलेगा;...** अतीन्द्रिय आनन्द वहाँ मिलेगा, अन्तर जाने से। **वहीं विहार कर।** वह गाथा आती है न? ४१३। वहाँ विहार कर। विहार कर, विहार कर अर्थात् चलकर विहार करते हैं न। वहाँ विहारकर कर न! आहाहा! जैसे कदम बढ़ाकर चलते हैं न? तो विहार किया। आज मुझे विहार करना है। वह बाहर का विहार। ये तो अन्दर में विहार कर। **वहीं विहार कर।** आहाहा! **वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर। अनन्त काल का विश्राम वहीं है।** अनन्त काल का विश्राम-स्थान प्रभु है। आहाहा! अन्दर में विश्राम है। रागादि में विश्राम नहीं है, वह तो थकान, मैल और दुःख है। २४८ (पूरा हुआ)।

द्रव्य उसे कहते हैं, जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े॥२५१॥

२५१। डेढ़ पंक्ति है परन्तु अलौकिक है! २५१। **द्रव्य उसे कहते हैं...** द्रव्य उसको कहते हैं। आहाहा! यह तो जैन की गीता है! **द्रव्य उसे कहते हैं...** भगवान चैतन्यद्रव्य उसको कहते हैं, **जिसके कार्य के लिये...** जिसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्द की सिद्धि प्राप्त करने के लिये **दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े**। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य उसे कहते हैं, भगवान परमानन्द स्वरूप प्रभु कि जिसका द्रव्य का कार्य करने में पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, केवलज्ञान और मोक्ष का कार्य करने में अन्य द्रव्य के साधन की राह देखनी पड़ती नहीं। आहाहा! समझ में आया? डेढ़ पंक्ति है, परन्तु बहुत ऊँची चीज़ है। आहाहा!

द्रव्य उसे कहते हैं... भगवान आत्मा उसे कहते हैं। भगवान आत्मा को भगवान ऐसा कहते हैं... भगवान! तेरा कार्य करने में-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि मोक्षमार्ग और मोक्ष, वह कार्य करने में दूसरे द्रव्य की राह नहीं देखनी पड़े। दूसरे द्रव्य के **साधनों की राह न देखना पड़े**। आहाहा! क्योंकि अन्दर में भगवान में साधन नाम का गुण पड़ा है। अनादि जैसे ज्ञान और आनन्द है, ऐसा एक करण नाम का गुण पड़ा है। आहाहा! उस भगवान का कार्य करने में दूसरे किसी साधन की आवश्यकता—राह नहीं देखना पड़ती। आहाहा! तेरा साधन तो अन्दर गुण है। गुणी की दृष्टि अनुभव करने से साधक का जो गुण है-करणगुण, वह शुद्धरूप से साधन परिणमेगा। तेरा द्रव्य ही शुद्धरूप परिणमेगा। परद्रव्य की राह न देखना पड़े। आहाहा! विशेष कहेगें....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६ श्रावण कृष्ण-२, गुरुवार, दिनांक - ०९-०८-१९७९
वचनामृत - २६६, २८१, २८५, ३२८ प्रवचन-१९ (DVD 15)

यदि तुझे जन्म-मरण का नाश करके आत्मा का कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर; तेरे जन्म-मरण का नाश हो जाएगा। आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं : —तू मुक्तस्वरूप आत्मा में निस्पृहता से खड़ा रह। मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो। तू स्वयमेव सुखरूप हो जाएगा। तेरे सुख के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से सुख नहीं मिलेगा॥२६६॥

वचनामृत। कुदरती २६६ आया है। इसमें से यह आया है। किसी ने लिखा है न। कल पढ़ लिया है। २५१ कल पढ़ लिया है। २६६। २६६ नम्बर। **यदि तुझे जन्म-मरण का नाश करके...** यहाँ शुरुआत हुई। आहाहा! **जन्म-मरण का नाश करके आत्मा का कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर...** आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान ज्ञायकस्वरूप चैतन्यमूर्ति, उसमें दृष्टि लगाकर उसमें खड़ा होकर पुरुषार्थ कर। आहाहा! ऐसी बात है। बाह्य में तो कोई साधन है नहीं। ये बाह्य ठाठ-बाठ तो कोई शुभभाव हो (तो दिखे), लेकिन वह कोई चीज़ नहीं है। यहाँ तो कहते हैं, आत्मा का कल्याण करना हो और जन्म-मरण का नाश करना हो तो **तो इस चैतन्यभूमि में...** शरीर नहीं, राग नहीं, एक समय की पर्याय नहीं। चैतन्यभूमि-ज्ञायकभूमि। आहाहा! ज्ञायकधाम ज्ञायक ध्रुवधाम, उसमें खड़ा हो जा। आहाहा! वहाँ दृष्टि में खड़ा हो जा। आहाहा! यह बात है।

चैतन्यभूमि। रागभूमि, पुण्यभूमि नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय की भूमि में भी नहीं। आहाहा! ध्रुवधाम जो भूमि, वह चैतन्यभूमि, ज्ञायकभूमि, स्वभावभूमि, अतीन्द्रिय आनन्द की भूमि। आहाहा! उसमें खड़ा होकर वहाँ दृष्टि लगा और वहाँ खड़ा रह। वहाँ

खड़ा रह। राग में मत खड़ा रह, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? कल्याण करना हो तो। यह शर्त। जन्म-मरण का नाश करना हो तो। बाकी दूसरा कोई कारण है नहीं। जन्म-मरण का नाश करना हो तो। वह तो नास्ति से (कहा)। अस्ति से आत्मा का कल्याण करना हो तो। यह अस्ति से। आहाहा!

चैतन्यभूमि-ज्ञायकस्वभाव। निमित्त, राग और पर्याय की भूमि का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायक जो चैतन्यभूमि ध्रुव भगवान, उसमें खड़ा हो जा। वहाँ खड़ा रह। आहाहा! ऐसी बात है। वहाँ **खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर;...** अन्तर में झुकाव कर। आहाहा! राग में खड़ा रहकर अन्तर में पुरुषार्थ नहीं होगा। निमित्त में तेरी दृष्टि पड़ी होगी, तब तक तू तेरी अन्तर में, अन्तर भूमि में जा नहीं सकेगा। आहाहा!

तेरे जन्म-मरण का नाश हो जाएगा। आहाहा! पर से उदास और स्व में आसन लगा दे। आहाहा! उदासीनोऽसि। आता है न बन्ध अधिकार में? मैं तो १९ साल की उम्र में बड़ोदरा नाटक में देखा था। १९ वर्ष। सत्तर साल पहले की बात है। सत्तर वर्ष, सत्तर। सीत्तोर को क्या कहते हैं? सत्तर साल। उसके पहले की बात है। नाटक देखने को गये थे। बड़ोदरा से माल लिया था। रात को गये थे। उस बाई को पुत्र हुआ है ऐसा बताया। वह तो किसी का (होता है)। लेकिन उसको बाई झुलाती थी। बेटा! तू उदासीनोऽसि! नाटक में ऐसा कहते थे। आहाहा! बड़ोदरा की बात है। हमारे पालेज के पास है न। कहाँ गया मनसुख? तेरे जन्म से पहले की बात है। उसका जन्म तो (संवत्) १९७४ में हुआ है। आहाहा! बेटा! तू निर्विकल्प है। आहाहा! भाई! टिकट बारह आने की ली थी। आप क्या कहते हो, उसकी पुस्तक लाओ। पुस्तक के बारह आने दिये। क्या कहते हो, यह समझे बिना हम ऐसे ही नहीं सुनेंगे।

वह बाई ऐसा कहती थी, हजारों लोग नाटक में (आये थे)। रात्रि को। बेटा! तू निर्विकल्पोऽसि। आहाहा! अपने इसमें बन्ध अधिकार में है। बन्ध अधिकार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार और परमात्मप्रकाश। तीन जगह है। आहाहा! प्रभु! ते निर्विकल्प चैतन्यभूमि तेरी है। आहाहा! अर्थात् तेरी भूमिका शुद्ध है, पवित्र है। उस भूमि में तो आनन्द की फसल होती है, ऐसी तेरी भूमि है। आहाहा! कोई चावल की भूमि हो, कोई... क्या? भूल जाते हैं। कलथी... कलथी। कुलथी होती है, उसकी भूमि साधारण होती है। चावल की

भूमि ऊँची होती है। ये तेरी भूमि तो अनन्त आनन्द पके ऐसी भूमि है, नाथ! आहाहा! वहाँ निर्विकल्पोऽसि, उदासीनोऽसि ऐसे शब्द थे। शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, ये चार बोल याद रह गये थे। सत्तर साल पहले की बात है। अपने यहाँ तो बहुत बड़ा अधिकार है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तू अन्तर में खड़ा रहकर दृष्टि वहाँ लगा दे। आहाहा! ज्ञायकभाव जो ज्ञायक अस्ति वस्तु, ज्ञायक की सत्ता वस्तु, उसमें दृष्टि लगा दे। वहाँ खड़ा हो जा और वहाँ खड़ा होकर अन्तर में पुरुषार्थ कर। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! बाकी सब बाहर की बातें तो ठीक है। आहाहा! **तेरे जन्म-मरण का नाश हो जाएगा।** बाकी जन्म-मरण का नाश नहीं होगा, प्रभु! अरे! नरक और निगोद में तेरा अवतार, प्रभु! आहाहा! तू परमात्मस्वरूप भगवत्स्वरूप... आहाहा! तेरा नरक और निगोद में जन्म! प्रभु! योगीन्द्रदेव कहते हैं कि, कलंक है। भव करना, वह कलंक है। आहाहा! चाहे तो स्वर्ग का भव हो, परन्तु भव बिना की चीज़, प्रभु! उसमें वह भव तो कलंक है। आहाहा! एक बार अन्तर में खड़ा होकर (पुरुषार्थ कर तो) जन्म-मरण का नाश हो जाएगा।

आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं :— कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्तों अकषाय करुणापूर्वक कहते हैं। आहाहा! **तू मुक्तस्वरूप आत्मा में निस्पृहता से खड़ा रह।** मुक्तस्वरूप भगवान है। आहाहा! लाख बात की बात... आता है न छहढाला में? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद' द्वैतपना, मैं द्रव्य और पर्याय हूँ, ऐसा द्वैतपना भी छोड़ दे। 'छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम उर ध्यावो।' आहाहा! मैं द्रव्य हूँ और पर्याय, ऐसा द्वैत भी छोड़ दे। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वहाँ जम जा। **तू मुक्तस्वरूप आत्मा में निस्पृहता से...** कोई स्पृहा नहीं। मैं उसमें रहूँ तो मुझे कुछ चमत्कार हो, मुझे कोई स्वर्ग मिले। ऐसा कुछ नहीं। अन्तर चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ मूल चैतन्यभूमि, आनन्दभूमि अनन्त-अनन्त वज्र की आनन्द, ज्ञानभूमि ध्रुव। आहाहा! अरे! प्रभु! पर से दृष्टि हटाकर वहाँ दृष्टि लगा दे। प्रभु! तेरे जन्म-मरण का अन्त तब आयेगा। बाकी लाख क्रियाकाण्ड करे और दया, दान, व्रत और भक्ति (करे), वह सब तो संसार है। आहाहा! समझ में आया?

तू मुक्तस्वरूप आत्मा में... क्या कहते हैं? मुक्तस्वरूप आत्मा में। आत्मा कैसा है? कि मुक्तस्वरूप है। जो तत्त्व आत्मतत्त्व है, आत्मवस्तु है, आत्मद्रव्य है, वह तो

मुक्तस्वरूप है। आहाहा! पर्याय-अवस्था में राग का सम्बन्ध दिखता है, वस्तु में तो पर्याय का सम्बन्ध है ही नहीं, राग का सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! वस्तु में पर्याय का अभाव है तो पर्याय में राग का सम्बन्ध? दोनों का उसमें अभाव है। समझ में आया? पर्याय में राग का सम्बन्ध है, वह पर्याय में राग है, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो। क्या कहते हैं? मुक्त-मोक्ष की स्पृहा-इच्छा और चिन्ता से भी मुक्त हो जा। मोक्ष की चिन्ता से भी मुक्त हो जा। मोक्ष की चिन्ता से मोक्ष नहीं मिलेगा। मोक्षस्वरूप में एकाग्र होने से मोक्ष मिलेगा। आहाहा! मुक्तस्वरूप है। आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में आता है न? पुण्य-पाप अधिकार। मुक्तस्वरूप है तो मोक्ष का मार्ग वहाँ से निकलेगा। बन्धस्वरूप है, बन्धस्वरूप है तो बन्ध का ही कारण वहाँ उत्पन्न होगा। पुण्य-पाप अधिकार में है। कनुभाई! ये गाथा है। याद तो अन्दर बहुत है, परन्तु कोई-कोई बाहर कहने में (आती है)। पुण्य-पाप अधिकार में ऐसा आया है। आहाहा! कि बन्धरूप है तो उसको बन्ध का ही कारण उसमें उत्पन्न होगा। प्रभु मुक्तस्वरूप है तो मुक्त का कारण ही पर्याय में उत्पन्न होगा। आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार में है।

यहाँ कहते हैं कि तू **मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो। तू स्वयमेव सुखरूप हो जाएगा।** प्रभु! तू स्वयमेव चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर (पुरुषार्थ कर तो) आनन्द होगा। तुझे अतीन्द्रिय आनन्द आयेगा। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का तूने अनन्त काल में कभी स्वाद लिया नहीं। आहाहा! तू तेरी चैतन्यभूमिका में जा, तुझे अतीन्द्रिय आनन्द आयोगा। आहाहा! **तू स्वयमेव सुखरूप हो जाएगा। तेरे सुख के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं।** दिगम्बर सन्त कहते हैं कि तेरे आनन्द के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। **बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से सुख नहीं मिलेगा।** आहाहा!

शुभ-अशुभ का प्रयत्न... आहाहा! कहा था न? वह तो नपुंसकता है। समयसार में दो जगह आता है। शुभ में पुरुषार्थ, शुभ में पुरुषार्थ, अशुभ में पुरुषार्थ तो नपुंसक से भी नपुंसक है। यह कमाना, भोगना, विषय का, धन्धे का भाव, वह अशुभ तो नपुसंकता है, वह पुरुष नहीं। ऐसा भगवान कहते हैं। वह तो हीजड़ा है। आहाहा! परन्तु शुभभाव करे,

वह भी नपुंसकता, हीजड़ा है। आहाहा! समयसार गाथा में बताया था। १५७ गाथा, पहले ४३ गाथा। क्लीब है संस्कृत में। क्लीब का अर्थ नपुंसक है। आहाहा!

प्रभु! तेरा वीर्य-पुरुषार्थ तो अन्तर में जाना, वह तेरा पुरुषार्थ है। राग और पुण्य-पाप में आना, वह पुरुषार्थ नहीं। क्यों?—कि आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है, वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। ये वीर्य-रेत नहीं। अन्दर एक पुरुषार्थ नाम का गुण है, प्रभु बताते हैं कि वीर्यगुण का कार्य क्या? आहाहा! कि स्वरूप की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति और सम्यग्दर्शन की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? राग, यह कोई वीर्य का कार्य नहीं है। भगवान जो वीर्यस्वरूप प्रभु, उसकी भूमिका में पुरुषार्थ पड़ा है। यहाँ चैतन्य शब्द लिया। अनन्त पुरुषार्थभूमि में जा। तेरा पुरुषार्थ स्वरूप के आनन्द की, शान्ति की रचना करेगा। सम्यग्दर्शन की रचना करेगा। राग की रचना में तेरा वीर्य जाए तो वह वीर्य आत्मा का नहीं। आहाहा! वह तो नपुंसक है। कहो! चिमनभाई! पूरी दुनिया पड़ी है। बापू! आहाहा!

जिस पुरुषार्थ से, जो आत्मा का पुरुषार्थ है, उस पुरुषार्थ से शुद्ध चैतन्य सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति की रचना हो, वह पुरुषार्थ है। समझ में आया? ऐसी भगवान की पुकार है। तीर्थंकरदेवों सर्वज्ञदेवों... आहाहा! अद्वैत पर दृष्टि दे तो तेरा पुरुषार्थ सच्चा। द्वैत में पुरुषार्थ कर, वह पुरुषार्थ नपुंसक है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

हम यह मार्ग बतला रहे हैं। बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से सुख नहीं मिलेगा। शुभ और अशुभभाव बाहर का पुरुषार्थ-प्रयत्न है, उसमें तुझे कुछ सुख नहीं मिलेगा। आहा..! वहाँ तो दुःख है। २६६ (पूरा हुआ)। अब, २८१।

बाहर के सब कार्यों में सीमा—मर्यादा होती है। अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है। वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है। अन्तर में—स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है, उसकी यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्य में ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्ति से भरा है॥२८१॥

२८१। क्या कहते हैं अब ? **बाहर के सब कार्यों में सीमा—मर्यादा होती है।** क्या कहते हैं ? आहाहा! बाह्य चीज़ की मर्यादा होती है कि इतने काल रहना। अरे! राग की मर्यादा है। परन्तु भगवानस्वरूप मर्यादारहित चीज़ है। सीमा है—दया, दान, रागादि है, उसकी मर्यादा है। वह अल्प काल रहेगा। वह मर्यादित है तो अमर्यादित दृष्टि से उसका नाश हो सकता है। क्या कहा ? शुभ और अशुभभाव मर्यादित है, वह नाशवान है, मर्यादावाला है। तो अमर्यादित भगवान आत्मा, उसकी दृष्टि करने से वह मर्यादा की चीज़ है, उसका नाश हो जाएगा। अमर्यादित चीज़ है तो शाश्वत रहेगी। आहाहा! समझ में आया ? थोड़े शब्द बहिनों में बहिन ने कहे थे और बहिनों ने लिख लिया था। आहाहा!

बाहर के सब कार्यों में सीमा—मर्यादा होती है। आहाहा! संसार का कोई भी कार्य मर्यादित काल में है। राग का कार्य भी मर्यादित है। आहाहा! सीमा है। राग दया, दान की सीमा है। मर्यादित है। वह कोई अमर्यादित चीज़ नहीं। आहाहा! **अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है।** आहाहा! भगवान अन्तर ध्रुव, उसकी कोई मर्यादा नहीं है। अनादि-अनन्त (है)। आहाहा! अन्तर्ज्ञान और आनन्द अमर्यादित है, ध्रुव है, कायम टिकनेवाला है। पुण्य-पाप का भाव कायम टिकनेवाला नहीं है, नाथ! उसकी सीमा है, उसकी मर्यादा है। आहाहा! बाहर की लक्ष्मी और शरीर की भी मर्यादा है कि अमुक काल रहेगी। परन्तु अन्तर ज्ञान और आनन्द की मर्यादा नहीं है। वह तो त्रिकाल रहनेवाला भगवान (है)। आहाहा! कहो, यह मर्यादा और अमर्यादा।

मर्यादा नहीं है। वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है। अन्तर में। अन्तर में स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। स्वभाव जो है, उसमें कोई समय मर्यादा कि अमुक समयपर्यन्त रहे ऐसी कोई सीमा नहीं है, मर्यादा नहीं है। पुण्य और पाप में तो अमुक काल रहे ऐसी सीमा है-मर्यादा है। आहाहा! सीमा और असीमा... आहाहा! बाहर शरीर, वाणी, मन की तो समय मर्यादा है, तब तक रहते हैं। बाकी हट जाएँगे, फटाक से। और मरकर जाएगा पशु में, नरक में। वह तो मर्यादित है, इसलिए मर्यादा का नाश हो जाएगा और दूसरी मर्यादित चीज़ में उलझेगा। आहाहा! अरे! उसे दरकार कहाँ है, प्रभु!

भगवान पूर्णानन्द भगवतस्वरूप प्रभु विराजता है। उसकी मर्यादा नहीं है। वह तो अनादि-अनन्त है। अन्तर का ज्ञान और अन्तर का आनन्द, (उसकी) अमर्यादा है।

अमुक कालपर्यन्त रहे, ऐसी कोई वह चीज़ नहीं है। आहाहा! चाहे जैसा चक्रवर्ती का राजा हो, परन्तु अमुक काल की मर्यादा है। फिर छोड़कर चले जाते हैं, नरकादि में। आहाहा! ब्रह्मदत्त अन्तिम चक्रवर्ती। ९६ हजार स्त्री, ९६ करोड़ सैनिक। मर्यादित काल रहेगा। मरकर मर्यादित काल की चीज़ छूट गयी, अमर्यादित चीज़ की तो खबर नहीं, नरक में-सातवीं नरक में चला गया। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, **अन्तर में—स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है,...** मर्यादित चीज़ में ही उसकी वृत्ति अनादि से लगी है, ऐसा कहते हैं। जो मर्यादित है, पुण्य-पाप मर्यादित है, उसका फल भी मर्यादित काल में रहनेवाली चीज़ है। आहाहा! अनादि से उसकी वृत्ति वहाँ लगी है। बहुत अच्छा अधिकार है। आहाहा! **जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है,...** बाह्य वृत्ति का अर्थ? अमर्यादित चीज़ है, उसकी दृष्टि नहीं और मर्यादित पुण्य-पाप और (उसका) फल मर्यादित काल रहेगा, फिर चला जाएगा। आहाहा! एक क्षण पहले छह खण्ड का चक्रवर्ती का राज, दूसरी क्षण में सातवीं नरक का नारकी। आहाहा! ब्रह्मदत्त। ऐसा अनन्त बार (इस) आत्मा को हो गया है। आहाहा! भले चक्रवर्ती का राजा नहीं मिला हो, लेकिन दूसरा राज आदि करोड़ों, अरबों की एक महीने की कमाई हो, ऐसा बड़ा राज (मिला है)। परन्तु वह तो मर्यादित है, प्रभु! मर्यादिक काल रहेगा। फिर मर्यादा छूट जाएगी। आहाहा! और जहाँ जाएगा वहाँ मर्यादावाली चीज़ तुझे मिलेगी। अमर्यादित चीज़ वहाँ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

उसकी यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो,... क्या कहते हैं? आहाहा! पुण्य और पाप की मर्यादा और सीमा-हद न हो तो वहाँ से हटकर अन्तर में जा नहीं सके। यदि मर्यादा रहित हो तो। वह तो मर्यादित चीज़ है, बापू! आहाहा! वहाँ से दृष्टि हटा ले। **उसकी यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो,...** मर्यादित है तो विमुख हो सकता है। अमर्यादित हो तो विमुख कैसे हो? आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव हों, वह सब मर्यादित है। आहा! मर्यादित न हो तो कभी उससे विमुख नहीं हो सके। मर्यादित है तो विमुख हो सकता है। मर्यादित न हो तो विमुख नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आठवें देवलोक की स्थिति। १८ सागर। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष। परन्तु वहाँ मर्यादा है। आहा! यहाँ तो इतनी बात है नहीं। यहाँ तो पचास, साठ, सत्तर, पचहत्तर इतना मर्यादित। उसकी तो १८ सागर की स्थिति मर्यादित है। तो मर्यादित की मर्यादा पूरी हो गयी। तो आठवें देवलोक का स्वर्ग का देव तिर्यंच में जाता है। पशु! आहाहा! मिथ्यादृष्टि। सम्यग्दृष्टि को तो अमर्यादित चीज़ की दृष्टि हुई है तो उस मर्यादित में उसकी दृष्टि नहीं है। समझ में आया? परन्तु जिसकी मर्यादित में ही दृष्टि पड़ी है, उसकी १८ सागर की स्थिति पूरी हो गयी। स्थिति है तो पूरी हो जाएगी। मर्यादित है। आहाहा! मर्यादित है और अमर्यादित न हो तो कभी उससे विमुख न हो सके। मर्यादित है तो विमुख हो सकता है। आहाहा! उससे दृष्टि हटाकर...

दूसरी (बात) लें तो, एक पर्याय भी मर्यादित है। एक समय की पर्याय भी मर्यादित है। भगवान त्रिकाल है, वह अमर्यादित है। आहाहा! समझ में आया? एक समय की पर्याय भी विनाशीक नाशवान है। आहा! संवर, निर्जरा को भी नाशवान कहा, केवलज्ञान को भी नाशवान कहा है। शुद्ध (भाव) अधिकार, नियमसार। सात तत्त्व तो नाशवान है। आहाहा! भगवान अविनाशी चैतन्यमूर्ति जो अन्दर ध्रुव है, उसकी दृष्टि लगा दे तो मर्यादित का नाश हो जाएगा। अमर्यादित तेरी दृष्टि हो जाएगी। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। अन्तर के मार्ग की रीत तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा! अरे..! उसने कभी दरकार नहीं की। जहाँ जन्मा, जहाँ उपजा वहाँ, ... जिस कुल में जन्म हुआ और जिसका संग हुआ, उसमें स्वयं है, ऐसा मानकर वहाँ बैठ गया। आहाहा! परन्तु यह असंग चीज़ अन्दर पड़ी है, अमर्यादित चीज़ है, जिसकी कोई मर्यादा नहीं, उसका आश्रय लेकर मर्यादित चीज़ है, उसका नाश हो जाएगा। भव आदि सब मर्यादित चीज़ है। अमर्यादित भगवान आत्मा की दृष्टि करने से उस भव की मर्यादा का नाश हो जाएगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश कैसा? बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : जन्म-मरण टले...

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्म-मरण टालने का यह उपाय है। जन्म-मरण की मर्यादा है, भगवान अमर्यादित है। राजचन्द्रजी को मर्यादा पुरुष कहते थे न। मर्यादा अर्थात् संसार की

स्थिति की मर्यादा-हद उन्हें जानने में थी और आत्मा का भान था। समझे? आहाहा! मर्यादित चीज़ का उन्हें भान था। राज में थे, स्त्री में थे, भले हो। मर्यादा का भान था। मैं अमर्यादित चीज़ हूँ, यह तो मर्यादित चीज़ है। आहाहा! कभी पर में रस आया ही नहीं। रामचन्द्रजी महा पुरुषोत्तम पुरुष! आहाहा! पर में रस मर्यादा में आ गया था। इसलिए मर्यादा पुरुष कहने में आया। वास्तव में तो मर्यादा को जाननेवाले हैं। समझ में आया? आहाहा!

अमर्यादित प्रभु आत्मा जिसकी कोई मुद्दत नहीं, जिसका कोई काल का प्रमाण नहीं, ऐसा जो भगवान अन्दर अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, वहाँ दृष्टि लगा दे। यदि राग की सीमा न हो तो उससे विमुख न हो सके। सीमा है, इसलिए उससे विमुख हो सकता है। अमुक काल तक रहता है, इसलिए उससे विमुख हो सकता है। आहाहा! **सदा बाह्य में ही रुका रहे।** आहाहा! यदि मर्यादा-सीमा न हो तो वहाँ से विमुख न हो सके और सदा बाहर में ही रहे। परन्तु ऐसा है नहीं। आहाहा!

अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आहाहा! जिसकी कोई मुद्दत नहीं। इस शरीर की तो मुद्दत है। सत्तर, अस्सी, नब्बे या सौ। करोड़ पूर्व लो। परन्तु वह भी मुद्दत है न। आहाहा! भगवान सीमन्धर प्रभु का आयुष्य करोड़ पूर्व है। परन्तु उस आयुष्य की मर्यादा है न। आहाहा! उस मर्यादा पर दृष्टि रहेगी और (वह) मर्यादित न हो, हदवाली न हो तो वहाँ से विमुख न हो सके। मर्यादित है तो वहाँ से विमुख हो सकता है। आहाहा! समझ में आया? **बाह्य में ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है।** भगवान अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त प्रभुता से भरी अमर्यादित चीज़ है। कितना काल रहे? उसकी कोई मर्यादा नहीं। वह तो अमर्यादित त्रिकाल है। आहाहा! **अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है।**

आत्मा अगाध शक्ति से भरा है। अमर्यादित ऐसी... दो नाम दिये—ज्ञान और आनन्द। परन्तु अनन्त अगाध शक्ति से वह भरा है। अनन्त-अनन्त अगाध अमर्यादित शक्ति से भरा है। आहाहा! त्रिकाल के समय से भी शक्ति अनन्त है, अनन्तगुनी। आहाहा! त्रिकाल की भी हद है। ऐसे तो आदि है नहीं, अन्त है नहीं। परन्तु त्रिकाल ऐसा कहने में आया न? त्रिकाल, ऐसे। आहाहा! परन्तु उस त्रिकाल समय से भी आत्मा की शक्ति की

संख्या अनन्तगुनी है। आहाहा! तो जिसकी शक्ति की मर्यादा नहीं, तो उसके स्वभाव का आश्रय करने से, अमर्यादित का आश्रय करने से जन्म-मरण का अन्त होता है। मर्यादित चीज़ का आश्रय करने से जन्म-मरण उत्पन्न होते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। समझ में आये नहीं ऐसी बात। परन्तु अनन्त काल में उसने ख्याल में ली ही नहीं।

यहाँ तो बहिन ने वह कहा न? वह मर्यादित है तो विमुख हो सकता है। यदि मर्यादित न हो तो विमुख हो सके नहीं। आहाहा! भाषा तो सादी गुजराती (है)। यह हिन्दी है। सीम, रागादि की सीम.. सीम.. सीम अर्थात् क्षेत्र नहीं। क्षेत्र को सीम कहते हैं। दरबार! सीम कहते हैं न? इसकी सीम यहाँ आयी। इसका सीमाडो... सीमाडो अपने गुजराती में कहते हैं। आहाहा! क्षेत्र की मर्यादा आवे न। चाहे जितना हो, चक्रवर्ती का राज हो, परन्तु मर्यादित है न? आहाहा! उस मर्यादित चीज़ की दृष्टि हटा ले। क्योंकि मर्यादित है तो दृष्टि हटती है। मर्यादित है तो वहाँ से दृष्टि उठा सकता है और अमर्यादित चीज़ में दृष्टि लगा दे। कठिन बात है, भाई! जिसका फल अनन्त जन्म-मरण, बापू! अभी दर्शनशुद्धि का ठिकाना नहीं, उसे चारित्र, व्रत, तप आया कहाँ से? आहाहा! जिसे आत्मा अमर्यादित स्वभाव से भरा पड़ा, ऐसा जिसको अन्तर अनुभव में नहीं, उसका व्रत और तप आया कहाँ से? वह तो बालव्रत और बालतप है, मूर्खतापूर्ण है। आहाहा! तेरा आत्मा तो अगाध शक्ति से भरा है। आहाहा! २८१ पूरा हुआ न?

स्वयं पर से और विभाव से भिन्नता का विचार करना चाहिए। एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है। प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए॥२८५॥

२८५। **स्वयं पर से और विभाव से भिन्नता का विचार करना चाहिए।** वह क्या कहते हैं, स्वयं? कोई सुनानेवाला तुझे मिला, उससे तूने सुना, वह कोई चीज़ नहीं है। तुझे स्वयं स्व-पर की भिन्नता का विचार करना (चाहिए)। आहाहा! समझानेवाले मिले कि यह पर है और यह स्व है। परन्तु वह तो धारणा में आया। परन्तु स्व-पर का विवेक तो तेरा तुझमें करना है। समझ में आया? स्वयं-अपने से पर से और विभाव से—पुण्य-

पाप का विभाव। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम हो, विभाव (हो)। हिंसा, झूठ, चोरी, कमाना, वह तो पाप अकेला विभाव है। आहाहा!

स्वयं पर से और विभाव से भिन्नता का विचार करना चाहिए। पर से अर्थात् परपदार्थ से और विभाव से अर्थात् विकारी दशा से। पर से अर्थात् परपदार्थ से और विभाव अर्थात् विकारी दशा से। **भिन्नता का विचार करना चाहिए। एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है।** आहाहा! राग के साथ एकताबुद्धि। अन्दर एकता है नहीं। राग और स्वभाव के बीच में सन्धि है, सांध है, दरार है, दरार। अन्दर दरार पड़ी है। राग और स्वभाव के बीच सन्धि है। आहाहा! अनादि से सन्धि है। राग और आत्मा कभी असन्धि-नि:सन्धि हुए ही नहीं। यह शब्द है। प्रज्ञाछैनी में। नि:सन्धि हुआ ही नहीं। कलश टीका में है। आहाहा! क्या कहते हैं?

शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, धूल, मकान तो बहुत दूर चीज़ है, उसके साथ तो कोई सम्बन्ध है ही नहीं। परन्तु तेरे में पुण्य और पाप जो होता है... आहाहा! समझ में आया? उसकी भिन्नता का विचार स्वयं करना है। शास्त्र ने बताया और पर ने बताया, उससे स्वयं स्व-पर की भिन्नता होती नहीं। स्वयं भगवान शुद्ध चैतन्य और विभाव-विकार एवं पर स्त्री, कुटुम्ब, देव, गुरु, शास्त्र आदि सब पर। स्व-पर का स्वयं भिन्नता का विचार करना चाहिए।

एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है। क्योंकि एकत्व है नहीं, माना है। राग का विकल्प और भगवान आत्मा में एकत्व है नहीं। मान्यता उसकी अज्ञान है। आहाहा! बाकी तो राग और भगवान के बीच एकत्वता रहित सन्धि है-सांध है। आहाहा! तो **एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है।** क्योंकि एकत्व है नहीं। तो एकत्व का तोड़ना, वह मुख्य है। समझ में आया? भाषा सादी है। परन्तु बहुत माल भरा है। आहाहा! पढ़ा है या नहीं? चीमनभाई! कितनी बार? दो बार। ठीक! रतनलालजी तो कहते हैं, सौ बार पढ़े तो भी सन्तोष नहीं होता। ऐसी चीज़ है, भाई! अकेला माल-माल भरा है। आहाहा!

प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। पहले साधारण बात की। एकत्व तोड़ना, साधारण कहा। परन्तु **प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना**

चाहिए। आहाहा! प्रति अर्थात् हर क्षण। हर क्षण राग से भिन्न करने का अभ्यास करना चाहिए। प्रभु! आहाहा! प्रतिक्षण-हर क्षण राग-दया, दान के विकल्प से भिन्न करने का प्रभु! प्रतिक्षण अभ्यास करना। आहाहा! प्रतिक्षण जगत के धन्धे में कैसा रस लगा है? पाप में। अकेला पाप। धर्म तो नहीं है परन्तु वहाँ तो पुण्य भी नहीं है। अकेला पाप। आहाहा! समझ में आया? अरबों की एक महीने की कमाई हो, परन्तु वह पाप। आहाहा! पाप से मिलता नहीं, मिलता तो पूर्व पुण्य से मिलता है। परन्तु यहाँ वर्तमान राग करता है कि मुझे यह मिले, मुझे यह मिले, मुझे यह मिला। वह पाप है। आहाहा!

यहाँ तो पाप की तो मर्यादा है, परन्तु पुण्य की भी मर्यादा है। तो उसको तोड़कर... आहाहा! अन्दर में जाना। **प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए।** आहाहा! स्त्री-पुत्र, कुटुम्ब का कब करना? प्रतिक्षण यह करना उसमें। कौन कर सकता है? प्रभु! कर कौन सकता है? परमात्मप्रकाश परमात्मा में रहा। उसकी माँ उसमें रही। अध्यात्मप्रकाश अध्यात्म में रहा। छोटे का अर्थात् अध्यात्मप्रकाश है। ... है न? एक है। दूसरा गया। शान्तिभाई के यहाँ कमाने का। आहाहा! प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ना। आहाहा! यह अभ्यास करना चाहिए। २८५ पूरा हुआ न? ३२४। कहाँ गया?

जैसे एक रत्न का पर्वत हो और एक रत्न का कण हो, वहाँ कण तो नमूनेरूप है, पर्वत का प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है; उसी प्रकार केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा अत्यधिक है। एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को सम्पूर्णरूप से जाननेवाले केवलज्ञान में और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में—भले ही वह अन्तर्मुहूर्त में सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी—ऐसे पूर्ण क्षायिकज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिकज्ञान में अनन्तगुना अन्तर है॥३२४॥

३२४ है न? पृष्ठ-१२७ है। **जैसे एक रत्न का पर्वत हो...** रत्न का पर्वत हो। **और एक रत्न का कण हो,...** क्या कहते हैं? देखो सुनो! श्रुतज्ञान की मर्यादा है और केवलज्ञान

की मर्यादा नहीं है। वह तो महापर्वत है। तुझे कदाचित् श्रुतज्ञान हो जाए तो उसका तुझे अभिमान हो जाए कि मैं तो ओहो! बहुत (ज्ञान है)। चौदह और बारह अंग का ज्ञान एक कण समान है और केवलज्ञान पर्वत समान है। आहाहा! थोड़ी धारणा हो जाए, पाँच, पच्चीस, पचास, हजार श्लोक की, तो वहाँ ऐसा हो जाए, ओहोहो! मुझे तो बहुत आता है। अरे! प्रभु! सुन तो सही। ग्यारह और बारह अंग का ज्ञान,... वह कहते हैं। आहाहा!

जैसे एक रत्न का पर्वत हो और एक रत्न का कण हो, वहाँ कण तो नमूनेरूप है,... कण तो नमूनेरूप है। **पर्वत का प्रकाश और उसका मूल्य अत्यधिक होता है;...** पर्वत का प्रकाश और उसका मूल्य अधिक। **उसी प्रकार...** वह तो दृष्टान्त हुआ। **केवलज्ञान की महिमा श्रुतज्ञान की अपेक्षा अत्यधिक है।** आहाहा! राग की तो मर्यादा उड़ा दी, परन्तु अब कदाचित् भावश्रुतज्ञान हुआ। समझ में आया? राग और राग का फल, वह तो मर्यादित है, वह दृष्टि तो उठा ले। वह मर्यादित है, हमेशा रहनेवाले नहीं है तो तेरी दृष्टि हट सकती है। वहाँ से दृष्टि हट सकती है। परन्तु यहाँ तो अब कहते हैं कि ज्ञान श्रुतज्ञान हुआ। आहाहा! वह तो ज्ञान का कण है। केवलज्ञान तो महापर्वत है। आहाहा! कहाँ से उठाना है! राग से तो उठा लिया, अब क्षयोपशम ज्ञान का कुछ विकास हुआ, वहाँ से उठ जा, वह तो कण है। पर्वत तो केवलज्ञान है। बापू! आहाहा!

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है, श्रुतज्ञानी भी अपने को ऐसा मानते हैं कि हम तो पामर हैं। पर्याय में। वस्तु में प्रभुता है। वस्तु प्रभु है। परन्तु पर्याय में। सम्यग्दृष्टि जीव अनुभव हुआ, वह अपनी पर्याय को केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर मानते हैं। स्वामी कार्तिकेय में श्लोक है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो बाह्य की बात तो उठा ली, परन्तु अन्दर में श्रुतज्ञान हुआ... आहाहा! अरे! धारणा का ज्ञान हुआ वह बात तो कहीं रह गयी। परन्तु अन्दर में आत्मा के अवलम्बन से भावश्रुतज्ञान हुआ। उस श्रुतज्ञान की अपेक्षा केवलज्ञान तो अत्यधिक है।

एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को सम्पूर्णरूप से जाननेवाले केवलज्ञान... आहाहा! द्रव्य की बात तो क्या करनी। वह तो आ गयी। परन्तु पर्याय जो प्रगट होती है-केवलज्ञान, वह भी पर्वत समान है और श्रुतज्ञान तो एक कण समान है। आहाहा! थोड़ा जहाँ आ गया, पढ़ लिया, वहाँ सम्यक् न हो तो भी अभिमान हो जाता है।

यहाँ तो सम्यक् श्रुत हुआ वह भी केवलज्ञान के पर्वत की अपेक्षा कण है। आहाहा! उसकी उसको पामरता दिखती है। ऐसा श्रुतज्ञान हुआ और विशेष... आहाहा! लाखों बरसों तक धारण होती है, वैसा हो जाए तो आहा..! मुझे कितना (ज्ञान हो गया)। भाई! वह धारणा का ज्ञान सम्यक् होने पर भी, सम्यक् होने पर भी केवलज्ञान की अपेक्षा तृण है। आहाहा! परचीज़ को तो उड़ा दिया, अब अन्तर में श्रुतज्ञान हुआ। वह श्रुतज्ञान कण है, पर्वत तो केवलज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? है? एक समय में सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को जानता है।

और अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में—भले ही वह... हो। कहते हैं कि **अल्प सामर्थ्यवाले श्रुतज्ञान में—भले ही वह अन्तर्मुहूर्त में सर्व श्रुत...** आहाहा! सूक्ष्म बात ली है। शास्त्र में ऐसा आता है कि भावश्रुतज्ञानी को अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग खिल गया है।

मुमुक्षु : बाहर अंग का पाठ कर लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पाठ कर जाए। ओहोहो! अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग का पारायण ले। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर्मुहूर्त में सर्व श्रुत... है? पूर्ण श्रुत। **फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है।** आहाहा! भावश्रुतज्ञान हुआ, आत्मा का अनुभव-वेदन। भगवान त्रिकाल की अपेक्षा से तो वह पर्याय पामर अल्प है। परन्तु केवलज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान पामर और कण है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अपने सम्यग्ज्ञान में अभिमान नहीं होता। अरे! यह तो पामर कण है। मैं तो प्रभुता केवलज्ञान प्राप्त करने का अभिलाषी हूँ। मैं इस कण में क्यों रुक जाऊँ? आहाहा! अन्दर में गये तो यह श्रुतज्ञान का कण दिखा। उसकी तुच्छता दिखी और केवलज्ञान की महत्ता देखी। क्योंकि केवलज्ञान अवयवी है और श्रुतज्ञान उसका एक अवयव है।

जैसे यह पूरा शरीर अवयवी है और यह एक अँगुली आदि अवयव है। ऐसे... आहाहा! केवलज्ञान पूर्ण शरीररूप है और श्रुतज्ञान उसका एक अवयव-अंगरूप है। आहाहा! पर और राग का तो अभिमान छोड़ दे। मर्यादित है तो छूट जाएगा। और तेरी दृष्टि होगी। परन्तु अमर्यादित स्वभाव में से जो ज्ञान आया, उस ज्ञान में कदाचित् बारह अंग

अन्तर्मुहूर्त में पारायण कर जाए, ऐसी ताकत हो गयी। आहाहा! तो भी केवलज्ञान के आगे... आहाहा! बड़ा अन्तर है। केवलज्ञान तो अनन्त गुना, अनन्त गुनी दशा है, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को (जानता है)। आहाहा! भावश्रुतज्ञान के अभिमान को उड़ाने को और उसमें सन्तोष हो जाए (कि) अपने प्राप्त हो गया। ऐसा नहीं, कहते हैं। अलौकिक बातें हैं!

भले ही वह श्रुतज्ञान अल्प सामर्थ्यवाला अन्तर्मुहूर्त में—दो घड़ी, अड़तालीस मिनिट के अन्दर, अड़तालीस मिनिट के अन्दर। **सर्व श्रुत फेरनेवाले श्रुतकेवली का श्रुतज्ञान हो तथापि—बहुत बड़ा अन्तर है।** केवलज्ञान और श्रुतज्ञान के बीच। आहाहा! सम्यग्ज्ञान श्रुत हुआ तो भी कहते हैं कि अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग फेर जाए, इतनी ताकत हो तो भी केवलज्ञान की अपेक्षा उसमें बहुत अन्तर है। पर्वत और कण जैसा अन्तर है। आहाहा! राग और पर का अभिमान तो छूट गया, परन्तु पर्याय निर्मल हुई, उसका भी अभिमान नहीं करना। आहाहा! अभिमान अर्थात् मैं कुछ बढ़ गया हूँ, दूसरे से बढ़ गया और मेरा ज्ञान बारह अंग को अन्तर्मुहूर्त में फेरे, ऐसी ताकत। ऐसा क्षयोपशम... ऐसा क्षयोपशम कि बारह अंग को एकदम फेर जाए। परन्तु वह श्रुतज्ञान, केवलज्ञान की अपेक्षा बहुत बड़ा अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। अभी तो पूरा दिन पाप में पड़े हों, उसे ऐसी बातें (सुनानी)।

लेकिन वह तो पहले बात कही। पाप और पुण्य से हट जा, प्रभु! वह मर्यादित चीज़ है। हमेशा रहनेवाली चीज़ नहीं है। हमेशा रहनेवाली चीज़ तो तेरा स्वभाव है। वहाँ दृष्टि लगा दे। परन्तु दृष्टि लगाने से जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में इतनी ताकत कदाचित् हुई कि अड़तालीस मिनिट में बारह अंग फेर जाए। आहाहा! चौदह पूर्व का ज्ञान खिल जाए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! तो भी वह केवलज्ञान के आगे तो कण समान है; और वह केवलज्ञान द्रव्य की अपेक्षा से कण समान है। आहाहा! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय नाशवान है, उसकी एक समय की मर्यादा है। भगवान त्रिकाली अमर्यादित प्रभु है। आहाहा! वहाँ जिसकी दृष्टि गयी, उसको भावश्रुत की विशेषता नहीं लगती कि ओहो..! मुझे तो श्रुतज्ञान हुआ। आहाहा! मुझे लाखों लोगों में समझाने की शक्ति हुई। प्रभु! वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! भाषा... है?

जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा, जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि पूर्ण प्रगट हो गयी... आहाहा! केवलज्ञान। **जहाँ ज्ञान अनन्त किरणों से प्रकाशित हो उठा,...** केवलज्ञान। आहाहा! **जहाँ चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि... चैतन्य की चमत्कारिक ऋद्धि...** पर्याय में प्रगट हुई। पूर्ण प्रगट हो गयी। केवलज्ञान। **ऐसे पूर्ण क्षायिकज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिकज्ञान में...** देखो! आहाहा! अन्त में आया था न? ध्याता पुरुष खण्ड-खण्ड ज्ञान का ध्यान नहीं करते। आहाहा! अखण्ड त्रिकाल सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्म द्रव्य, उसका ध्यान करते हैं। आहाहा! बड़ी कठिन बातें, भाई!

पूर्ण क्षायिकज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिकज्ञान में... देखो! आया था न? जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से समकित है, वैसे ज्ञान तो निर्विकल्प स्वसंवेदन क्षयोपशम ज्ञान है। निर्विकल्प क्षयोपशमज्ञान-स्वसंवेदन, वह केवलज्ञान की अपेक्षा से तो कण है। आहाहा! **पूर्ण क्षायिकज्ञान में और खण्डात्मक क्षायोपशमिकज्ञान में अनन्तगुना अन्तर है।** अनन्तगुना अन्तर है। ओहोहो! तो कहते हैं कि भावश्रुतज्ञान हुआ, उसका भी उसको-ज्ञानी को विशेषपना नहीं लगता। आहाहा! केवलज्ञान पूर्ण होता है, तब विशेष होगा। तब विशेष प्रगट हो गया। उसका तो बाद में अभिमान है नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७ श्रावण कृष्ण-२, गुरुवार, दिनांक - ०९-०८-१९७९
वचनामृत - ३२८, ३२९, ३३१, ३४२, ३८४ प्रवचन-२० (DVD 15)

मुनिदशा का क्या कहना! मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपने में सदा झूलनेवाले हैं! उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है!॥३२८॥

वचनामृत। ३२८। ३२४ तो हो गया। इसमें लिखा है, किसी ने लिखा है। मुनिदशा की बात है। सम्यग्दर्शन की बात तो बहुत चलती है। **मुनिदशा का क्या कहना!** मुनिदशा का क्या कहना! आहाहा! **मुनि तो प्रमत्त-अप्रमत्तपने में सदा झूलनेवाले हैं!** मुनि तो उसको कहें कि क्षण में अप्रमत्तदशा आती है और क्षण में प्रमत्त-छठवाँ गुणस्थान आता है। आहाहा! वह क्या है? बापू! जिसे अभी सम्यग्दर्शन का भी ठिकाना नहीं है, राग से भिन्न चैतन्य भगवान प्रथम में प्रथम अनुभव करने लायक है, उसके सिवा कोई आगे नहीं बढ़ सकता। आहाहा! तो सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा के आनन्द का स्वाद-वेदन-अनुभव आया, तो भी वहाँ चौथा गुणस्थान है। और ये मुनि क्षण में छठवें गुणस्थान में पौन सेकेण्ड रहते हैं। विकल्प आता है और सातवें में उससे आधे (समय में) अप्रमत्तदशा अतीन्द्रिय आनन्द का (वेदन करते हैं)। आहाहा! मुनिदशा किसको कहें! आहाहा!

जिसे क्षण में तो अप्रमत्तदशा अन्दर आ जाती है। आहाहा! क्षण में छठवाँ गुणस्थान। छठवें-सातवें में झूलनेवाले। आहाहा! जिसको आत्मा का आनन्द प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। प्रचुर आनन्द का वेदन। आहाहा! क्रियाकाण्ड, रागादि, यह कोई मुनिपना नहीं है। नग्नपना, यह मुनिपना नहीं है। आहाहा! अन्तर में क्षण-क्षण में सप्तम और छठवाँ, सप्तम और छठवाँ।

उन्हें तो सर्वगुणसम्पन्न कहा जा सकता है! आहाहा! नियमसार में दो कलश आये हैं। एक कलश में ऐसा आया है कि मुनि अर्थात् आत्मज्ञान अनुभवसहित जिसकी दशा

प्रमत्त-अप्रमत्त में है। वे केवलज्ञानी से थोड़े कम हैं। एक कलश है न? दूसरे कलश में ऐसा लिया, ओहो! मुनिपना, जिसको अन्तर में वीतरागदशा निर्विकल्प वेदन, तीन कषाय के अभाव से निर्विकल्प आनन्द की पर्याय में बाढ़ आती है। समुद्र में जैसे बाढ़ आती है, वैसे पर्याय में आनन्द से भरा प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उस पर दृष्टि और लीनता होने से पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! उसको मुनिपना कहते हैं, प्रभु! कोई रात को प्रश्न करता था न? भावलिंगी। अरे! प्रभु! भावलिंगी का क्या कहना! प्रभु! भावलिंगी किसको कहें और किसकी दशा है! आहाहा! वह अलौकिक दशा की बात है, भाई!

सर्वगुणसम्पन्न... नियमसार में यह कहा, मुनि जो वीतरागी अन्तर अनुभव और वीतरागी चारित्र प्रगट हुआ है, उसको केवलज्ञानी से न्यून कहना, ऐसा पहले कहा। परन्तु उसमें थोड़ा कम है, ऐसा जानना, वह तो जड़ है। है? दूसरे कलश में है। हम तो जड़ हैं। थोड़ा कम माने वह जड़ है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में ऐसे झूलते हैं। जिन्हें पंच महाव्रत के परिणाम भी जहर जैसे, दुःख जैसे लगते हैं। जिन्हें जड़ की नग्नक्रिया, वह तो मेरे से हुई नहीं, मेरी नहीं। मेरी चीज़ तो आनन्द का नाथ का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर भरा है, प्रभु! उसमें लीन होने से पर्याय में, जैसे समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, वैसे मुनि को पर्याय की दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! भाई! भावलिंगी सन्त की दशा कोई अलग है!

बाकी द्रव्यलिंग तो अनन्त बार धारण किया। 'मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवेयक उपजायो।' परन्तु आत्मज्ञान के स्वाद बिना-अनुभव बिना 'लेश सुख न पायो'। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, यह आस्रव है, दुःख है। आहाहा! यहाँ तो पंच महाव्रत पाले तो हो गया साधु। अरे! प्रभु! उसका भी कहाँ ठिकाना है। सबके लिये चौका बनाकर तो लेते हैं। वह तो व्यवहार में भी मूलगुण का ठिकाना नहीं है।

कुन्दकुन्दाचार्य तो अष्टपाहुड़ में कहते हैं, जिसके मूलगुण का ठिकाना नहीं, उसके कोई गुण का ठिकाना नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हमने भी वह क्रिया बहुत की थी, परन्तु श्वेताम्बर में। दृष्टि विपरीत थी। क्रिया तो सख्त (करते थे)। गाँव में चले जाते थे, छह-सात घर हो और तीन-चार साधु साथ में होते थे। वह साधु नामधारी। हमारे

लिये... छह-सात घर। तुरन्त गर्म पानी बना दे। आहार के लिये जाते थे। क्यों? किसके लिये पानी बनाया है? स्नान करते-करते बचा है। इतना बचे? दस शेर कहाँ से बचे? वह घर भी छोड़ देते थे। ऐसी क्रिया पन्द्रह वर्ष की है। सख्त क्रिया, हमको देने में लोग कांपते थे। परन्तु वह सब क्रियाकाण्ड। ऐसी क्रियाकाण्ड भी अभी तो नहीं रही। आहाहा! पानी का एक बिन्दु कलश में पड़ा हो, लोटा और निर्दोष चीज़ हो, उसके लिये बनायी हो। साधु के लिये चौका बनाये वह तो बिलकुल... करनेवाले भी पापी है और लेनेवाले भी पापी है। आहाहा! कठिन बात, नाथ! प्रभु! वीतराग का मार्ग (अलौकिक है)। आहाहा!

समकिती तो भावलिंगी साधु हो, उसे साधु मानते हैं। वह यहाँ कहते हैं, सर्व गुणसम्पन्न कहा जा सकता है। आहाहा! एक अल्प थोड़ा बाकी है, वह भी अल्प काल में पूर्ण हो जाएगा। एकाध भव स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर पूर्ण हो जाएगा। आहाहा! ऐसा मुनिपना! धन्य अवतार! धन्य दशा!! धन्य मुनिदशा! अपने पुस्तक है न? धन्य मुनिदशा! पुस्तक है। बहिन में से निकाले हैं। इसमें से। यह शब्द उसमें है। धन्य मुनिदशा! हिन्दी में है, गुजराती में है। दोनों में है। इसमें से निकाला है। धन्य मुनिदशा! यहाँ कहा न? **मुनिदशा का क्या कहना!**

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे॥३२९॥

३२९। **मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके...** आहाहा! चैतन्यनगर है। उसमें अनन्त आनन्दादि ऋद्धि भरी है। आहाहा! नित्यानन्द सहजानन्द प्रभु, सहजानन्द अर्थात् वह स्वामीनारायण के नहीं, हों! यह तो स्वाभाविक आनन्द का दल। आहाहा! अकेले अतीन्द्रिय आनन्द का दल, ऐसा जो निज-नगर। मुनिराज बारम्बार

निर्विकल्परूप से राग रहित होकर (अनुभव करते हैं) । पंच महाव्रत का विकल्प है, वह राग है । उससे रहित होकर **चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्‌भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं** । आहाहा !

णमो लोए सव्व साहूणं । जिसे गणधर नमस्कार करे । व्यवहार में अपने से छोटी दीक्षावाले को नमन न करे । परन्तु नवकार गिने, उसमें तो गणधर भी, णमो लोए सव्व साहूणं, (बोलते हैं) । हे सन्त ! तेरे चरण में मेरा नमस्कार ! आहाहा ! गणधर नमस्कार करे, प्रभु ! वह मुनिपना कैसा होगा ! समझ में आया ? बोले या नहीं गणधर ? णमो लोए सव्व साहूणं । णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं । उस सन्त के चरण में मेरा नमस्कार ! गणधर, जो अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान और बारह अंग की रचना करे । ऐसे गणधर णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं (का उच्चार करते हैं) । बापू ! वह सन्त कैसे होंगे ! जिसके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे ! आहाहा ! तीर्थंकर के वजीर, तीर्थंकर बादशाह तो गणधर वजीर-प्रधान (है) । आहाहा ! तीर्थंकर का वजीर, णमो लोए सव्व साहूणं । प्रभु ! आहाहा ! पंच नवकार, जब शास्त्र रचना करते हैं, तब पहले पाँच नवकार का स्मरण करते हैं । आहाहा ! प्रभु ! यह मुनिदशा ! प्रभु ! आहाहा ! क्या कहें ! लोगों को मुश्किल पड़ता है । बाहर की क्रिया देखे, वन में रहे अथवा क्रियाकाण्ड में नियम धारण करे । परन्तु उसके लिये चौका बनाया हो । फिर ऐसा करके आहार लेने जाए । हमने प्रत्यक्ष देखा है । उसके लिये चौका बनाया । फिर ऐसा करके जाए । उसका क्या मतलब है ? आहाहा !

जहाँ उद्देशिक आहार लेना है, वहाँ तो व्यवहार का ठिकाना नहीं, उसको निश्चय का ठिकाना है ही नहीं । जिसके व्यवहार का ठिकाना नहीं है, उसको निश्चय है ही नहीं । अभी व्यवहार यथार्थ हो तो भी निश्चय हो या नहीं भी हो । परन्तु जिसका व्यवहार सच्चा नहीं है, उसका निश्चय झूठा ही है । आहाहा ! यह अन्तिम प्रवचन है । शिक्षण शिविर का अन्तिम । उसमें यह आया है अन्दर । शब्द नहीं आये हैं, लिखा है उसमें । ३२४ के बाद किसी ने यह लिखा है ।

चैतन्यनगर । आहाहा ! न-कर । जिसमें कोई कर नहीं—दबाव नहीं, ऐसी चैतन्यनगरी । अनन्त-अनन्त आनन्द में । अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता ऐसे अनन्त गुण की ऋद्धि से भरी चैतन्यनगरी अन्दर है । आहाहा ! उस

चैतन्यनगरी में प्रवेश करके। राग में नहीं रहते। राग आता है तो छूट जाता है। सवेरे दृष्टान्त में कहा था न? एक आदमी को अपने गाँव-नगर में जाना हो तो बीच में चलते-चलते दूसरे नगर भी आवे, गाँव भी आये, उसे छोड़ता जाता है। जहाँ लक्ष्य है, वहाँ जाता है। वैसे धर्मात्मा का लक्ष्य तो त्रिकाली परमानन्द की प्राप्ति, यह लक्ष्य है। ध्येय द्रव्य है। क्या कहा यह?

सम्यग्दर्शन का ध्येय द्रव्य है और साध्य है पूर्ण दशा-सर्वज्ञ। साध्य अर्थात् पूर्ण दशा। पूर्ण दशा के पास जाना है। आहाहा! तो बीच में पंच महाव्रत के विकल्प आदि आते हैं, उन्हें छोड़ देते हैं, छूट जाते हैं। जहर है, राग है, दुःख है। आहाहा! वीतराग मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है।** आहाहा! मुनिराज अन्दर चैतन्यनगरी में तो क्षण-क्षण में प्रवेश करते हैं। उस नगरी में प्रवेश होने से **अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव...** अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव **भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायों...** आहाहा! सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, अनन्त आनन्द, प्रभुता-ईश्वर की पर्याय, ऐसी चमत्कारिक पर्यायोंरूप **तरंगों में... पर्यायोंरूप तरंगों में एवं आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है।** आहाहा! ऐसे चारित्र बिना मुक्ति कभी होती नहीं। अकेले सम्यग्दर्शन से मुक्ति होगी, ऐसा नहीं है। आहाहा! है, पहले सम्यग्दर्शन। फिर भी अकेला सम्यग्दर्शन कोई मुक्ति का कारण नहीं है। साथ में यह चारित्रदशा प्रगट हो, तब मुक्ति का कारण है। आहाहा! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः। अकेला सम्यग्दर्शन-ज्ञान मोक्षमार्ग—ऐसा नहीं है। आहाहा! धन्य दशा! जिन्हें गणधर नमस्कार करे, बापू! और कुसाधु को साधु मानना, वह तो मिथ्याभ्रम अज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मालूम है। उसके लिये बनाना, वह वीतराग का मार्ग है? क्षुल्लक ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के लिये बनाया हो तो क्षुल्लक ले नहीं। उद्देशिक ले नहीं। क्षुल्लक ग्यारहवीं प्रतिमा।

मुमुक्षु : न मिले तो उपवास करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपवास करे। साधुपना जिसको हो, उसके लिये बनाया हो तो, वह तो प्राण जाए तो भी न ले। प्राण जाए। जंगल में चले जाए। उसके लिये बनाया... मेरे लिये बनाया है। आहार, चौका। सच्चा सन्त उसे ले नहीं। और ले तो वह सच्चा सन्त नहीं। द्रव्यलिंगी है। द्रव्यलिंगी भी उसके लिये बनाया हो तो न ले। फिर भी मिथ्यात्व-राग के भाव की दृष्टि है और राग मुझे लाभदायक है, तो वह द्रव्यलिंगी भी नहीं है। द्रव्यलिंग में तो निर्दोष आहार, उसके लिये बनाया हो वह न ले, तब तो वह द्रव्यलिंगी कहने में आता है; और राग से भिन्न होकर अनन्त आनन्द का वेदन और अनुभव करता है, वह भावलिंग है। अरेरे! क्या हो?

मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि... आहाहा! दोनों **जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,...** भाई! सम्यग्दृष्टि का और मुनिराज का आनन्द का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कोई और ही चीज़ है। आहाहा! उसे वचन से कह नहीं सकते। आहाहा! समझ में आया? कलशटीका में है। एक जगह कहा है, उस दशा को कह नहीं सकते। परन्तु इतना कहने में आता है, ऐसा कहा कि आत्मा ज्ञान में लीन होता है, इतना कहने में आता है। कलशटीका में है। चन्दुभाई को बहुत याद है, वाँचन बहुत है। एक ही चन्दुभाई को कहते हैं न। याददास्त बहुत है। आहाहा!

कहते हैं, **मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन...** स्वसंवेदन। राग, दया, दान का विकल्प नहीं; वह तो जहर का वेदन है। आहाहा! अमृत का वेदन। स्वसंवेदन अमृत का नाथ निराकुल आनन्द का कन्द प्रभु, उस ओर के झुकाव से सम्यग्दृष्टि को और मुनि को स्वसंवेदन होता है। आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावैं विश्राम, रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव ताको नाम।' समयसार नाटक में है। अमृतचन्द्राचार्य के कलश में से बनाया है। 'रस स्वादत सुख उपजे।' आहाहा! आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द के रस का स्वाद आवे, उसका नाम अनुभव है। सम्यग्दृष्टि को भी वह है और छठवें में मुनि को भी वह है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

अभी देव-गुरु-शास्त्र कैसे होने चाहिए? कैसे होते हैं, यह मालूम नहीं है। उसे

दृष्टि की खबर कहाँ है ? आहाहा ! सूक्ष्म बात, प्रभु ! आहाहा ! दीपचन्दजी तो कहते हैं। पंचसंग्रह बनाया है, अध्यात्म पंचसंग्रह। चिद्विलास और अनुभवप्रकाश के कर्ता दीपचन्दजी। अध्यात्म पंचसंग्रह बनाया है। सब देखा है न। वहाँ चिह्न किये हैं, खास-खास हो उसमें। वे २०० वर्ष पहले कहते हैं, अभी आगम की श्रद्धावन्त कोई दिखता नहीं। परमागम त्रिलोक के नाथ के आगम-वाणी जो है, उस वाणी में जो भाव कहा है, ऐसे भाव की श्रद्धावन्त; श्रद्धावन्त आचरणवन्त एक ओर रहे। कोई दिखते नहीं। पंचसंग्रह में है। और जो मुख से हम कहते हैं तो सुनते नहीं। नहीं, नहीं, नहीं। पाधरो निश्चय-निश्चय करते हैं। पाधरो माने क्या ? पाधरो पाधरो अर्थात् एकदम। जल्दी से। एकदम आत्मा-आत्मा, अनुभव-अनुभव एकदम करते हैं। अरे.. ! सुन तो सही, नाथ ! तो मैं लिखकर जाता हूँ। ऐसा उसमें लिखा है। आगम की श्रद्धा २०० साल पहले दिखती नहीं थी। मैं किसी में आगम की श्रद्धा देखता नहीं हूँ। समझ में आया ? और मुख से कहूँ तो मानते नहीं। मजाक करके उड़ा देते हैं। आहा ! निश्चय... निश्चय की बड़ी बातें करते हैं। तो मैं लिखकर जाता हूँ। तभी कोई साधु है नहीं। दो सौ साल पहले ! आहाहा ! भाई ! कठिन बात है, बापू ! आहाहा !

मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन... निर्विकल्प वेदन। आहाहा ! **कोई और ही है,...** भाई ! क्या समझे ? **वचनातीत है**। स्वसंवेदन वचन से क्या कहे ? यह (वाणी) जड़, आत्मा का आनन्द, चैतन्य का अनुभव वाणी में कैसे आये ? आहाहा ! तीन लोक का नाथ जहाँ अन्दर में जागा और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उस स्वाद को क्या कहना ? उसे किसकी उपमा देना ? वचनातीत (है)। **वहाँ शून्यता नहीं है,...** रजनीश कहता है न ? रजनीश। शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। ऐसा शून्य नहीं है यहाँ। वह तो विकल्प से शून्य हो गया है। निर्विकल्प आनन्द की अस्तित्व की दशा उठती है। समझ में आया ? अरे.. ! सूक्ष्म भाई ! तत्त्वदृष्टि बिना वास्तविक मुनिपना क्या है, वह खबर नहीं पड़ती। आहाहा ! और प्ररूपणा भी ऐसी चले उपदेश में कि व्रत करो, तप करो, मुनिव्रत लो, देश की सेवा करो। आहा.. ! उसमें तुम्हारा कल्याण होगा। वह तो उपदेश ही मिथ्या है।

मुमुक्षु : विकथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकथा है, पाप कथा है वह तो। आहाहा! पच्चीस प्रकार की विकथा ली है। क्या नाम ग्रन्थ का? सुदृष्टि तरंगिणी। देखा है न। पच्चीस प्रकार की विकथा ली है। एक विकथा यह ली है, जिसकी प्ररूपणा में उपदेश में ऐसा आवे कि राग की क्रिया से तेरा कल्याण होगा, वह विकथा है, वह धर्म कथा नहीं। आहाहा! वह उपदेश विकथा-पाप कथा है। आहाहा! लेकिन लोग उसमें प्रसन्न हो बाह्य क्रिया में कि ये करो, वह करो। यहाँ तो कहते हैं, उसको पाप कथा कहते हैं। यह कथा वचनातीत है। आहाहा!

वहाँ शून्यता नहीं है,... क्या कहते हैं? राग से शून्य हुआ परन्तु वीतरागपने से शून्य नहीं है। वीतरागदशा से तो भरा पड़ा है अनुभव। आहाहा! क्या कहते हैं? कि राग जो है विकल्प, उससे शून्य। परन्तु वस्तु जो अनुभव हुआ, वह तो वीतरागी दशा उत्पन्न हुई, वह अस्ति है, शून्य नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अरे! भाई! मुनिराज अर्थात् परमात्मा! आहाहा! जिनकी दशा पूरे संसार से, विकल्प से, देह से उदास। जिसका आसन अनुभव है। आहाहा! जिसकी बैठक... बैठक समझते हो? बैठक-आसन आत्मा है। वे राग में नहीं बैठते। आहाहा! बैठक कहते हैं? उदासीन-जिनका पर से आसन छूटकर आनन्द के नाथ में बैठ गये हैं। उनका वह आसन है। आहाहा! चैतन्यधाम ध्रुवधाम में बैठ गये हैं। आहा! वह उसका आसन है। शरीर ऐसे करना और वैसा आसन करना, वह आसन तो जड़ का है। समझ में आया? वह तो जड़ मिट्टी है-धूल है। और वह आत्मा कर भी नहीं सकता। ऐसे आँख बन्द करे, हाथ ऐसे करे, वह कर ही नहीं सकता। वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे खबर है, आसन ऐसा लगाना और वैसा लगाना। दृष्टि आँख पर करनी और पैर के ऊपर पैर चढ़ाकर दो हाथ पर एक हाथ चढ़ाना। दायें हाथ पर बायाँ हाथ नहीं, बांये हाथ पर दायाँ हाथ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। वह तो जड़ की पर्याय है, प्रभु! उसे तो आत्मा ने की भी नहीं और आत्मा उसे करता भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव ग्रन्थ में लिखा है,...

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाया है, बनाया है, परन्तु वह तो निमित्त का कथन है। ऐसा हो जाता है, उसको हो जाता है, उसकी दशा बताते हैं। परन्तु वह आसन आत्मा कर सकता है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात, प्रभु!

एक द्रव्य की पर्याय दूसरा द्रव्य तीन काल में कर सकता नहीं। क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता ही नहीं, चूमता ही नहीं। समयसार की तीसरी गाथा है। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्यायरूपी धर्म को चूमते हैं, परन्तु परद्रव्य को-शरीर को यह आत्मा कभी छूआ नहीं। आत्मा कर्म की जड़ अवस्था को कभी छूआ ही नहीं अज्ञानभाव से भी। आहाहा! समझ में आया?

एक बार कहा था न? ये कदम भरता है। कदम भरता है तो जमीन को कदम छूआ ही नहीं। यह कौन माने? प्रभु! अरे! क्योंकि संयोग से देखनेवाला ऐसा देखता है कि जमीन का आधार है। परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो तो पैर को जमीन का आधार है ही नहीं। आहाहा! जमीन के आधार से पैर चलते हैं, प्रभु ना कहते हैं। अरेरे! समझ में आया? यह शरीर जो यहाँ है, तो पाट के आधार से रहा है, ऐसा है नहीं। ऐई! रमेशभाई! गजब बात! ... आपको दिये हैं? दिये हैं। ठीक! समझाय छे कांई? समझाय छे कांई, गुजराती भाषा है। समझ में आता है? आहाहा! वचनातीत।

जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। आहाहा! आत्मा का सम्यग्दर्शन के काल में जो वेदन है... आहाहा! वह जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का, अलौकिक समृद्धि का **अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** आहाहा! लिखनेवाले ने लिखा है कि यह पढ़ना। इसलिए ३२४ के बाद यह आया है। आहाहा! प्रभु! तूने कभी... उसे मुनिपना... जिसे अरहन्त शरणं, सिद्ध शरणं, साहू शरणं कहते हैं, वह साहू क्या चीज़ है, बापू! आहाहा! वह भी व्यवहार शरण है। परन्तु वह साधु है कैसा? व्यवहार। निश्चय तो भगवान आत्मा का शरण है। आत्मा उत्तम है, आत्मा मांगलिक है, आत्मा का शरण है। तीनों आते हैं न? मांगलिक। चत्तारि लोगुत्तमा, चत्तारि शरणं, चत्तारि लोगुत्तमा, चत्तारि मांगलिक। अरहन्त मंगलं आदि। वह नहीं, यह प्रभु आत्मा मांगलिक है। मंग अर्थात् पवित्रता,

उसे पर्याय में प्रगट करे, उसका नाम मांगलिक कहते हैं। एक-एक बात में अन्तर। हसमुखभाई! एक-एक बात में फर्क। प्रभु! ये तो वीतराग मार्ग है, नाथ! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ... आहाहा! वह मार्ग अलग है, नाथ! आहाहा!

अनन्त काल में कभी दरकार की नहीं। विभाव का प्रयत्न छोड़कर स्वभाव की ओर कभी झुकाव किया ही नहीं। आहाहा! अशुभभाव छोड़कर... अशुभ का परिचय हुआ तो अशुभ की सहज दशा हो गयी। विषयभोग, काम, क्रोध, धन्धा का परिणाम। उसको छोड़कर शुभ करता है तो शुभ की भी सहज स्थिति है कि मेरी चीज़ ही ऐसी शुभ है। आहाहा! लेकिन ऐसा है ही नहीं। जैसा अशुभ-शुभ अज्ञानदशा में सहज हो गया... आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में सहज शुद्ध उपयोग की दशा का वेदन होता है। भले उपयोग अन्दर में न हो और कुछ समय बाहर शुभ-अशुभराग में भी जाता है, फिर भी अन्दर की शुद्ध परिणति निर्मल है, वह तो कभी हटती नहीं। आहाहा!

समकिती तीर्थंकर चक्रवर्ती छह खण्ड को साधने को जाते हैं। साथ में देव भी हों। लेकिन दूसरा राजा साधने जाए तो लड़ाई करनी पड़े। और समकिती हो। आहाहा! लेकिन उस लड़ाई के काल के विकल्प-काल में भी समकिती को आनन्द का वेदन छूटता नहीं। आहाहा! शुद्ध परिणमन जो हुआ है, उसका कभी अभाव-नाश होता नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। यहाँ तो थोड़ी सामायिक की, प्रौषध किया, भगवान के दर्शन किये तो हो गया धर्म। अरे! नाथ! बापू! धर्म कोई अलौकिक है, प्रभु!

यहाँ कहते हैं, **जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** आहाहा! राग को छोड़कर स्वरूप का वेदन अत्यन्त स्पष्ट है। जागृत अवस्था है, शून्य नहीं है। जागृत अवस्था है, सम्यग्दर्शन से लेकर मुनि को। उस जागृत अवस्था में अलौकिक ऋद्धि का वेदन है। आहाहा! यह क्या कहते हैं? इसमें अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार अर्थात् उपचार और असत्य। आहाहा! अरे..! इसने दरकार नहीं की।

श्रीमद् में आता है न? १६ वर्ष में। १६ वर्ष में! संस्कार बहुत थे, क्षयोपशम बहुत था और एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। गृहस्थाश्रम में थे, लाखों रुपये का जवाहरात

का धन्धा था। एक बार तो जवाहरात लेने को गये थे। जवाहरात। जवाहरात का धन्धा। तो जो जवाहरात लेने का सौदा था, वह देनेवाला भूल गया और महा कीमती चीज़ हीरा-माणेक की थी, वह पुड़िया दे दी। श्रीमद् को। घर पर आकर देखते हैं तो... अरे! यह तो दूसरी चीज़ है। हमने जो सौदा किया था, वह दूसरी चीज़ का था। यह तो दूसरी चीज़ है। लाखों रुपये की कमाई। वह चिल्लाता हुआ आया। जिसने धन्धा किया था। साहब! (इसका सौदा नहीं हुआ था)। भाई! ये रकम पड़ी है। प्रभु! ये तेरी रकम पड़ी है। ये सौदे की चीज़ नहीं है। ये तो ऊँची चीज़ है, लाखों की कमाई हो, उसका सौदा हमने किया ही नहीं, भाई! ये पुड़िया खोली ही नहीं, ले जा। उसे तो ऐसा लगा कि ये कौन पुरुष है?! दैवी पुरुष गृहस्थाश्रम में रहते हैं। लाखों की कमाई एक क्षण में होती थी। भाई! तेरे माणेक भरे हैं, ये रहें। हमने उसमें से कुछ लिया नहीं। लाओ हमारी दूसरी पुड़िया। ऐसा तो समकिती का नैतिक जीवन होता है। आहाहा! वह जिसे मिला उसे तो ऐसा लगा कि ये कौन है? देवपुरुष! जवान अवस्था, छोटी उम्र ३०-३१ वर्ष की। ३३ वर्ष की उम्र में तो देह छूट गया। इतनी कमाई, एक क्षण में लाखों की कमाई हो ऐसी पुड़िया थी। उन दिनों में! १९२४ में स्वर्गवास हो गया। उसके पहले की बात है। १९२४ से पहले की बात है। उस पुड़िया में लाखों की कमाई। लाखों अर्थात् अभी के हिसाब से तीस लाख गुनी कमाई। भाई! ये यह तेरे लिये रखा है। बापू! ये सौदा नहीं हुआ है। अपनी रकम का यह सौदा नहीं है। वह दूसरी चीज़ है। लो भाई, ले जाओ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव का गृहस्थाश्रम में नैतिक जीवन ऐसा होता है। आहाहा! लाखों की कमाई उन दिनों में। कितने वर्ष हुए? १९२४ अर्थात् ये २०२४ चल रहा है, सौ साल हो गये। उस पर पैंतीस। सौ साल ऊपर हो गये। उसके पहले, १९२४ के पहले। सौ के ऊपर पन्द्रह-बीस वर्ष। उस वक्त पैसे की कीमत कितनी थी। आहाहा! लाखों की कमाई थी उस पुड़िया में। भाई! प्रभु! ये तेरी चीज़ है। बापू! अपना ये सौदा नहीं हुआ था। अपने तो हल्के रत्न का सौदा था। भाई! तूने हमको भूल में दे दिया? कपूरचन्दजी! ऐसी बात है, बापू! नैतिक जीवन। अज्ञानी को तो खबर भी नहीं है। अज्ञानी भी ऐसे नैतिक जीवनवाले होते हैं और ज्ञानी का तो ऐसा नैतिक जीवन होता है। अज्ञानी भी ऐसा नैतिक जीवनवाला होता है, परन्तु वह कोई धर्म नहीं। आहा! अभी भी ऐसे अज्ञानी बहुत हैं। लाखों करोड़ों दे, न्याय से बाहर एक बात नहीं। समझ में आया?

एक स्त्री थी। (उसने कहा), मेरे साथ तुम रहो। मेरे पास पचास लाख-करोड़ है। तुमको दूँगी। प्राण जाए तो भी स्त्री के साथ हम नहीं जाएँगे। लौकिक अज्ञानी, हों! मेरे पास पचास लाख-करोड़ है। तुम मेरे साथ विषय लो तो मैं तुमको सब दूँगी। अरे! माता! आहाहा! मेरी माता है तू। अज्ञानी को भी नैतिक जीवन में ऐसा नैतिक जीवन होता है। आहा! माता! जनेता के साथ जैसे भोग नहीं लिया जाता, वैसे तेरे साथ मैं भोग नहीं लूँगा। वह भी पैसे के लिये...

अभी अपने रमेशभाई नहीं है? रमेश न? मलकापुर। रमेशभाई। वहाँ एक बाई थी। दस लाख, पन्द्रह लाख या बीस-तीस लाख रुपये थे। अपनी ओर से रेकॉर्डिंग लेकर घूमते हैं न। वहाँ उस बोई को ये भाई पसन्द आ गया। बेटा! पुत्र! तू यहाँ रह। ये सब चीज़ तेरी। पन्द्रह लाख जितने पैसे। इसने कहा, मैं नहीं रहूँगा। मैं सोनगढ़ छोडूँ नहीं। रमेशभाई है यहाँ। यहाँ है या नहीं? नहीं लिये। ना कहा। मैं सोनगढ़ छोड़कर पैसे के लिये यहाँ रहूँ, (ऐसा नहीं हो सकता)। ऐई! पंकजभाई! तेरा बाप यहाँ ... करता है। आहाहा! ऐसे भी है अभी, नहीं है—ऐसा नहीं है। अज्ञान में भी ऐसा नैतिक जीवन होता है। आत्मज्ञान हुआ तो सहज नैतिक जीवन हो जाता है। उसमें हठ से करना पड़ता है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो आ गया न अपने? भाई!

सम्यग्दृष्टि को चार प्रकार की निर्जरा होती है। आ गया न? सकाम, अकाम, अविपाक, विपाक। अकाम निर्जरा होती है समकिती को। आहाहा! दुकान पर खड़ा हो और व्यापार करते-करते बैठा हो, फिर भी विकल्प से तो भिन्न अन्दर अनुभव में दृष्टि पड़ी है। आहाहा! लड़का आये, पिताजी! चलो। ... तो कहा, अभी आहार नहीं। तो क्षुधा सहन करे तो अकाम निर्जरा। समकिती। आहाहा! चार बजे आहार करेगा। ग्राहक आया है। ऐसी दशा को अकाम निर्जरा कहते हैं। समकिती को भी ऐसा होता है। वह अधिकार आया न? ३२० गाथा में। जयसेनाचार्य की टीका में है। आहाहा!

तू वहाँ जा,... है? प्रभु! अन्दर आनन्द का नाथ, नगर है, वहाँ जा। यह पंच महाव्रत का विकल्प और राग में मत रुक, नाथ! वह तेरी चीज़ नहीं है। जहाँ अनन्त ऋद्धि से भरा अन्दर महानगर है। नगर का अर्थ समझ में आता है? न-ग न-कर। न कर अर्थात् नगर पर कोई कर नहीं। वैसे आत्मा के सिर पर कोई पर का बोझा नहीं है। आहाहा! ऐसा

अन्दर अनन्त ऋद्धि का नगर भरा है। आहाहा! प्रभु! वहाँ जा न, तुझे आनन्द मिलेगा। प्रभु! वहाँ अन्दर नगर में जा न। आहाहा! ध्रुव में प्रवेश कर। प्रवेश तो कहीं कर नहीं सकता। ऐई! भाषा तो ऐसी आती है। ध्रुव में प्रवेश करना। उसका अर्थ कि ध्रुव सन्मुख होना। पर्याय को ध्रुव सन्मुख करना, उसे ध्रुव में प्रवेश किया, ऐसा कहने में आता है। अरेरे! भाषा में कितनी बात आवे?

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि... आहाहा! जहाँ एकावतारी इन्द्र सभा में सुनते हैं। एक झपकी नहीं और पैर के ऊपर पैर नहीं। विनय से वहाँ सुने। इन्द्र एकवतारी। शकेन्द्र इन्द्र है। पति और पत्नी दोनों एक भव के करके मोक्ष जानेवाले हैं। सौधर्म इन्द्र और उसकी मुख्य रानी। एक मुख्य रानी है। मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! वे सुनने आते हैं तो बापू! उनकी नम्रता! आहाहा!

जब ऋषभदेव भगवान का अष्टापद पर्वत पर देह छूट गया तो इन्द्र का आसन चलायमान हुआ। इन्द्र आया। भरतजी गये। भरतजी समकिती आत्मज्ञानी। आहाहा! छह खण्ड का राज था, फिर भी कहीं लेप नहीं। निर्लेप रहते थे अन्दर। प्रभु का देह छूटते हुए देखा (तो) आँसू की धारा (चलती है)। अरेरे! प्रभु का-सूर्य का विरह पड़ा। यह सूर्य तो अस्त होकर दूसरे दिन उगे। यह सूर्य अस्त हो गया। तीन लोक के नाथ। पिता के रूप से नहीं, धर्म के रूप से आँख में आँसू (आते हैं)। इन्द्र कहता है, ऐई! भरत! आप तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हो और हमें तो अभी एक और मनुष्यभव बाकी है। ये क्या? सुन... सुन, इन्द्र! इन्द्र बत्तीस लाख विमान का स्वामी। वह आया। भगवान को देखकर रोता है। अरे... प्रभु! ये क्या? आपका तो यह चरमशरीर है, आप तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हो। सब ख्याल है, सुन! ख्याल है। परन्तु राग आया, जड़ की क्रिया होती है। मेरे में नहीं। मैं राग में आया नहीं, आँसू को मैं छूआ नहीं। आहाहा! कहो, पंकजभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! पंकज। पंकज अर्थात् कीचड़ में उत्पन्न होनेवाला कमल। उस कमल को लेप नहीं होता।

दृष्टान्त आता है न? १४वीं गाथा। १४वीं गाथा में। अबद्धस्पृष्ट। आहाहा! कमलिनी पत्र पानी में है परन्तु पानी को छूता नहीं। बाहर से देखे कि अन्दर पानी में डूबा है। संयोग

से देखे तो ऐसा है। परन्तु स्वभाव से देखे तो पानी को छुआ नहीं। आहाहा! पानी में कमल डूबा है, पानी के संयोग से देखे तो डूबा है दिखने में आये परन्तु उसके स्वभाव से देखे तो पानी में है, फिर भी पानी का लेप नहीं है। कमल पानी को छूता ही नहीं। आहाहा! ऐसे ऊपर करे तो पानी का एक बिन्दु भी कमल में नहीं है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा... आहाहा! राग और विकार के बीच में रहने पर भी दृष्टि का स्वामी होने से पर का स्वामी नहीं होते हुए, मैं तो निर्लेपपने आत्मा हूँ। समझ में आया? समकिती की ऐसी दशा होती है, प्रभु! मुनि की अलौकिक बात है, नाथ! आहा..! दुःख लगे किसी को। हो गया, यह तो किसी को साधु मानते नहीं। अरे! प्रभु! सुन तो सही, भाई! साधु नहीं मानते हैं क्या? कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य महा सन्त हैं। आहाहा! जिनकी दशा है, आहाहा! वह दशा अलौकिक है।

तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे। आहाहा! राग को ही देखता है, शरीर को देखता है, जो चीज़ तेरी नहीं, तू उसको देखता है तो वास्तव में उसको नहीं देखता है। तू तो तेरी पर्याय को देखता है। परन्तु भगवान अन्दर द्रव्यस्वभाव पड़ा है, वहाँ जा न, उसको देख न! आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! ध्रुवधाम पड़ा है न अन्दर, बड़ा स्थान। आहाहा! लोग कहते हैं न काशी में करवत करवाये तो... करवत का अर्थ यह। राग से भिन्न होकर... करवत शब्द है, सिद्धांत में शब्द है। भेदज्ञानरूपी करवत चला। अन्दर धर्मी ने राग से भिन्नरूपी भेदज्ञानरूपी करवत चलायी है। आहाहा! जैसे वहाँ करवत चलाते हैं, उसकी मुक्ति कहते हैं। यहाँ कहते हैं, राग पर करवत चलायी उसकी मुक्ति होगी ही होगी। वह काशी में करवत चलवायी। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु **तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे।** ३२९ (पूरा हुआ)।

कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा और ज्ञान में निर्णय करने का प्रयत्न करना। ज्ञायक का घोटन करते रहना॥३३१॥

३३१। ३३१ है? **कहीं रुके बिना 'ज्ञायक हूँ' इस प्रकार बारम्बार श्रद्धा...** आहाहा! कहीं रुके बिना। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... इसप्रकार **बारम्बार**

श्रद्धा और ज्ञान में निर्णय करने का प्रयत्न करना। आहाहा! **ज्ञायक का घोटन करते रहना।** घोलन... घोलन। हिन्दी में घोटन कहते हैं? हमारे घोलन कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ ज्ञायकस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द से निर्लेप चीज़ पड़ी है। राग और स्वभाव के बीच सन्धि है। राग में द्रव्य कभी एकत्व हुआ ही नहीं। आहा! तेरी मान्यता ने घर बनाया कि मैं रागवाला हूँ और मैं पुण्यवाला हूँ। छोड़ न प्रभु एकबार। आहाहा! है?

बारम्बार श्रद्धा और ज्ञान में निर्णय करने का प्रयत्न करना। यह प्रयत्न करना है। राग से भिन्न मेरी चीज़ है, दोनों के बीच प्रज्ञारूपी छैनी-करवत मारकर भिन्न कर दे। भिन्न है ही। परन्तु दृष्टि में भिन्न कर दे। आहाहा! **ज्ञायक का घोटन करते रहना।** आहाहा! ३३१? अब, ३४१।

निज चेतनपदार्थ के आश्रय से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है। अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता?॥३४१॥

३४१। **निज चेतनपदार्थ के आश्रय से...** है? ३४१। निज चैतन्य पदार्थ, पर चैतन्य नहीं। आहाहा! **निज चेतनपदार्थ के आश्रय से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है।** आहाहा! भगवान अनन्त शान्ति और वीतराग और आनन्दमूर्ति प्रभु, उसका आश्रय करने से अनन्त आनन्द की विभूति प्रगट होती है। है? आहाहा! चैतन्य निज पदार्थ के आश्रय से अनन्त अद्भुत आत्मिक विभूति प्रगट होती है, प्रभु! राग के आश्रय से वह नहीं मिलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प राग है वह तो। उसके आश्रय से आनन्द की विभूति नहीं मिलती। आहाहा! है?

अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता? आहाहा! अनन्त... अनन्त गुण की अगाध शक्ति का भण्डार प्रभु, उसके आश्रय से पर्याय में क्या नहीं आता? आहाहा! तेरी दशा में किस गुण की पर्याय में बाढ़ नहीं आती? आहाहा! क्या कमी है? वह तो कहा न? बहुत नहीं कहा? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा। पर की आश कहाँ करे प्रीतम' प्रिय! नाथ! पर की आशा क्यों? तेरे में कहाँ कमी है? 'पर की आश कहाँ प्रीतम, कई बातें तू अधूरा, प्रभु मेरे तू सब बातें पूरा।' अरेरे! ये कैसे बैठे? सब बातें पूरा।

ज्ञान से पूरा, दर्शन से पूरा, आनन्द से पूरा, शान्ति से पूरा, स्वच्छता से पूरा, प्रभुता से पूरा, अनन्त गुण का पूरा भण्डार भगवान है। उसमें अपूर्णता कहाँ है ? नाथ ! न्यूनता कहाँ है कि तुझे बाहर जाना पड़े ? कुछ राग करूँ, दया, दान, व्रत करूँ तो मेरा कल्याण हो। तो मेरी अन्दर की दशा आवे। अरे.. ! प्रभु ! वह अधूरा कहाँ है ? पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। आहाहा ! **अगाध शक्ति में से क्या नहीं आता ?** वह कौन-सा हुआ ? ३४१ न ? अब, ३८४

तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं। अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है, असंख्यात प्रदेशों के क्षेत्र में ही अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं, तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है ? तुझमें है, उसे देख न! तुझमें क्या कमी है ? तुझमें पूर्ण सुख है, पूर्ण ज्ञान है, सब कुछ है। सुख और ज्ञान तो क्या परन्तु कोई भी वस्तु बाहर लेने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। एक बार तू अन्तर में प्रवेश कर, सब अन्तर में है। अन्तर में गहरे उतरने पर, सम्यग्दर्शन होने पर, तेरे निधान तुझे दिखायी देंगे और उन सर्व निधान के प्रगट अंश को वेदकर तू तृप्त हो जाएगा। पश्चात् पुरुषार्थ करते ही रहना, जिससे पूर्ण निधान का भोक्ता होकर तू सदाकाल परम तृप्त-तृप्त रहेगा ॥३८४॥

३८४ है ? **तेरे आत्मा में निधान ठसाठस भरे हैं।** भाई ! तेरा तत्त्व है, वस्तु है। **तेरे आत्मा में निधान...** ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि का निधान ठसाठस भरा है। अरे.. ! कैसे बैठे ? पर-प्रेम के कारण निधान ठसाठस भरा है, (वह दिखायी नहीं देता)। **अनन्त-गुणनिधान को रहने के लिये अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** क्या कहते हैं ? भगवान तो असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है। अनन्त प्रदेश नहीं है। फिर भी असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण रहते हैं। अनन्त गुण को रहने के लिये अनन्त प्रदेश की जरूरत नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। तेरे असंख्य प्रदेश हैं। अनन्त गुण को रहने में असंख्य प्रदेश में कोई कमी नहीं होती कि अनन्त प्रदेश हो तो अनन्त गुण रह सके। आहाहा ! प्रभु तो...

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम,
दूसरा कहीये कितना कर विचार तो पाम।

श्रीमद् गृहस्थाश्रम में कहते हैं। यहाँ यह कहा, **अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है,...** अनन्त गुण रहने में अनन्त क्षेत्र की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! ये क्या बताते हैं? कि असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण हैं। सर्वज्ञ के सिवा असंख्य प्रदेशी कोई धर्म ने कहा ही नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा के सिवाय किसी ने असंख्य प्रदेशी जीव, किसी ने जाना नहीं और किसी ने कहा नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ के ज्ञान में वह आया और उन्होंने यह कहा। प्रभु! तू असंख्य प्रदेशी है, एक प्रदेश नहीं।

जैसे चेन होती है न, चेन? हजार मकोड़े की। मकोड़ा कहते हैं? कड़ी... कड़ी। हजार कड़ी। परन्तु हजार कड़ी होने से एक-एक कड़ी में सोने के अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं। कड़ी इतनी है, फिर भी अनन्त-अनन्त गुण भरे हैं। आहाहा! तो तू तो असंख्य प्रदेशी है, प्रभु! तेरे अनन्त गुण रहने में असंख्य प्रदेश बस है। अनन्त प्रदेश की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अल्प क्षेत्र में अनन्त भाव भरे हैं। आहाहा! शरीरप्रमाण में असंख्य प्रदेशी क्षेत्र। परन्तु उसके प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण ठसाठस भरे हैं। पूरे असंख्य प्रदेश में। है?

तुझमें ऐसे निधान हैं, तो फिर तू बाहर क्यों जाता है? क्या लेने को जाता है? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

८ वचनामृत - १७ - २१ प्रवचन-२१ (DVD 15)

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आएगा। शुभ-परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें, उस समय शान्ति-समाधान रहेगा, ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा॥ १७॥

त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक शुद्ध परमपारिणामिक स्वभावभावरूप। भाव अविनश्वर निज परमात्मद्रव्य, उसे पकड़ने पर सब पकड़ने में आयेगा। आहाहा! निज ध्रुव त्रिकाली ज्ञायक ध्रुवस्वभाव ज्ञायकभाव को अनुभवने से, पकड़ने से अर्थात् अनुभवने से। पकड़ना अर्थात् कि उसमें एकाग्र होना। ज्ञायकभाव में एकाग्र होने से सब हाथ आयेगा। परमात्मा होगा। सिद्ध होगा। आहाहा! दूसरे किसे बाहर के आचरण और क्रियाकाण्ड से भगवान का पता नहीं मिलेगा। भगवान निर्मल पर्याय के तल में, निर्मल पर्याय के नीचे तल में-तलिया में पूर्ण स्वरूप विराजता है। आहाहा! उसे पकड़ने से सब हाथ आयेगा। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो... बाहर... बाहर का चाहे जितना हो।

कहा था वहाँ—अफ्रीका। कुन्दकुन्दाचार्य ने मोक्षपाहुड़ में ऐसा कहा '**परदव्वादो दुग्गइ।**' आहाहा! गजब बात है, भाई! प्रभु ऐसा कहते हैं कि मैं तुझसे पर हूँ। और '**परदव्वादो।**' मुझ पर जो तेरा लक्ष्य जाता है... आहाहा! तो तेरी चैतन्य की दुर्गति है। कठिन बात है, प्रभु! दुर्गति अर्थात् भले स्वर्ग मिले। स्वर्ग, वह कहीं चैतन्य की गति नहीं है। स्वर्ग, वह भी दुर्गति ही है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ।**' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। '**सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' भगवान आत्मा ज्ञायकभाव जिसका अस्तित्व /

सत्ता अनादि—आदि नहीं; है, उसे आदि नहीं; है, उसका अन्त नहीं; है, उसके स्वभाव से खाली नहीं। ऐसा यह भगवान आत्मा, उस ज्ञायकभाव को पकड़ने से... आहाहा! उस पर्याय सन्मुख का जो झुकाव है, उस ज्ञायकभाव की ओर झुकाव करने से सब हाथ आयेगा। आहाहा! है ?

शुभ-परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। तब कहे, हमारे शुभभाव करना या नहीं ? आता है। अशुभभाव से बचने के लिये शुभभाव आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है, धर्म का कारण भी नहीं, धर्म को सहकारी भी नहीं, इससे ऐसा कहते हैं **शुभ-परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा।** कुछ हाथ नहीं आता। ऐसा शब्द पड़ा है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अनन्त आनन्द अनन्त स्वभाव से भरपूर भगवान, उसके स्वभाव के भान से स्वभाव प्रगट होता है। स्वभाव से विरुद्ध कोई भी... परिणामभाव हो, उससे वह छूता नहीं, स्पर्शता नहीं, प्रगटता नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बात है।

शुभ-परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आएगा। यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा... चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा नित्यानन्द जिसकी सत्ता, जिसका अस्तित्व त्रिकाली है, जिसे आदि-अन्त और वर्तमान में स्वभाव से खाली नहीं, ऐसा पूर्णानन्द का नाथ, उसके सन्मुख होने से, पकड़ने से अर्थात् सन्मुख होने से। आहाहा! **यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा...** आहाहा! ज्ञायकस्वरूप भी दृष्टि में आना... अनादि का अभ्यास। पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा और उसका आगे जाने पर राग का भाव शुभ और अशुभ, इनका अभ्यास हो गया है। अनादि का शुभ और अशुभराग के विकल्प का अभ्यास हो गया है, इसलिए उससे पलटा खाना, वह अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा!

यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसङ्ग आयें... प्रतिकूलता के प्रसंग हों या अनुकूलता हो, उसकी तो कुछ बात है नहीं। प्रतिकूलता के प्रसंग आवे। आहाहा! **उस समय शान्ति-समाधान रहेगा,...** क्योंकि ज्ञायकस्वभाव को पकड़ा है। जो ज्ञायक अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, चारित्र... चारित्र है चारित्र। चारित्र जो गुण है न आत्मा में ? उस चारित्र को यहाँ अनन्त शान्ति कहा जाता है। शान्त... शान्त... शान्त... ऐसे शान्तरस को पकड़ने से... यह स्तुति में आता है न ?

उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।
उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।

प्रभु के नयन में उपशम बरसता है अर्थात् वे तो उपशमरस के कन्द हो गये हैं। इसी प्रकार यह भगवान उपशमरस है। उपशमरस कहो, अकषायस्वभाव कहो, चारित्रगुण कहो... आहाहा! ऐसा यह भगवान आत्मा, यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आवे, उस समय में शान्ति—समाधान रहेगा, ज्ञाता-दृष्टापना हटेगा नहीं। जिसने ज्ञान, आनन्द को पकड़ा है, उसे चाहे जो प्रतिकूलता आवे परन्तु अपने में से उसे शान्ति हटेगी नहीं। ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा जाना है। भगवान जाननेवाला-देखनेवाला है, वह भी स्वयं को जाननेवाला-देखनेवाला है। आहाहा! पर को जाननेवाला-देखनेवाला कहना, वह भी एक उपचार है।

स्व को जाननेवाला-देखनेवाला भगवान चैतन्य इस चमड़े के पीछे प्रभु विराजता है। वह चाहे जो प्रसंग आवे तो चैतन्य को जिसने पकड़ा होगा, उसे उस क्षण में शान्ति-समाधान रहेगा। आहाहा! **ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।** यह तो मुद्दे की रकम की बात है। कोई दया, दान, व्रत और भक्ति-पूजा यह भाव आवे। अशुभ न हो, तब होता है, परन्तु यह कोई चीज़ शरणभूत नहीं है। अनन्त-अनन्त शान्त चारित्रस्वरूप भगवान विराजता है। अर्थात्? शान्तरस से भरपूर प्रभु उपशमरस का समुद्र, उपशमरस का सागर। आहाहा! वह जिसने सन्मुख होकर अनुभूति की है, उसे आनन्द और अनुभूति, शान्ति चाहे जिस प्रसंग में वर्तेगी। कोई प्रसंग उसे विषमभाव उत्पन्न करेगा, ऐसा होगा नहीं। आहाहा! है?

ज्ञाता-द्रष्टारूप से रहा जा सकेगा। जो जीव ज्ञाता-दृष्टारूप से रह सकेगा। क्रियाकाण्डी कोई दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करनेवाला वह ज्ञाता-दृष्टारूप से नहीं रह सकेगा। प्रभु! क्योंकि वह उसका स्वरूप नहीं है। स्व—रूप। आनन्द और ज्ञान और शान्ति... शान्ति... शान्ति...

जो निर्मलता रे स्फटिक की, जो निर्मलता रे स्फटिक की त्यों ही जो स्वभाव रे
श्री जिनवीर ने... श्री जिनवीर ने धर्म प्रकास्या
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकास्या, प्रबल कषाय अभाव रे।

कषाय का अभाव और शान्ति का सद्भाव, ऐसा धर्म भगवान ने प्रकाशित किया है। पुण्य और पाप के भाव का कषायभाव, उसका अभाव और शान्त... शान्तरस का भगवान ने धर्म प्रकाशित किया है। आहाहा!

धर्मी जीव को शान्तरस का वेदन होता है। आहाहा! अज्ञानी को अनादि से शुभ और अशुभराग का—आकुलता का वेदन होता है। चाहे तो वह जैन का दिगम्बर साधु होओ,

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

आस्रव करने से वह दु:ख है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम भी आस्रव, दु:ख है। उससे भिन्न भगवान शान्तरस से भरपूर अकषायभाव, उसे जिसने पकड़ा है, उसे चाहे जिस प्रसंग में ज्ञाता-दृष्टापना रहेगा और शान्तरस से वह हटेगा नहीं। अशान्तरस में वह आयेगा नहीं। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है। यह (१७वाँ) बोल कहा।

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना — ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है — ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है॥ २१॥

अब २१। जरा कठिन है। है? २१। **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना...** यह शर्त। चैतन्य ज्ञान और आनन्द, चैतन्य में से चैतन्य को चैतन्य में से राग-द्वेषरहित परिणमित हुई भावना, हुई भावना, प्रगट हुई भावना... आहाहा! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना...** आहाहा! शुभ और अशुभभाव में से नहीं हुई भावना। आहाहा! डॉक्टर! बहिन का आशय यह है या नहीं? ऐसा पूछा था।

ऐसी यथार्थ भावना हो... चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य, उसकी भावना—चैतन्य की भावना—यदि होवे अर्थात् राग-द्वेषरहित चैतन्य का वीतरागभाव हो अर्थात् मोक्ष का मार्ग जो वीतरागभाव यदि हो। भावना अर्थात् मार्ग। **ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** आहाहा! क्या कहते हैं? चैतन्य भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य आनन्द, उसमें से—चैतन्य में से हुई, चैतन्य के आश्रय से आयी हुई। आहाहा! पुण्य और पाप के भाव को स्पर्श किये बिना चैतन्य को स्पर्श कर आयी हुई चैतन्य भावना, है पर्याय। चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित हुई अर्थात् वह तो पर्याय है। वह **यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** आहाहा! क्या कहते हैं?

चैतन्यद्रव्य है और चैतन्यद्रव्य की चैतन्यपरिणति प्रगटे चैतन्यद्रव्य को अवलम्बन कर और उस परिणति का फल पूर्ण शुद्धगति न हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? **भावना फलती ही है।** फलती ही है। आहाहा! चैतन्य की... चैतन्य की भावना, पुण्य और पाप के विकाररहित की निर्मल चैतन्य भावना अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, वह फलती ही है। उसका फल सिद्धपद आता ही है। आहाहा! **यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** आहाहा! क्या कहते हैं? जो यह चैतन्य भगवान आत्मा त्रिकाली, उसके अनुभव की धारा-वीतरागी शान्तिधारा, उसका फल सिद्धपद यदि न आवे तो सिद्धगति का नाश होगा। गति नहीं रहेगी। आहाहा! जो गति के भाव प्रगट हुए, उस भाव का फल गति यदि न हो... है? **चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** अर्थात्? नारकी के परिणाम से यदि नरकगति न हो तो नरकगति का नाश होगा। पशु के परिणाम जो तिर्यंच बीच में... बीच में अर्थात् माँस, शराब न खाये (पीये) और बहुत तीव्र कषाय न हो, किंचित् मन्द कषाय हो तो उससे मरकर तिर्यंच होता है। कहते हैं कि उस परिणाम से यदि तिर्यंचगति न हो तो गति का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? उस नरकगति के परिणाम का फल गति नरक न हो तो नरकगति का अभाव हो जाए। तिर्यंचगति के भाव जो माया, कषाय, क्रोध, मान, कपट, रति, अरति आदि के जो कषाय के भाव, उनके फल में तिर्यंचगति यदि न आवे... आहाहा! तो गति का नाश हो जाए। गति का नाश होने पर गति के कारण की अस्ति का अभाव हो जाए और उसका अभाव होने पर वह जिसकी भावना है, उस द्रव्य का भी अभाव हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े... चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े। इस चैतन्य की परिणति का फल सिद्धगति न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड को नाश होना पड़े। उसका अर्थ क्या? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसकी भावना में मोक्षमार्ग की परिणति जो प्रगट हुई, उसका फल यदि सिद्धगति न हो, तब तो पाँचों ही गतियाँ न हों। एक गति न हो तो पाँचों ही गति के परिणाम होने से उन परिणाम का फल गति न हो। थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा!

शुद्ध ध्रुव चैतन्यप्रभु की भावना अर्थात् एकाग्रता-वीतरागता, उसका फल यदि सिद्धगति न हो तो गति का नाश होगा। सिद्धगति ही नहीं रहेगी। सिद्धगति न रहे तो नरकगति और चार गति भी न रहे। क्योंकि निर्मल परिणाम के जो फलरूप से सिद्धगति होना चाहिए, वह आवे। और न आवे तो मलिन परिणाम के (फलस्वरूप) चार गति का नाश हो जाए। निर्मल परिणाम का फल सिद्धपना न आवे तो मलिन परिणाम की चार गति का नाश हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : चार गतियों का नाश हो, यह कहाँ से निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से निकाला। क्या कहा? देखो!

कहते हैं, भगवान चैतन्यप्रभु... उसका फल सिद्धगति न हो तो मलिन परिणाम के परिणामरूपी (फलरूप) गति जो महासत्ता प्रभु, चैतन्य की महासत्ता के आश्रय से परिणति प्रगट हुई और उसकी सिद्धगति न हो तो मलिन परिणाम के परिणामरूप जो चार गति, वह भी नहीं होगी, तो चौदह ब्रह्माण्ड का नाश हो जाएगा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो क्या कहते हैं? कि निर्मल परिणाम चैतन्य वस्तु, उसके-चैतन्य के निर्मल परिणाम की निर्मल गति यदि सिद्ध (दशा) न होवे तो मलिन परिणाम का फल जो चार गति, उसका नाश हो जाएगा। चौदह ब्रह्माण्ड का नाश हो जाएगा। जगत नहीं रहेगा। द्रव्य का नाश हो जाएगा। आहाहा! देखो! क्या है इसमें? चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके अवलम्बन से प्रगट हुई परिणति सिद्ध होकर ही रहेगी। वह सिद्ध ही होगा। फेरफार होगा नहीं—सिद्ध में से दूसरी गति होगी नहीं। सिद्ध के अतिरिक्त उसकी दूसरी गति होगी नहीं। यदि उसकी दूसरी गति न हो, वही हो और दूसरी न हो तो चार गति जो है, उसके

परिणाम से जो गति है, वह गति नहीं रहेगी। निर्मल परिणाम... आहाहा! गहरी बात है।

जो चैतन्य निर्मल है और उसके अंश में निर्मल परिणाम प्रगट हुए, उसका फल पूर्ण निर्मल सिद्धगति न हो, न हो... आहाहा! तो मलिन परिणामों से प्राप्त गति का भी नाश हो। मलिन परिणाम का फल भी उसे आवे नहीं। आवे नहीं तो चारों ही गति रहे नहीं, तो सिद्धगति रहे नहीं (इस प्रकार) पाँचों ही गतियाँ न रहे। पाँचों गतियाँ न रहे तो चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े। आहाहा! शब्द जरा सादे हैं, भाव जरा भरपूर है। आहाहा!

अधिक तो क्या... आता है न? कि चैतन्यसत्ता वीतराग सत्ता से भरपूर, उसकी अन्तर वीतरागपरिणति प्रगट हुई। आहाहा! उसका फल वीतरागता अर्थात् सिद्धपद न हो तो उस गति का नाश हो जाए, उसके कारण का नाश हो जाए, उसके कारण का-द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! भाषा बहुत संक्षिप्त है। भाषा में चैतन्य मोक्षमार्ग के परिणाम का अस्तित्व सिद्ध करना है और मोक्षमार्ग के परिणाम का फल मोक्ष हो, वह सिद्ध करना है। बात समझ में आती है कुछ?

मोक्ष का मार्ग जो आत्मा अन्दर... आहाहा! निश्चय से तो मोक्ष का मार्ग, वह भी पर्याय व्यवहार है और त्रिकाली सत् प्रभु है, वह निश्चय है। अब इस निश्चय के अवलम्बन से जो दशा प्रगट हुई है, उस दशा का फल जो वीतरागभाव—परिणति वीतराग, उसका पूर्ण फल वीतराग। आहाहा! समझ में आया? चैतन्य को सिद्ध करते हैं और चैतन्य की परिणति को भी सिद्ध करते हैं। दोनों परिणति के फल को सिद्ध करते हैं। तीन (बातें) सिद्ध करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य वीतरागमूर्ति 'जिन सो हि है आत्मा अन्य सो हि है कर्म, इसी वचन से समझ ले जिनवचन का मर्म। जिनप्रवचन का मर्म।' जिन सो हि आत्मा। यह आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसकी वीतराग परिणति जहाँ उसके आश्रय से प्रगटी... है और मुक्ति है। तीन में से एक न हो, इस परिणति का फल मुक्ति न हो तो परिणति वीतरागदशा का अभाव होता है और वीतरागदशा जिसके आश्रय से प्रगटी है, उस द्रव्य का नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। वीतरागपना सिद्ध किया है। तीनों ही।

प्रभु वीतरागमूर्ति है। वीतरागस्वभाव से भरपूर स्थित है। उसके ज्वार को पर्याय में लाये, परिणमन का ज्वार पर्याय में लाये, उस पर्याय का फल सिद्धगति न हो तो द्रव्य का नाश होता है। वह फल न हो, उसके कारण का नाश होता है और कारणद्रव्य के आश्रय से (प्रगट हुआ) उस द्रव्य का नाश हो जाता है। चौदह ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता है। चौदह ब्रह्माण्ड नहीं रहते। आहाहा!

वीतरागभाव की प्रतीति के जोर में ऐसी पुकार करती है प्रतीति, मेरा फल सिद्ध (दशा) होकर ही रहेगा। मैं सिद्ध ही होऊँगा। आहाहा! वह जो सिद्धपना न हो (तो) चौदह ब्रह्माण्ड को... आहाहा! शून्य होना पड़े। इसका अर्थ समझ में आता है? है, उसे नहीं यदि हो, है उसका फल नहीं आवे तो सब 'नहीं' हो जाए। द्रव्य भी 'नहीं' हो जाए, गुण भी 'नहीं' हो जाए, पर्याय 'नहीं' हो जाए। सुनने मिलना मुश्किल है। है? आहाहा!

मेरा नाथ वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान, उसे मैंने स्वीकार किया, मैंने माना और अनुभव में आया और उसका फल पर्याय में पूर्ण न आवे तो इन तीनों का नाश हो जाए। ऐसा तीन काल में होता नहीं। तीनों का नाश हो, यह तीन काल में नहीं होता। आहाहा! कहो, चन्दुभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! भाई का तो ऐसा प्रश्न था कि... यह बात एक ओर रखो। यह कहीं वस्तु में है नहीं। वस्तु है, वह तो ज्ञायकभाव है और ज्ञायकभाव है कहो या वीतरागभाव कहो। वीतरागभाव कहो या अकषायस्वभाव शान्तरस का पिण्ड कहो। उसकी जहाँ दृष्टि हुई और उसकी पर्याय में प्रतीति, यह है ऐसा नहीं था, यह है ऐसा हुआ, हुआ उसका पूर्ण फल यदि न आवे तो तीनों का नाश हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो चैतन्य की भावना की बात की है। और चौदह ब्रह्माण्ड साथ में कैसे ले लिये? कि जैसे यह वीतराग परिणाम, इसका फल सिद्धगति है। है गति, अनादि गति है। वे हुए हैं, होते हैं, होंगे। वह गति। उस गति के कारण का नाश होने पर कार्य का नाश होने से दूसरे चार गति के कारण का भी नाश होने से चार गति के कार्य का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक बातें हैं भाई यहाँ तो! आहाहा! शुभराग की तो यहाँ गन्ध भी नहीं है, कहते हैं। आहाहा! अकेला परमात्मा है या नहीं? है, ऐसी प्रतीति और

अनुभव आया तो उसका फल पूर्ण आयेगा या नहीं ? पूर्ण न आवे तो, उस तत्त्व का ही अभाव हो जाएगा। पूर्ण न आवे तो उस तत्त्व का अभाव होने से... उस तत्त्व का अभाव होने पर मलिन परिणाम का फल जो चार गति, उसका भी नाश हो जाएगा। वीतरागभाव ऐसा तो उसका फल न आवे तो मलिन परिणाम का फल भी कहाँ से आयेगा ? कहते हैं। आहाहा!

चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। अर्थात् ? निर्मल परिणाम हुए और परमात्मपद प्राप्त न हो, तब तो उस द्रव्य का नाश हो जाएगा। द्रव्य नहीं रहेगा। द्रव्य जो वस्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ को स्वीकार करके पूर्णानन्द की पर्यायरूपी सिद्धपद यदि न हो तो उस द्रव्य का नाश हो जाएगा। आहाहा! क्योंकि वह पूर्ण पर्याय जो सिद्धपद की, वह पूरे द्रव्य का एक अंश है। उस अंश के अस्तित्व के निषेध में पूरे अस्तित्व का निषेध हो जाएगा। आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो भगवान की क्रीड़ा है। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा देह में तो... देह तो कहीं रही गयी। हिंसा, झूठ, चोरी के परिणाम तो कहीं रह गये। आहाहा! आज पढ़ा उसमें विद्यासागर...

श्रद्धा परिपूर्ण को... करती है और परिपूर्ण की पर्याय जो प्रगट हुई, उसका परिपूर्णपना प्रगटे, वह पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है। श्रद्धा-गुण परिपूर्ण को स्वीकार करता है। श्रद्धा। श्रद्धा-गुण, गुण अर्थात् पर्याय। वह श्रद्धा-गुण, श्रद्धा की पर्याय को भी स्वीकार नहीं करता। समकित का विषय समकित नहीं है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन का विषय तीन लोक का नाथ अन्दर पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। अनन्त द्रव्य हैं, उनका भी उसे ज्ञान है और उस ज्ञान में आनन्द भी है। ऐसे अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का सागर भगवान, उसकी जो अस्ति का स्वीकार, उसकी अस्ति के स्वीकार में पूर्ण फल की अस्ति का स्वीकार है। पूर्ण फल होगा ही। न हो (तो) चौदह ब्रह्माण्ड को नष्ट होना पड़े, तो कभी अस्ति नाश होती नहीं और फल आये बिना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : आज फिर से जमी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बहिन के शब्दों में गम्भीरता है।

ऐसा जो अस्तित्व-सत्ता, उस सत्ता के स्वीकार की दशा में, उस दशा के फल में पूर्ण सत्ता की पर्याय प्रगट न हो तो उस द्रव्य की पर्याय का नाश, गुण का नाश और द्रव्य का तीनों का नाश हो जाए। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य का भी नाश हो जाए। ऐसा आया न?

परन्तु ऐसा होता ही नहीं। अब निषेध आया। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ स्वीकार हुआ (तो) सिद्धपद होकर ही रहेगा। सिद्धपद होकर ही रहेगा। अप्रतिहतभाव वर्णन करते हैं। ३८ गाथा में आया है न, ३८। श्रोता अप्रतिबुद्ध है, तो भी श्रोता ने जहाँ सुना, पंचम काल के श्रोता, पंचम काल के सन्त अथवा धर्मात्मा, उसे कथन करनेवाले... आहाहा! वे काल की हीनता को नहीं देखते। पंचम काल की हीनता को नहीं देखते। आहाहा! वह तो कहते हैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त होकर ही रहेगा और वह भी हमारा दर्शन प्रगट हो, वह गिरेगा नहीं। भगवान को पूछे बिना हम तुझे कहते हैं, मेरा आत्मा स्वीकार करता है। आहाहा! हम जिस भाव से उठे हैं, वह भाव पूर्ण होकर ही रहेगा। पूर्ण न हो (तो) चौदह ब्रह्माण्ड को निषेध होना पड़े। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू!

यह तो अन्तर घर की बातें हैं। बाहर के व्यर्थ कार्य अनन्त बार किये। दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा तथा करोड़ों रुपये के दान। यहाँ रतिभाई कहता था। कोई कहता था। ....विकल्प भी धर्म नहीं है। मन्दिर तो धर्म नहीं परन्तु उसकी ओर के झुकाव का भाव शुभ, वह भी धर्म नहीं है। आहाहा! जिसमें भगवान स्वयं निजसत्ता वीतराग से भरपूर, उसका आश्रय न आवे, उसके पक्ष में न चढ़े, पर्याय के पक्ष से न हटे, उसकी मुक्ति तीन काल में नहीं हो सकती और जो पर्याय के पक्ष से छूटा और द्रव्य के पक्ष में आया तो बादशाह के पक्ष में आया, उसे सिद्ध (दशा) हुए बिना छुटकारा नहीं है। आहाहा!

चैतन्य के परिणाम के साथ... क्या कहते हैं? कि चैतन्य के जो निर्मल परिणाम, चैतन्यस्वरूप भगवान, उसके-चैतन्य के निर्मल परिणाम, उसका स्वीकार। आहाहा! उसके **साथ कुदरत बँधी हुई है...** अर्थात् कि वह स्वभाव प्रगट हो, उसे परमात्मपना हो,

ऐसा बँधा हुआ है। द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। कुदरत अर्थात् द्रव्यस्वभाव। आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा अपनी चैतन्यसत्ता का जहाँ स्वीकार आया, उसके (साथ) कुदरत बँधी हुई है अर्थात् वह स्वभाव पूर्ण होगा ही। वह स्वभाव पूर्ण होगा ही, ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। यह कुदरत उसके साथ बँधी हुई है अर्थात् द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। आहाहा! है? कुदरत बँधी हुई है।

ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। देखा! यह वस्तु का ऐसा स्वभाव है। आहाहा! कुदरत बँधी हुई है अर्थात्? पूर्णानन्द के नाथ का अवलम्बन लेकर जो परिणाम प्रगट हुए, उनका सिद्धपद होकर ही रहेगा। वह सिद्धपद ही आयेगा। आहाहा! ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। वस्तु का ऐसा स्वभाव है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! द्रव्य और गुण का जहाँ आश्रय लिया, उसके परिणाम पूर्णता हो, वह द्रव्य का स्वभाव है। आहाहा! भाषा तो सादी है। रमेशभाई! भाव तो है वह है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा, परन्तु तीन लोक का नाथ यहाँ है, उसका विरह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये और वह तो स्वयं अपना अप्रतिहतभाव होकर आये... कहते हैं, प्रतिहतभाव हमें प्रगट हुआ है। हमें प्रगट हुआ भाव, वह गिरे—ऐसा है नहीं। आहाहा! ...भाई! आहाहा! सुनना कठिन है, मिलना कठिन है। इसकी अस्ति... इसमें जोर अस्ति का है... अस्ति पूर्ण है, उसका जहाँ स्वीकार हुआ, उसकी पूर्ण की पर्याय प्रगट हुए बिना तीन काल में रहती नहीं। उस अस्ति का स्वीकार है। द्रव्य की अस्ति, गुण की अस्ति और पर्याय की अस्ति। आहाहा!

ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है। यह बात अनन्त तीर्थंकरों ने कही हुई बात है क्योंकि सत्ता जो है, उस सत्ता का जहाँ अनुभव हुआ, उसे पूर्णता होगी ही। ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ है। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ वह वापस पड़े और भटके, ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ नहीं है। आहाहा! तीन काल के तीर्थंकर लिये हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकरों ने कहीं हुई बात है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१

ज्येष्ठ शुक्ल ११, रविवार, २५-०५-१९८०

वचनामृत - २०४, २०८ प्रवचन-२३ (DVD 15)

आत्मा तो अनन्त शक्तियों का पिण्ड है। आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर अन्तर से ही बहुत विभूति प्रगट होती है। उपयोग को सूक्ष्म करके अन्तर में जाने से बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। अन्तर में तो आनन्द का सागर है। ज्ञानसागर, सुख-सागर—यह सब भीतर आत्मा में ही हैं। जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें, तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती, उसी प्रकार अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे तब भी द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है॥२०४॥

बहिनश्री के वचनामृत। बहिन के नीचे ६४ बालब्रह्मचारी लड़कियाँ हैं। ६४। रात्रि को थोड़ा प्रवचन करते थे। उसमें से लिख लिया थोड़ा। नौ बहिनों ने लिख लिया। वह बाहर आ गया। नहीं तो बहुत बोलते नहीं हैं, शान्त। आत्मा का आनन्द का अनुभव। अन्तर आनन्द का अनुभव में रहते हैं। उन्होंने थोड़ा बोला होगा, उसे लिखा तो पुस्तक बाहर आ गयी। अब तक तो करीब ७०-७५००० पुस्तकें बाहर आ गयी हैं। अफ्रीका में तीन हजार पुस्तक गये हैं। अडवानीजी को दिया न। पुस्तक दिया है। तो उसको पढ़ने की रीत मालूम पड़े। २०१। क्या कहते हैं?

यह **आत्मा तो अनन्त शक्तियों का पिण्ड है**। शरीर, वाणी, मन ये सब तो जड़ है। वह तो आत्मा में है नहीं और उसमें आत्मा है नहीं। आत्मा में शरीर, वाणी है नहीं और शरीर, वाणी में आत्मा है नहीं। वहाँ से आगे जाकर पुण्य-पाप में भी आत्मा है नहीं। शुभ-अशुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, धन्धा आदि का भाव पाप है। पाप और पुण्य में आत्मा नहीं है और आत्मा में पुण्य और पाप नहीं है। आहाहा! जिसको

अपना हित करना है, चौरासी लाख (योनि में) रुलता है। अनन्त अवतार (किये)। आत्मा तो... कहा न?

आत्मा तो अनन्त शक्तियों का पिण्ड है। अनन्त शक्ति है उसमें। आहाहा! ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति, स्वच्छताशक्ति, प्रभुत्वशक्ति, ऐसी अनन्त शक्तियाँ आत्मा में है। परन्तु कभी उस ओर नजर और उस ओर कभी सावधानी की नहीं। उसको छोड़कर ये बाह्य की प्रवृत्ति-पुण्य की अथवा पाप की, तुम्हारे डॉक्टर की या वकालत की। रामजीभाई को वकालत थी। अभी ९७ वर्ष हुए। परन्तु वह सब कुज्ञान। वह आत्मा को हितकारी नहीं है। आत्मा क्या चीज़ है, उसकी पहिचान बिना उसमें लीन हो सकता नहीं।

यहाँ कहते हैं कि **आत्मा...** पहले आत्मा लिया है। **अनन्त शक्तियों का पिण्ड है।** आहाहा! शरीर, वाणी, मन, जड़, वह तो मिट्टी-धूल है, वाणी धूल है। अन्दर एक मन है। विचार करने में मन निमित्त, वह भी जड़ है; और पुण्य-पाप का भाव होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, धन्धा आदि का विकल्प, वह सब विकार है, जड़ है। उसमें चैतन्यस्वरूप भगवान, उसका उसमें अभाव है। तो है क्या? पुण्य-पाप, शरीर आदि का उसमें अभाव है तो उसमें भाव क्या है? कि उसमें अनन्त शक्ति का पिण्ड है। आहाहा! वह तो ज्ञानस्वरूप प्रभु, आनन्दस्वरूप, स्वच्छस्वरूप, प्रभुत्वस्वरूप, अकर्तास्वरूप, अभोक्तास्वरूप रागादि और पर का, ऐसी अनन्त शक्तियाँ आत्मा में हैं। आहाहा! ४७ तो है न? समयसार में ४७ शक्ति के नाम (हैं)। जीवतरशक्ति, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व ऐसे ४७ नाम तो हैं।

मुमुक्षु : आप सात बोले, ४७ पूरी-पूरी नहीं बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४७ बोलूँगा तो आप लोगों को याद नहीं रहेगा। मैं तो बोलूँगा। जीवतर, चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकोचविकास, अकार्यकारण, परिणम्यपरिणामकत्व, त्यागोपादानशून्यत्व, अगुरुलघु, उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व, अमूर्त, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, निष्क्रियत्व, नियत प्रदेशत्व, साधारण, अनन्तधर्म, विरुद्धधर्मत्व, तत्, अतत्, एक, अनेक, भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव ऐसी... भाव, क्रिया, कर्म, कर्ता, करण, सम्प्रदान,

अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। लो! ये ४७ हो गयी। डॉक्टर जाँच करते हैं।

यह ४७ शक्तियाँ अन्दर है। शक्ति अर्थात् उसका गुण। जैसे शक्कर में मिठास है और सफेदपना है। वैसे (आत्मा में) अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्कर में भी अनन्त शक्ति जड़ की है। चैतन्य में भी अनन्त शक्तियाँ चैतन्य की है। जिसको आत्मा का हित करना है और परिभ्रमण से निकलना हो... परिभ्रमण तो अनादि काल से कर रहा है। चार गति में चौरासी लाख योनि में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त अवतार किये। जातिस्मरण पूर्व भव का हो तो खबर पड़े कि कौन-कौन से भव थे। बहिन को तो नौ भव का ज्ञान है। उनके ये वचन हैं। असंख्य अरब वर्ष का। कल की बात याद हो, ऐसे असंख्य अरब वर्ष की बात याद है। परन्तु लोगों को बैठना कठिन पड़े। लोगों को बाह्य प्रवृत्ति, एक तो धन्धे की प्रवृत्ति, उसमें से निवृत्ति ले तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की प्रवृत्ति। परन्तु वस्तु क्या है, यह समझने की दरकार की नहीं। वह यहाँ कहते हैं।

आत्मा तो अनन्त शक्तियों का पिण्ड है। आहाहा! आनन्द, ज्ञानस्वभाव आदि का दल है। जैसे लड्डू होता है। पहले लड्डू का दल होता था। दल के लाडू पहले बनते थे। वैसे भगवान आत्मा देह से भिन्न अनन्त शक्तियों का दल, पिण्ड, सत्त्व, तत्त्व, सत् है। अरे! आत्मा की दरकार किये बिना बाहर धूल की (दरकार)। इसे कुछ रोग हो तो लाओ, ऐसा करो, फलाना करो, ढिकना करो। परन्तु तुझे यह अज्ञान का रोग लगा है। आत्मा के अज्ञान में भान नहीं है कि आत्मा कौन है? मैं किसको अपना मानता हूँ? किसको अपने में सुख मानता हूँ? सुख यहाँ है और खोजता है बाहर।

मृग की नाभि में कस्तूरी, मृग की नाभि में कस्तूरी। वह कस्तूरी को बाहर खोजता है। उसकी गन्ध आती है तो मानो वन में से आती होगी, (ऐसा मानकर) बाहर घूमता है। वैसे भगवान आत्मा में अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति भरी है। आहाहा! जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी है, वैसे प्रभु अन्तर आत्मा में अनन्त आनन्द है। अरेरे! जाँच कब करनी, कब सम्भाल करनी? दुनिया में पाँच-पच्चीस लाख रुपया मिले, करोड़-दो करोड़ मिले तो हम सुखी हो गये। पापी है। पैसा तो जड़ है। जड़ को अपना मानना, वह तो पाप है।

मुमुक्षु : ज्ञानियों के लिये पाप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी के लिये बड़ा पाप है। ज्ञानी को तो राग होता है, परन्तु वह अल्प राग है। फिर भी राग से भिन्न अपनी चीज़ का अनुभव होता है और अज्ञानी को तो अकेला राग और द्वेष होता है। आत्मा का तो कुछ भान है नहीं; इसलिए उसको तो महापाप है। कठिन बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : लोगों में नहीं मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग नहीं मानते तो लोग मूर्ख पागल है। लोगों को आत्मा की कहाँ खबर है कि आत्मा कौन है? यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! बड़े अरबपति.. कहा न? वहाँ गये थे, अफ्रीका गये थे न। पौष मास में २६ दिन रहे थे। सात लाख की बस्ती है। प्रवचन में बहुत लोग आते थे। २६ दिन रहे, उसमें साठ लाख का चन्दा किया। साठ लाख, मन्दिर बनाने के लिये। पौष मास में गये थे। साढ़े चार सौ तो वहाँ करोड़पति हैं। करोड़पति साढ़े चार सौ और पन्द्रह अरबपति हैं। कहा, सब भिखारी हैं। क्यों? कि अपनी लक्ष्मी अपने में क्या है, उस लक्ष्मी की कीमत नहीं और धूल की कीमत में जाते हैं, भिखारी है। भीख माँगते हैं कि लाओ, लाओ, लाओ।

हमने तो दरबार आये थे, उनको भी कहा था। वह तो समझता है। दरबार आये थे। भावनगर दरबार, नहीं? भावनगर दरबार प्रवचन सुनने को आये थे। करोड़ की, एक करोड़ की कमाई है। कृष्णकुमार। अभी तो गुजर गये। वह आया था। उसको भी कहा था। दरबार! एक मास में पाँच लाख माँगे भिखारी, तो वह छोटा भिखारी है। माँगण-भिखारी। एक करोड़ माँगे तो बड़ा भिखारी है। हमें कहाँ दरबार के पास से कुछ लेना था। वह बैठा था, सुनता था। सच्ची बात, महाराज! मैंने कहा, क्या है? एक करोड़ लेता है, वह बड़ा भिखारी है। माँगण है। माँगण अर्थात् माँगनेवाला। लाओ, लाओ, लाओ। परन्तु अन्तर में लक्ष्मी पड़ी है। सच्चिदानन्दस्वरूप। सत्-चिद्-ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। वहाँ तो तेरी नजर है नहीं। विद्यमान ऋद्धि की खबर नहीं और जो अपनी ऋद्धि नहीं है, उसको (अपनी) मानता है। जो तेरे में नहीं और तेरे साथ आती नहीं, उसकी सम्भाल करता है। परन्तु अपनी चीज़ अपने से रहती है और अपनी सम्भाल करने से शान्ति मिलती है, उसकी दरकार नहीं। यह कहते हैं।

आत्मा तो अनन्त शक्तियों का पिण्ड है। आहाहा! वाणी-वाणी तो जड़-मिट्टी है, प्रभु! अन्दर आत्मा, प्रभु! तेरा आत्मा अनन्त शक्ति का धनी है। तूने कभी विचार नहीं किया, सुना नहीं। उस ओर ध्यान, लक्ष्य दिया नहीं। **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर...** भगवान आत्मा देह से भिन्न, जिसकी सत्ता में यह चीज़ जानने में आती है, जिसकी सत्ता-मौजूदगी में यह जानने में आती है, वह चीज़ वह स्वयं नहीं है। जाननेवाला, उस चीज़ को जाननेवाला ज्ञात होनेवाली चीज़ से भिन्न है। आत्मा शरीर को जाने, शरीररूप होता नहीं। आत्मा पर को जाने, पररूप होता नहीं। पर से भिन्न जिसकी सत्ता में-अस्तित्व में, मौजूदगी में यह चीज़ ज्ञात होती है, उससे वह भिन्न है। और भिन्न में अन्तर दृष्टि देने से... आहाहा!

आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर... बाहर में दृष्टि स्थापित है तो वह संसार में भटकने की चीज़ है और दुःख है। सुख थोड़ा भी अंश भी नहीं है। अरबोंपति दुःखी है। आहाहा! एक अरबपति भी हमारे पास आया था। अफ्रीका। नैरोबी गये थे। रतिलाल। रतिभाई आये थे। छोटी उम्र का था। उसका बड़ा भाई मर गया है। एक अरब रुपया। सौ करोड़ रुपया। धूल। यहाँ तो सौ करोड़ हो या पाँच सौ हो, सब धूल-मिट्टी है।

मुमुक्षु : वह धूल यहाँ ले आनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लाये? यहाँ काम क्या है? आत्मा है, उसे अन्दर से ला न। अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप अस्ति है या नहीं? आत्मा की मौजूदगी है या नहीं? है तो कोई चीज़ है या नहीं? है तो वह अनादि का है या नहीं? है उसकी आदि है नहीं, है उसका (अन्त नहीं है)। उस ओर तो नजर है नहीं और बाहर धूल में पैसा, स्त्री,पुत्र, इज्जत... मूर्ख है। आहाहा! नाभि में कस्तूरी है, उसे मृग (बाहर) खोजता है। वैसे मृग जैसे जीव, आनन्द यहाँ, ज्ञान यहाँ अन्तर में, शान्ति अन्दर, बाहर से व्यर्थ प्रयत्न करे। यहाँ से सुख लूँ, यहाँ से लूँ, वहाँ से लूँ।

कहते हैं कि **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर...** यदि अन्तर में दृष्टि स्थापित करे... आहाहा! वह अस्तित्व है, आत्मा अस्तित्व है, मौजूदगी चीज़ है। राग, शरीर की मौजूदगी से भिन्न है। भिन्न दृष्टि करने से... आहाहा! अन्तर में बहुत... सूक्ष्म बात है। यह तो एक

बोल निकाला था। अडवानीजी को दिया है। इस तरह पढ़िये। आहा! **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर अन्तर से ही बहुत विभूति प्रगट होती है।** आहाहा! भगवान में तो आनन्द, शान्ति आदि अनन्त विभूति पड़ी है। यह धूल की विभूति नहीं। पैसा, स्त्री, पुत्र, बड़े मकान, पाँच-पाँच लाख, दस लाख का, करोड़ का। वह तो धूल-मिट्टी है। विभूति तो यहाँ है। उसकी तो उसे खबर नहीं।

वह कहते हैं, **आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर...** चारों ओर से नजर को समेटकर... आहाहा! चारों ओर से अपनी दृष्टि हटाकर, अपने आत्मा में दृष्टि स्थापित करने पर अन्तर में से ही **अन्तर से ही बहुत विभूति प्रगट होती है।** आहाहा! आत्मा में आनन्द है, शान्ति है, स्वच्छता है, प्रभुता है, ये सब शक्तियाँ-विभूति अन्तरदृष्टि करने से, उसकी वर्तमान दशा में पर ओर का जो राग और द्वेष का दुःख का वेदन है, वह अन्तर दृष्टि देने से वर्तमान में उसको आनन्द की विभूति प्रगट होगी। आहाहा! तब उसको धर्म कहने में आता है। उसके बिना दया पाले, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, बड़ा मन्दिर बनाये, करोड़ों, अरबों रुपया खर्च करे तो भी धर्म नहीं, पुण्य है। पुण्य से भटकने का संसार मिले। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **अन्तर से ही बहुत विभूति...** ओहोहो! अन्तर दृष्टि करने से अन्तर चीज़ जो है—अन्तर आत्मा, उसमें इतनी विभूति पड़ी है कि उस पर दृष्टि देने से विभूति बाहर आयी। शक्ति में से व्यक्ति व्यक्तता प्रगट होगी। आहाहा! कभी नजर की नहीं। कभी प्रतीति की नहीं। कभी अपनी चीज़ का अनुभव किया नहीं। चौरासी लाख योनि के कारण का सेवन किया, परन्तु आत्मा का सेवन कभी किया नहीं। पर की सेवा की, ऐसा माने। पर की सेवा कौन कर सकता है ? मर जाए। उसका आयुष्य हो तो रहे, आयुष्य न हो तो न रहे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **अन्तर से ही...** आहाहा! निश्चय किया है। बाहर के कोई कारण से नहीं। अन्तर में आनन्द और शान्ति भरी है। उसमें से विभूति प्रगट होगी। यदि अन्तर दृष्टि करे तो। परन्तु अन्तर दृष्टि कैसे देना ? आहाहा! बाहर का सब भूलकर अपनी चीज़ की महिमा, अपनी चीज़ की महिमा-महत्ता लाकर अन्तर दृष्टि करना। आहाहा! और उस दृष्टि स्थापित करने से अन्तर में जो शक्तियाँ पड़ी है, वह व्यक्तरूप, बाहर विभूतिरूप प्रगट होगी। आहाहा! दुनिया से अलग जाति है, भाई! दुनिया को तो जानते हैं न।

मुमुक्षु : दूसरे सब कहते हैं, हमारी बात सच्ची है।

समाधान : सब ऐसा ही कहे। माँस खानेवाला ऐसा कहे कि हमें माँस खाने में खुशी मिलती है। मछली खानेवाले ऐसा कहे। अरे! ऐसे जीव हैं, बच्चे हो न? बकरी का बच्चा, ताजा बच्चा। सीधा खाये। क्या कहा? कोमल हो। सीधा खाये। देखा है न। पेपर में देखा है। बकरी। बकरी कहते हैं न? उसका छोटा बच्चा होता है न? सीधा खाये, जिन्दा। ऐसे अनार्य लोग भी जगत में पड़े हैं। दुनिया में क्या नहीं है? एक नहीं है, तेरी चीज़ क्या है, उसकी पहिचान। बाकी तो सब किया। माना कि ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया। अन्तर में दृष्टि देने से बहुत विभूति प्रगट होती है। आहाहा! अन्तर में तुझे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होगा, प्रभु! आहाहा! पामर बनकर तू घूमता है और बाहर की आशा (रखकर) भिखारी बनकर घूमता है, अन्तर में देख तो तुझे अन्तर में से विभूति, —तेरी लक्ष्मी प्रगट होगी। यदि अन्तर दृष्टि कर तो तेरी लक्ष्मी प्रगट होगी। आहाहा! है? **विभूति प्रगट होती है।** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो एक बोल ऐसा था। दूसरा तो पूरा भरा है। कितने बोल हैं? ४३२ बोल है। ४३२। आहाहा!

बहिन तो अनुभव में से बोले थे। आनन्द के स्वाद में से रात्रि में थोड़ा बोले थे। वह किसी ने लिख लिया था तो बाहर आ गया। नहीं तो उन्हें तो कुछ पड़ी नहीं है। अभी तो शरीर कमजोर पड़ गया है। मैं गया था सुबह। शरीर कमजोर हो गया है। उल्टी होती है। वह तो देह की स्थिति है, आत्मा को तो आनन्द है। आहाहा!

आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु जिसकी अस्ति है-हयाती है, वह अपनी शक्ति और गुण से खाली नहीं होता। उसमें गुण अनन्त पड़े हैं, प्रभु! तूने नजर नहीं की। आहाहा! उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। उसमें अन्तर दृष्टि देने से **बहुत विभूति प्रगट होती है।** आहाहा!

उपयोग को सूक्ष्म करके... अब क्या कहते हैं? जानन-देखन जो परिणाम होता है, जानने-देखने का, उस परिणाम का लक्ष्य पर ऊपर है। जानने-देखने का परिणाम का लक्ष्य पर ऊपर है। वह स्थूल उपयोग है। जड़ जैसा उपयोग है। उसमें से सूक्ष्म उपयोग (करके)। मोती पकड़ना हो तो सोनी का औजार हो तो पकड़ में आये। सर्प को जिस संडासे से पकड़े,

उस संडासे से मोती नहीं पकड़ा जाता। ऐसे भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के स्थूल भाव, पुण्य-पाप विकारी भाव से पकड़ में नहीं आता। आहाहा! शुभ और अशुभभाव जड़ है। उसमें चैतन्य का, ज्ञान की शून्यता है, शून्य है, तो उससे पकड़ में नहीं आता। अन्तर सूक्ष्म ज्ञान और आनन्द की दृष्टि करे... आहाहा! तो... **उपयोग को सूक्ष्म करके अन्तर में जाने से...** अन्तर भगवान दरबार भरा है। गुण का दरबार भरा है। कैसे बैठे?

मुमुक्षु : ऊपर ताला लगा दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान का ताला लगाया है। राग के प्रेम में प्रभु को भूल गया है। चाहे तो दया का, दान का, व्रत का, भक्ति का राग हो, सेवा का राग हो, वह भी राग है। राग दु:ख और जहर है। और चाहे तो भोग का, विषय का, ये खाने-पीने का, अनुकूलता का राग हो, वह जहर है। यह अशुभ है और वह शुभ है, दोनों जहर है। क्यों? आत्मा अमृतस्वरूप है। जीव का जीवन, जीव का जीवन अमृतस्वरूप उसका जीवन है। आहा..! उस जीवन की खबर नहीं। पर का लक्ष्य करके जीवन जीता है, वह मुर्दे जैसा है। मुर्दा है। आहाहा! शास्त्र में पाठ है। मोक्षपाहुड़ में। चलता मुर्दा। आत्मा का भान नहीं है, वह चलता मुर्दा है। आहाहा!

अन्दर कौन है? है या नहीं चीज़? है तो उसमें कुछ माल होगा या नहीं? या खाली चीज़ है? खोखा। आत्मा महाप्रभु अनन्त-अनन्त गुण और शक्ति का भण्डार, अन्तर में दृष्टि देने से, सूक्ष्म उपयोग करने से (प्रगट होता है)। जानन-देखना जो वर्तमान है, जो पर को जानता देखता है, तो वह पर कहीं उसका नहीं है। जानना-देखना पर को देखता है। तो पर उसके अस्तित्व में है नहीं। उपयोग जो पर को देखता है, उस उपयोग को गुलाँट खिला, सूक्ष्म उपयोग कर। जो सूक्ष्म उपयोग से, जानने-देखने से, सूक्ष्म जानने-देखने से तेरा आत्मा पकड़ में आयेगा। स्थूल उपयोग से पकड़ में नहीं आयेगा। आहाहा! फुरसत कहाँ है? पूरी दुनिया...

मुमुक्षु : उपयोग किसको कहना? ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग—ये जानने-देखने का परिणाम। कहा न? जानने-देखने का परिणाम है, जानता-देखता है न यह? शरीर है, ये है, स्त्री है, कुटुम्ब है,

परिवार है, धन्धा है। आहा! जो परिणाम पर को देखता है, वह जहर है, वह दुःख है।

मुमुक्षु : परिणाम शब्द हमारी भाषा में इस्तेमाल नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम अर्थात् अवस्था। कोई भी चीज़ हो, उसकी अवस्था होती है कि नहीं? सोना.. सोना-सुवर्ण। वह तो वस्तु हुई, तो उसकी अवस्था होती है या नहीं? कड़ा, कुण्डल, अँगूठी, ये सब अवस्था है। अवस्था कहो या परिणाम कहो। ऐसे आत्मा में भी अवस्था-परिणाम (होते हैं)।

मुमुक्षु : कल बहुत सूक्ष्म परिणाम और सूक्ष्म दृष्टि से एक-एक सफेद रजकण और लाल रजकण देखते थे। सूक्ष्म दृष्टि से।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये नहीं देखा। यहाँ तो यह बात है।

यह प्रभु अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसमें अनन्त विभूति भरी है। उसकी तो कभी दरकार की नहीं। सम्भाल ली नहीं। और जिसमें वह चीज़ नहीं है, तेरे में वह है नहीं, उसकी सम्भाल की। तो जिसकी सम्भाल की, वह संयोग नहीं छूटेंगे। वह चार गति में भटकेगा। चैतन्य की सम्भाल करेगा तो अन्तर दृष्टि में विभूति प्रगट होती है, तो उसके जन्म-मरण का अन्त आ जाएगा। बाद में उसको अवतार नहीं मिलेंगे। उसके लिये यह बात कही है। आहाहा!

उपयोग अर्थात् जानने-देखने का भाव। वर्तमान जो जानने-देखने का भाव। उसे परिणाम कहो, उपयोग कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, दशा कहो। आहाहा! **उपयोग को सूक्ष्म करके अन्तर में जाने से बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं।** आहाहा! यह बहिन के वचन हैं। अनुभव के वचन हैं। आनन्द के अन्तर अनुभव में ये र्तव के वचन हैं। आहाहा!

एक बार कहा था न? अभी तो ९१ साल हुए। दस वर्ष की उम्र थी। हमारी माता थी जिस गाँव की, उस गाँव का ब्राह्मण था। उसको मामा कहते हैं। मामा कहते थे। हमारे मकान में रहते थे। स्नान करते हैं, लंगोटी पहनते हैं न? तो ऐसा बोलते थे। 'अनुभवी ने अेटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे... भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' ये तो दस साल की उम्र की बात है। अस्सी साल पहले की। मैंने कहा, मामा! आप यह क्या बोलते हो?

मामा कहते थे। थे ब्राह्मण, परन्तु हमारी माता के गाँव के थे तो मामा कहते थे। उतारा में नौकर थे। कारकून थे। ये क्या? उनको भी खबर नहीं। 'अनुभवीने अेटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे...' क्या अनुभव?

आत्मा अन्दर है, उसका अनुसरण करके भवना-होना, अनुभव। परद्रव्य का अनुसरण करके होना वह तो राग और द्वेष और पुण्य और पाप है। वह तो दुःख है, परिभ्रमण का कारण है। अन्तर स्वरूप भगवान, उसका अनुसरण करके होना। उसमें आनन्द का वेदन आता है। अतीन्द्रिय आनन्द का नमूना आता है, तो उस नमूने से पूरा आत्मा अतीन्द्रियमय है, ऐसा प्रतीत होता है। गाँठें होती है न? रुई का। बड़ी रुई की गाँठ में से थोड़ा नमूना निकाले कि देखो, ऐसी रुई है। तो पूरी गाँठ ऐसी है। रुई की बड़ी गाँठ। रुई की बड़ी गाँठ होती है न? पचास मण, पच्चीस मण की। ऐसे आत्मा में नमूना निकलता है। रुई का नमूना निकालते हैं न? कि ये रुई है। ऐसी पूरी गाँठ भरी है।

मुमुक्षु : नमूना बतलाईये...

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं, परन्तु करना किसको है? करना किसको है? करता कौन है?

मुमुक्षु : थोड़ा दिखाई तो देना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का-द्वेष का कर्ता वह है। कर्ता-भोक्ता पर का है तो अपना होगा। वह तो वह करेगा तो होगा। गुरु उसको दे दे ऐसी चीज़ है? ऐसी कमजोर चीज़ है? ऐसी पराधीन चीज़ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उपयोग को सूक्ष्म करके अन्तर में जाने से बहुत-सी... आहाहा! शक्कर का मीठा स्वभाव, लवण का खारा स्वभाव, अफीम का कडुआ स्वभाव, भगवान का आनन्द स्वभाव। इस आत्मा का ज्ञान और आनन्द स्वभाव है। आहाहा! उस पर कभी दृष्टि दी नहीं। इसलिए कहते हैं, **उपयोग को सूक्ष्म करके...** क्योंकि बाहर के ऊपर जो तेरी दशा जाती है, विचारधारा—वह बहुत स्थूल है। इस आत्मा के अलावा बाह्य पदार्थ पर लक्ष्य जाता है, वह स्थूल परिणाम है, स्थूल उपयोग है, वह तेरी स्थूल दशा है। उस दशा को पलटकर... आहाहा! सूक्ष्म करके उपयोग को अर्थात् जानन-देखन परिणाम को सूक्ष्म

करके **अन्तर में जाने से...** अन्तर में जाने से। आहाहा! **बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ...** आहाहा! बहुत-सी स्वभावभूत ऋद्धियाँ विभूति अन्दर से प्रगट होती है, प्रभु! आहाहा! परन्तु अपनी प्रभुता की महत्ता नहीं और पैसा, स्त्री-पुत्र, इज्जत की प्रशंसा करे, वहाँ रुक जाए। उसकी कीमत। बाहर धूल की कीमत। और यह चैतन्यप्रभु, जिसमें जानने की शक्ति है, पर तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है ये तो। वह जानता है कि मैं शरीर हूँ? ज्ञान जानता है कि मैं ज्ञान हूँ और यह शरीर है। ऐसी जानने की शक्तिवाला पर को और स्व को सबको जानता है। ऐसा जानने की शक्तिवाले में दृष्टि देने से... आहाहा! **बहुत-सी स्वभावभूत...** अन्तर त्रिकाली प्रभु का स्वभाव, ऐसी ऋद्धि-शान्ति, आनन्द, स्वच्छता, अन्तर की विभूति प्रगट होती है। आहाहा! यह प्रगट होती है, उसका नाम धर्म। वह जन्म-मरण रहित होने का कारण है। बाकी सब व्यर्थ है। बिना एक के शून्य। लाख शून्य लिखे हों तो उसे एक नहीं कहा जाता। और एक एक लिखा हो तो वह एक कहा जाए। वैसे आत्मा के भान बिना जो कुछ है, सब बिना एक के शून्य हैं। शून्य.. शून्य।

मुमुक्षु : आत्मा शब्द ही नहीं सुना हो, उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं हो, परन्तु दरकार करनी चाहिए न? मैं कुछ हूँ या नहीं? इतना तो विचार आना चाहिए न? यह देह है, तो अन्दर उसे जाननेवाला तत्त्व भिन्न है या नहीं? या जाननेवाला और देह दोनों एक ही है? एक हो तो, शरीर तो बदल जाता है, आत्मा जाननेवाला.. जाननेवाला.. जाननेवाला हमेशा रहता है। शरीर में कमजोरी हो जाती है, रोग हो जाता है। अन्दर जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला तो हमेशा रहता है। वह जाननेवाला हमेशा रहनेवाला कौन है? उस पर तो दृष्टि देता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

वह तो ऐसा कहे, भक्ति करो ईश्वर की, पूजा करो, दान करो, दया करो, वह धर्म है। उसमें धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा! नरसिंह महेता ने कहा न? जूनागढ़। वैष्णव में नरसिंह महेता हुए न? भगत। उसने कहा, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी'। ज्यां लगी आत्मा चिह्नयो नहीं, जाना नहीं, तब तक तेरी साधना, भक्ति, पूजा सब शून्य है। आहाहा! भवभ्रमण नाश करने का वह उपाय नहीं—बाह्य क्रियाकाण्ड,

भक्ति, पूजा, व्रत और नियम। वह तो विकल्प है, राग है। राग दु:ख है। आहाहा! प्रभु तो आनन्दस्वरूप है। ध्रुव है। ध्रुव नित्यानन्द स्वरूप है।

ऐसे नित्यानन्द स्वरूप में दृष्टि देने से **स्वभावभूत ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं।** ऋद्धि और सिद्धि। हमेशा रहनेवाली ऋद्धि-सिद्धियाँ प्रगट होती हैं। **अन्तर में तो आनन्द का सागर है।** आहाहा! कस्तूरी नाभि में पड़ी है, उसमें कोई नाभि का चमड़ा अन्तर में एकमेक नहीं है। मृग की कस्तूरी अन्दर पड़ी है। भले नाभि है तो भी नाभि से भिन्न है। ऐसे भगवान आत्मा, ये नाभि समान शरीर, उससे अन्दर कस्तूरी समान चैतन्य, बिल्कुल भिन्न है। आहाहा! सुना नहीं है, करने की दरकार नहीं की है। जिन्दगी पूरी करके फिर से भटकने में कौवे, कुत्तो में अवतार। आहाहा! कौआ, कुत्ता, हाथी, घोड़ा, चींटी, मकोड़ा अनन्त अवतार किये।

मुमुक्षु : आप तिर्यंच के नाम लेते हों। देव होता है, वह तो लेते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव हो धूल में, देव हो तो क्या है? देव होता है, वह मरकर वापस पशु में जाएगा। आठवें देवलोक का देव हो। ऐसी बात है। पुण्य से। परन्तु वह देव मरकर वापस तिर्यंच-पशु होता है। चार गति में भटकने के भाव में आत्मा का कोई लाभ है नहीं। जिससे स्वर्ग मिले, वह भी दु:ख है। स्वर्ग भी दु:ख है क्योंकि राग है। आनन्द आत्मा में है। आहाहा! चार गति का कारण शुभ-अशुभ रागादि, उससे भिन्न भगवान है। उसमें आनन्द का सागर है। है? आहाहा!

अन्तर में भगवान आनन्द का सागर तू पड़ा है। आहाहा! कभी विचार किया नहीं। और बाहर में थोड़ा चूरमे का लड्डू और अरवी की पकौड़ी खाये तो आहाहा! मजा आ गया आज तो। पेट में बहुत... वह तो धूल है। सुबह विष्टा हो जाएगी। अन्दर विष्टा होना शुरु हो गया है। ये (शरीर) विष्टा बनने का यन्त्र है। ये शरीर का यन्त्र दाल, चावल, रोटी का विष्टा बनने का यन्त्र है। दूसरा लाईये। कोई यन्त्र में दाल, चावल की विष्टा होती हो तो। नहीं होता। दूसरे कोई यन्त्र में वह नहीं होगा। यह एक ही जड़ का यन्त्र है कि चूरमे का लड्डू खाया होगा, वह सुबह विष्टा बन जाएगा। आहाहा! प्रभु! उससे एक बार नजर तो पलट। ऐसा कहते हैं। पर की नजर तूने कभी छोड़ी नहीं। एक बार तो छोड़। तेरे में अन्तर आनन्द भरा है न, नाथ!

प्रभु! आहाहा! तू प्रभुता से तो भरा पड़ा है। जो चीज़ होती है, वह स्वत: सत्ता से पूर्ण ही होती है। अपूर्ण और विकृत (होती नहीं)। स्वसत्ता स्वयंसिद्ध जो अनादि सत्ता है, उसमें अपूर्णता और विकारपना होता नहीं। पूर्णता और निर्विकारी भगवान अन्दर है। आहाहा! **आनन्द का सागर है। ज्ञानसागर...** है। जैसे आनन्द है, वैसे ज्ञानसागर है अन्दर। इतना ज्ञान अन्दर भरा है कि अपार, अपार। कहेंगे अभी। **सुखसागर—यह सब भीतर आत्मा में ही हैं।** आहाहा! यह सब, इसके अलावा दूसरी अनन्त शक्तियाँ सब भीतर आत्मा में हैं। आहाहा!

जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार लहरें उठती रहें,... क्या कहते हैं? सागर में-समुद्र में लहरें उठती रहें तो भी समुद्र तो जितना है, उतना ही रहता है। लहर के कारण, तरंग के कारण समुद्र घट जाता है, समुद्र में तरंग उठते हैं, बहुत तरंगें उठे, हवा बहुत हो तो बहुत तरंगें उठती हैं, तो भी समुद्र में कमी-बेसी नहीं होती। समुद्र तो भरा पड़ा एकसमान है। आहाहा! **भीतर आत्मा में ही हैं। जैसे सागर में चाहे जितनी जोरदार...** आहाहा! **लहरें उठती रहें, तथापि उसमें न्यूनता-अधिकता नहीं होती,...** आहाहा! क्या कहते हैं? सुनो! समुद्र में जितने तरंग उठते हैं, बहुत तरंग उठे तो भी समुद्र में न्यूनता-अधिकता नहीं होती। समुद्र तो भरा पड़ा है; जितना है, उतना ही है; न्यून भी नहीं, अधिक भी नहीं। ऐसे... आहाहा! है?

उसी प्रकार अनन्त-अनन्त काल तक... आहाहा! यह थोड़ी सूक्ष्म बात है। शुभ और अशुभ परिणाम अनन्त बार हुए। शुभ और अशुभ दशा में हुए। पर्याय में-अवस्था में। फिर भी वस्तु तो जैसी है, उतनी ही है। वस्तु में कमी, अधिकता, न्यूनाधिक है नहीं। यहाँ तो दृष्टान्त बहिन ने यह दिया है कि तूने अनन्त बार शुभ-अशुभभाव किये। अभी भी शुभ-अशुभ कर रहा है। तू अन्दर कौन है, यह तो तुझे खबर नहीं है। इसलिए कहते हैं कि वह तो ठीक। ऐसे शुभ-अशुभभाव अनन्त बार हुए तो भी चैतन्यसमुद्र में हीनाधिकता हुई नहीं। आहाहा!

उसी प्रकार अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे... आहाहा! दृष्टान्त दिया है बहिन ने। अन्दर ज्ञानस्वरूप है, उसमें एकाग्र होकर पहले थोड़ा ज्ञान, प्रगट

आनन्द आया। बाद में विशेष आनन्द आया। करते-करते पूर्ण ज्ञान हुआ। जैसे दूज का चन्द्र तेरहवें दिन पूरा चन्द्र होता है। दूज का चन्द्र तेरह दिन के बाद पूर्ण होता है। ऐसे पहले अन्दर दूज, बीज अर्थात् दूज, आनन्द स्वरूप का नमूना पहले आता है, ज्ञान का नमूना पहले आता है, अन्तर ज्योत देखने से। बाद में उस नमूने से आगे बढ़कर स्वद्रव्य का पूर्ण आश्रय लेने से केवलज्ञान होता है। जो ज्ञान तीन काल-तीन लोक देखे। आहाहा! यहाँ तो दूसरा कहना है कि केवलज्ञान बहता है, **तब भी द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है।** जैसे ये शुभ-अशुभभाव अनन्त काल से करता है, तो भी वस्तु तो जैसी है, वैसी अन्दर है। उसकी दशा में अन्तर है। वस्तु तो निर्मलानन्द अनादि-अनन्त पड़ी है। उसमें कोई हीनाधिकता है नहीं।

वैसे चैतन्य भगवान में शुभ-अशुभभाव चाहे जितने हो, फिर भी उसमें न्यूनाधिकता हुई नहीं। वह बात एक ओर। परन्तु उसमें से केवलज्ञान प्रगट हुआ। ज्ञान की जितनी शक्ति है, उसमें लीन होने से मोक्ष जाने की तैयारी में केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा! केवलज्ञान अर्थात् तीन काल-तीन लोक को जाने। वह केवलज्ञान भी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त काल रहता है। आहाहा! कठिन बात है। केवलज्ञान भी अनन्त काल रहे। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के साथ। तो भी वस्तु जो है आत्मा, उसमें कोई न्यून या अधिक हुआ, ऐसा कुछ होता नहीं। वह तो सदा त्रिकाल निरावरण आनन्द का कन्द है। वह तो उसकी दशा में केवलज्ञान हुआ, वह अनन्त काल रहेगा। इतनी केवलज्ञान दशा बाहर आयी तो अन्तर में कुछ न्यूनता हुई, ऐसा नहीं। आहाहा! अरेरे! सत्य बात सुनने मिले नहीं। मनुष्यभव मिला। 'मनुष्य स्वरूपे मृगा चरंति।' जिसे आत्मा का भान नहीं है, वह मनुष्य के रूप में मृग है, मृग-हिरन। एक कहावत आती है, 'मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरंति।'

यहाँ कहते हैं... यहाँ तो बहिन ने गजब बात की है। आत्मा ज्ञान और आनन्दरूप सागर है। उसमें दृष्टि करने से और बाद में स्थिरता करने से ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट होती है। कैवल्य। पूर्ण दशा प्रगट होती है और वह दशा हमेशा अनन्त काल रहती है, तो भी वस्तु में न्यूनाधिक-न्यून और अधिकपना कुछ होता नहीं। आहाहा! यह बात बैठनी... वस्तु जो चैतन्यस्वरूप है, वह तो उतनी की उतनी ही है। चाहे जितनी निर्मल पूर्ण पर्याय प्रगट हुई और मोक्ष हो गया, जन्म-मरण मिट गया, फिर भी केवलज्ञान वह पर्याय-

अवस्था है, ज्ञान त्रिकाल है, वह गुण है। उसमें से प्रगट दशा हुई, वह तो पर्याय है। हालत-दशा है। वह दशा अनन्त काल रहे तो भी वस्तु में न्यूनता आती नहीं और वस्तुस्वरूप भगवान में अधिकता होती नहीं। केवलज्ञान हुआ तो वस्तु अधिक हो गयी और मतिज्ञान थोड़ा ज्ञान है तो वस्तु में न्यूनता रह गयी, (ऐसा है नहीं)। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह बात बैठनी कठिन है। आहाहा!

अन्दर त्रिलोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, द्रव्यस्वभाव अर्थात् वस्तु का स्वभाव एकरूप त्रिकाल है। उसमें मलिन पर्याय उत्पन्न हो, पर्याय-अवस्था में, तो भी न्यूनाधिकता नहीं (होती)। मलिन पर्याय छोड़कर निर्मल पर्याय अल्प हो तो भी वहाँ न्यूनाधिकता नहीं (होती)। अल्प निर्मल पर्याय छूटकर पूर्ण निर्मल हो गयी... आहाहा! तो भी वहाँ अधिकता नहीं (होती)। न्यूनता नहीं (होती) कि केवलज्ञान बाहर आया, इसलिए वहाँ कुछ न्यून हो गया, ज्ञानगुण कम हो गया। बाहर केवलज्ञान हुआ तो अन्तर ज्ञानगुण में कुछ कमी हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बात थोड़ी सूक्ष्म पड़े। अब बोल थोड़ा सूक्ष्म है। अन्तिम बोल। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ ज्ञानसागर, ज्ञान का भण्डार, ज्ञान की ऋद्धि से भरा प्रभु, भरा हुआ प्रभु है। उसमें से अन्तर दृष्टि देने से प्रथम तो अल्प ज्ञान और अल्प आनन्द, अल्प शान्ति प्रगट होती है, परन्तु विशेष स्थिरता अन्दर करने से पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता उसकी दशा में प्रगट होती है। दशा में प्रगट होने पर भी वस्तु तो है, वह है। वस्तु में हीनता और अधिकता कुछ हुई नहीं। आहाहा! यह बात थोड़ी सूक्ष्म पड़े। लोगों को अभ्यास नहीं है। बाहर का धूल का अभ्यास ये सब। धूल.. धूल का। यह धूल है, उसका अभ्यास। आहाहा!

अनन्त-अनन्त काल तक केवलज्ञान बहता रहे, तब भी द्रव्य तो ज्यों का त्यों ही रहता है। आहाहा! लो, वह चार हुआ। इस ओर २०८।

बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है; आत्मा तो अन्तर में ही है। इसलिए तू अन्यत्र कहीं मत जाना, परिणाम को कहीं भटकने मत देना; उन्हें एक आत्मा में ही बारम्बार लगा; बारम्बार वहीं जाना, उसी को ग्रहण करना। आत्मा की ही शरण में जाना। बड़े के आश्रय से ही सब प्रगट होता है। अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती को ग्रहण कर। उस एक को ही ग्रहण कर। उपयोग बाहर जाए परन्तु चैतन्य का अवलम्बन उसे अन्तर में ही लाता है। बारम्बार... बारम्बार ऐसा करते... करते... करते... (स्वरूप में लीनता जमते... जमते) क्षपकश्रेणी प्रगट होकर पूर्ण हो जाता है। जो वस्तु है, उसी पर अपनी दृष्टि की डोर बाँध, पर्याय के अवलम्बन से कुछ नहीं होगा॥२०८॥

२०८। क्या कहते हैं ? **बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती।** तेरी दृष्टि बाहर है और अन्तर आत्मा प्रगट हो, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! ऐसे तो यहाँ ४१३ बोल हैं। **बाह्य दृष्टि से कहीं...** आहाहा! अन्तर्मुख दृष्टि प्रगट नहीं होती। अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरा (है, वह) बाह्य दृष्टि से प्रगट नहीं होता। चाहे तो दया, दान, सेवा, भक्ति पूरी जिन्दगी करे न, वह तो राग है। आहाहा! अपनी दशा राग, उसकी दिशा पर की ओर है। क्या कहते हैं ? लॉजिक है। अपनी दशा में राग-द्वेष जो है, वह दशा, उसकी दिशा पर की ओर है। ये करूँ, ये करूँ, वह करूँ। और अन्दर धर्म दशा-राग रहित दशा, उसकी दिशा अन्दर में है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो अन्तर की बातें हैं, प्रभु! अभी तो गड़बड़ चली है सब, इसलिए लोगों को यह कठिन लगता है। परन्तु वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! क्या कहा ?

बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। बाह्य में चाहे जितने विकल्प कर, दया का, दान का, सेवा का, भक्ति का... उससे कहीं आत्मा का कल्याण नहीं होगा, जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। डॉक्टरी में भी ऐसा करते हैं न ? डॉक्टर का पहले बहुत चलता न हो न, तो पहले दो-तीन महीने बड़े हॉस्पीटल में... क्या कहते हैं ? ऑनररी। सुना है। दो-तीन महीने ऑनररी करे, इसलिए इज्जत बढ़े, फिर अलग दुकान करे। लोगों को लगे कि

ऑनरेरी करता है। ऑनरेरी कुछ नहीं है। हेतु तो वह कि यहाँ प्रसिद्ध हो जाए तो अपनी दूसरी दुकान चले। ऑनरेरी करके चले। सब बातें तो सुनी है। यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। १८ वर्ष की उम्र से तो ये सब प्रवृत्ति है। १८ वर्ष की उम्र के बाद, हों! ७२ वर्ष हुए। हजारों शास्त्र देखे, करोड़ों श्लोक देखे। बहुत देखा-जाना, दुनिया को, हों! नाचनेवाले बहुत देखे। नाचे नहीं है, परन्तु नाचनेवाले को देखा है। किस प्रकार से उल्टे रास्ते पर नाचते हैं? आहाहा!

यहाँ कहते हैं भगवान, **बाह्य दृष्टि से कहीं अन्तर्दृष्टि प्रगट नहीं होती। आत्मा बाहर नहीं है;...** क्यों नहीं प्रगट होती? आत्मा कहीं राग, पुण्य, पाप, शरीर, वाणी में नहीं है। तो तू बाह्य दृष्टि से देखने जाएगा तो वहाँ कहाँ आत्मा प्रगट होगा? आहाहा! संक्षिप्त शब्दों में... **आत्मा बाहर नहीं है;...** ये शरीर आत्मा है? वाणी? मन? राग-द्वेष, पुण्य-पाप और ये फल-बाह्य मकान, पैसा, ईज्जत, कीर्ति, उसमें आत्मा नहीं है। **आत्मा बाहर नहीं है; आत्मा तो अन्तर में ही है।** आहाहा! **इसलिए तू अन्यत्र कहीं मत जाना,...** इसलिए जहाँ तू है, वहाँ से बाहर मत जाना, प्रभु! तुझे हित करना हो तो। आहाहा! आत्मज्ञान बहुत सूक्ष्म बात है। दुनिया की बात और अभ्यास तो अनन्त बार हुआ। आहाहा!

आत्मा तो अन्तर में ही है। राग में, पुण्य-पाप के परिणाम में भी आत्मा नहीं है। तो उसका फल जो ये धूल बाहर पैसा, उसमें आत्मा है नहीं। **इसलिए तू अन्यत्र कहीं मत जाना,...** आहाहा! अपने को छोड़कर पर में न जाना। **परिणाम को कहीं भटकने मत देना;...** आहाहा! अपना वर्तमान जो विचार, उसे बाहर में भटकने मत देना। अन्दर देख, अन्दर। आहाहा! वर्तमान में वर्तमान में जो परिणाम अर्थात् भाव, उस परिणाम को बाहर भटकने मत देना। बाहर में यह किया, वह किया... आहाहा!

भूतार्थ भगवान, अभूतार्थ चीज़ के प्रेम में भूतार्थ वस्तु का मरण कर देता है। क्या कहा? कि जो भूतार्थ वस्तु है अन्दर आनन्दकन्द प्रभु, उसका प्रेम और अन्तर दृष्टि न करने से, बाह्य की चीज़ में प्रेम करने से, बाह्य चीज़ को अपना मानने से, स्वयं को देखा नहीं तो अपनी सत्ता कहीं तो कबूल करनी पड़ेगी। स्वसत्ता ख्याल में आयी नहीं, तो पर की सत्ता में दृष्टि पड़ी। भगवान नित्य है, तो अनित्य वस्तु है उसको नित्य करना चाहता है कि शरीर

हमेशा रहे, स्त्री हमेशा रहे, कुटुम्ब हमेशा रहे, पैसा हमेशा रहे। अपना स्वरूप नित्य है। तो नित्य को भूलकर ये नित्य रहे, (ऐसा चाहता है)। आहाहा! ऐसी दृष्टि करने से आत्मा भूतार्थ वस्तु है, उसको मरणतुल्य कर देता है कि तुम है नहीं, तुम है नहीं, ये है। आहाहा! है प्रभु, उसको नहीं (करता है)। और जिसमें आत्मा चीज़ नहीं है, वह चीज़ मेरी है। तो उसको अपना जीवन किया और जीवन्त वस्तु का मरण किया। आहाहा! बहुत कठिन चीज़। आहाहा!

उन्हें एक आत्मा में ही बारम्बार लगा; बारम्बार वहीं जाना, उसी को ग्रहण करना। ज्ञानस्वरूपी चैतन्य... चैतन्य.. चैतन्य... जो ज्ञान, ज्ञान को जानता है, उसको पकड़। ज्ञान पर ओर जाता है, वहाँ से वापस मोड़। आहा! और **आत्मा की ही शरण में जाना। बड़े के आश्रय से ही सब प्रगट होता है।** भगवान बड़ा है, आनन्द का नाथ है, उसके आश्रय से... आहाहा! **सब प्रगट होता है। अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती...** आहाहा! वह तो चैतन्यचक्रवर्ती है। पूर्ण कब्जे में ले लेता है। तीन काल का, तीन लोक का ज्ञान। अन्तर में जाता है तो सम्यक् होता है और फिर अन्तर में स्थिर होने से तीन काल का जानना उसमें प्रगट होता है। ऐसा चैतन्यचक्रवर्ती है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

चैत्र कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक १७-४-१९७९
वचनामृत - ११, २१, ३३ प्रवचन-७६३ (DVD 17)

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके, उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है॥ ११॥

....दिवस है। आज समाधिमरण हुआ है। उन्हें वे समाधिस्थ हुए अन्दर में और कह गये कि एकाध भव धारण है। फिर तो हम स्वरूप स्वदेश में जायेंगे। राग में बाहर में हैं, वह सब विभाव परदेश है। आहाहा!

यहाँ ग्यारहवें में यह बात लेंगे। **मुमुक्षुओं को...** जिसे आत्मा के आनन्द की पिपासा है, उसे। **तथा ज्ञानियों को...** सम्यग्ज्ञान हुआ है, उस भूमिकावाले को भी **अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,...** क्या कहते हैं? अन्तर में आनन्द में रहना, ऐसा एकान्त आग्रह नहीं होता। क्योंकि निर्बलता है, कमजोरी है; इसलिए अपवादमार्ग (अर्थात्) भक्ति, विनय आदि का भाव शुभभाव—अपवादमार्ग आता है। उसमें अपवाद में न आकर स्थिरता का आग्रह रखे तो बन नहीं सकता। अन्दर की कमजोरी है। आहाहा!

पूर्ण आनन्द के नाथ को जगाया है और जगाने के इच्छुक हैं, दोनों को। आहाहा! दोनों लिये हैं न? आहाहा! उन्हें अपवादमार्ग का अर्थात्? कि अन्दर में आनन्दस्वरूप में स्थिर नहीं हो सके तो राग आता है, भक्ति का, प्रेम का और उसे जानते हैं कि यह बन्ध का कारण है, हेय है, परन्तु उसका आग्रह नहीं होता कि यह मुझे लाभदायक है और मुझे इसमें रहना है, ऐसा समकिती को या मुमुक्षु को नहीं होता। उसका (आग्रह) नहीं और **उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,...** आहाहा! सूक्ष्म बात है। निचली दशा है, वीतरागदशा नहीं है,

इसलिए अतीन्द्रिय आनन्द में निर्विकल्प में ही रह सकूँ, तो ही ठीक है, ऐसी हठ नहीं होती।

निर्विकल्पदशा में जाना है। निजघर तो वहाँ है परन्तु उसमें रह नहीं सके तो इतना आग्रह-हठ नहीं होती कि मुझे इसमें ही रहना है और शुभराग मुझे न ही हो। ऐसी हठ नहीं होती, प्रभु! आहाहा! निश्चय आत्मा के आनन्द के अनुभव की भूमिका में निर्विकल्प में रह नहीं सके तो उसे शुभभाव आता है। उसे उत्सर्गमार्ग अर्थात् अन्दर में स्थिर ही हो जाना, इसका आग्रह नहीं होता। तथा बाह्य राग आया, इसलिए उसमें रहना, ऐसा भी आग्रह नहीं होता। आहाहा!

बहिन तो बोलते हुए बोल गयी हैं। लड़कियों ने लिख लिया। नौ लड़कियों ने। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो जन्म-मरण के अन्त की बातें हैं। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटककर मरा, अनन्त काल हुआ, परन्तु भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति निर्विकल्प शान्त सागर है, उसकी दृष्टि नहीं हुई और दृष्टि हुई तो भी उसे अब उसमें ही रहना, ऐसा आग्रह नहीं है क्योंकि निचली भूमिका है। उसे—ज्ञानी को भी वाँचन का, विचारने का, सुनने का ऐसा विकल्प आता है वह अपवादमार्ग है। अपवाद कहो। अपवाद नहीं कहते लोग? अपवाद है। अपवाद अर्थात् कि है तो निन्दनीय। आहाहा! परन्तु निचली भूमिका में वह आता है। आता है, इसलिए उलझता नहीं कि क्यों यह राग आता है? और आग्रह इतना नहीं कि मैं तो अन्तर में रमता, वह ठीक और राग आवे, वह ठीक नहीं। ऐसा भी नहीं।

जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही,
वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे, आत्मार्थीजन वही॥

अन्तर की बातें हैं, भगवान! आहाहा!

ज्ञानियों को और मुमुक्षुओं को अपवादमार्ग अर्थात् रागमार्ग ऐसे बीच में शुभ आवे और उत्सर्गमार्ग अर्थात् निर्विकल्पदशा अनुभव हो, दोनों का आग्रह नहीं होता। दृढ़ता हो कि शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वही मैं हूँ। परन्तु फिर भी उसमें रह सके नहीं, वह शुभभाव देव-गुरु-शास्त्र का भाव आता है, तथापि उसे ऐसा नहीं समझे कि यह भाव मुझे धर्म का कारण है। यह धर्म, इसके कारण धर्म की प्राप्ति की वृद्धि होगी, ऐसा न माने। आहाहा!

तथापि वह भाव आये बिना रहता भी नहीं। निचली भूमिका है न? आहाहा! जाना है तो स्वदेश में।

धर्मी की दृष्टि में आत्मा निर्विकल्प जहाँ आया है। सम्यग्दर्शन होता है, वह अन्तर के ध्यान की अनुभूति के काल में होता है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह की एक ४७ गाथा है, उसमें कहा है कि '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार के मोक्ष का मार्ग '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' यह गाथा है। अन्दर ध्यान में से प्राप्त होता है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' '**दुविहं पि**' अर्थात् दो प्रकार का मोक्ष का मार्ग निश्चय और व्यवहार। आहाहा! यह उत्सर्ग और अपवाद। आहाहा! वह ध्यान में प्राप्त होता है। अन्तर में निर्विकल्प अनुभव में '**दुविहं पि**' निश्चय और व्यवहार दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात्? वह कोई विकल्प के काल में उसे सम्यग्दर्शन हो जाए और राग की भूमिका में खड़ा है, उसे अनुभव हो जाए, ऐसा नहीं होता, प्रभु! यह भगवान आत्मा अनुभूति... ७३ में कहा था न? ७३ गाथा में।

उसकी पर्याय में षट्कारक का परिणमन हो। राग का नहीं, निमित्त का नहीं। ७३ गाथा। उसके ज्ञान की पर्याय में, आनन्द की पर्याय में षट्कारक अर्थात् कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदाय ऐसी निर्मल पर्याय कर्ता; निर्मल पर्याय कार्य; निर्मल पर्याय स्वयं रखे, वह सम्प्रदान; निर्मल पर्याय का साधन निर्मल पर्याय; निर्मल पर्याय से निर्मल पर्याय हो; निर्मल पर्याय के आधार से निर्मल पर्याय हो। यह षट्कारक निर्मल पर्याय में होने पर भी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य सन्त वीतरागी मुनि ऐसा कहते हैं कि प्रभु पर्याय में अनुभूति के छह प्रकार होने पर भी तेरी अनुभूति तो उनसे अन्दर भिन्न है। यह अनुभूति, पर्याय नहीं।

आत्मा की जो अनुभूति पर्याय में होती है, आनन्द का वेदन आता है, वह आनन्द की पर्याय, उस समय ज्ञान की पर्याय, ऐसी अनन्त गुण की पर्याय (प्रगट होती है)। अनन्त गुण की पर्याय एक-एक समय में उस-उस काल में षट्कारकरूप से परिणमती पर्याय हो परन्तु प्रभु तो उस षट्कारक की परिणति से पार उतरा हुआ अनुभूतिस्वरूप भगवान है। यह अनुभूति अर्थात् द्रव्य; पर्याय नहीं। यह द्रव्य अर्थात् 'यह द्रव्य' ऐसा भी वहाँ नहीं है। 'यह द्रव्य' वह भी विकल्प नहीं। सूक्ष्म बात है प्रभु!

अन्तर अनुभूति अर्थात् अनुभवस्वरूप यह भगवान त्रिकाल, सच्चिदानन्द प्रभु

निर्मल आनन्दघन, विज्ञानघन ध्रुव। उसे यहाँ अनुभूति कहा है। उस पर्याय की अनुभूति से भी वह द्रव्य अनुभूति की पर्याय से भी भिन्न अनुभूति है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! उस अनुभूति को यहाँ उत्सर्गमार्ग कहा है। और जब सम्यग्दर्शन होता है, तब अनुभूति में होता है। ऐसा का ऐसा विकल्प से माने और यह माना, यह माना; इसलिए सम्यग्दर्शन होता है (—ऐसा नहीं है)। भगवान! बहुत सूक्ष्म चीज़ है, प्रभु! आहाहा! यह नवतत्त्व माने अथवा आत्मा शुद्ध है—ऐसा माना, उससे क्या हुआ?

(समयसार) १४२ गाथा में आता है कि यह शुद्ध है, अखण्ड है, अभेद है प्रभु अन्दर, वीतरागी आनन्द का कन्द है, ऐसा एक विकल्प आया, राग की वृत्ति उठी—अपवाद, उससे क्या? उससे कहीं स्वरूप का लाभ नहीं है। आहाहा! स्वरूप का लाभ तो विकल्प टूटकर अनुभूति होने पर ध्यान में निर्विकल्प दृष्टि होने पर निश्चयमोक्षमार्ग ध्यान में प्रगट होता है, प्रभु! आहाहा! उस काल में जो कुछ अबुद्धिपूर्वक राग वहाँ रहा है।

'**दुविहं पि**' कहा न? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' '**णियमा**' कहा है वहाँ। निश्चय से निश्चय और व्यवहारमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। सुनकर विकल्प में खड़ा हो और वाँचन बहुत करता हो, इसलिए समकितदर्शन हो जाए... आहाहा! ऐसी वह चीज़ नहीं है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' निश्चय और व्यवहार दोनों मोक्ष का मार्ग '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ध्यान में। निश्चय से भी यह परमात्मा का वचन है। नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती गोम्मटसार के कर्ता का वचन है। वचन उनका कहो या आगम का कहो या वीतराग का कहो। आहाहा!

वह जब ध्यान में अन्तर में विकल्प अर्थात् रागरहित होकर निर्विकल्प अनुभूति त्रिकाल की अनुभूति। त्रिकाली अनुभूतिस्वरूप है, उसकी पर्याय में अनुभूति—आनन्द का वेदन हो, उसे यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं और उसके साथ अभी राग बाकी रहा है, इसलिए वीतराग नहीं हो गया। इसलिए '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' निश्चय और व्यवहार दोनों ध्यान में प्रथम प्राप्त होते हैं। अन्तर में निर्विकल्प ध्यान पड़ता है। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान—ऐसे तीन भेद को भी भूल जाता है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यह तो बहिन ने जरा अपवाद और उपसर्ग रखा है, उसका यह आशय है।

दो प्रकार का मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। अर्थात् कि अन्दर निर्विकल्प आनन्द

का वेदन, उसमें प्रतीति और उसकी जो रमणता, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। साथ में वीतरागता नहीं है, इसलिए अबुद्धिपूर्वक राग है। उस ध्यान में बाकी जो राग है, उसे आरोपण करके व्यवहारमोक्षमार्ग है, ऐसा कहने में आता है। क्योंकि रागरहित पूर्ण वीतरागता नहीं हुई इसलिए राग का काल है, निर्विकल्प का वह काल है। आहाहा! इसलिए उसे '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार का मोक्ष का मार्ग, वह ध्यान में होता है। उसे दो को उत्सर्ग और अपवाद के भेद डालकर (यहाँ कहा है)। आहाहा!

निश्चय जो अन्दर अनुभव है, उत्सर्ग है। अब उसमें रह नहीं सकता तो उसे हठ नहीं करना। शुभभाव आता है, भक्ति विनय आते हैं परन्तु उस भाव से मुझे धर्म होता है, वह भाव मुझे अन्तर में जाने में के लिये सहायक होगा, ऐसा न माने। हिम्मतभाई! ऐसा मार्ग है, बापू! यह मुम्बई में ऐसी बातें! आहाहा! उस **अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके...** देखा! अन्दर स्थिर हो सके, तब तो जाए, आनन्द की लहर में निजघर में समाये परन्तु न पहुँच सके तो शुभभाव आवे। अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आवे। अर्थात् वह अशुभ से बचा, इसलिए वह बचा कहने में आता है।

मोक्ष अधिकार में है, समयसार में। व्यवहार जो है, वह राग घटता है परन्तु निश्चय है इसलिए। इसलिए वह राग घटाता है, इसलिए उसे व्यवहार कहते हैं। उसका शुभभाव है, वह अशुभ घटाता है न? इसलिए उसे व्यवहार कहते हैं और पूरी चीज़ का अनुभव जो है अन्तर के आनन्द का, उसे निश्चय कहते हैं। यह मोक्ष अधिकार में है। आहाहा! यह बात बहिन ने यहाँ ली है। यह बात ली है तो प्रवचनसार में उत्सर्ग और अपवादमार्ग... यह वहाँ बहिन, लड़कियों के बीच बोली होंगी, वह लिख लिया है।

बहिन का शरीर स्त्री का है और उनका आत्मा राग का भी नहीं, स्त्री का भी नहीं। आहाहा! यह कहते हैं कि अन्तर में हमको अनुभव हुआ, परन्तु अब अनुभव में रहना ही, और राग-शुभराग न आवे, ऐसा आग्रह हमें नहीं है। तथा शुभराग आया, इसलिए वहाँ ही रहना, उसका आग्रह नहीं है। ऐसा उपदेश है। आहाहा! वह तो व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो। सीधा सट्ट था भटकने का। आहाहा! मार्ग दूसरा, बापू! यह प्रभु का मार्ग कोई दूसरा है।

परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके.... यह बढ़ा जाए क्यों कहा? अपवाद में भी बढ़ा जाए ऐसा कहा। अर्थात् कि आत्मा का निश्चय निर्विकल्प अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, तथापि जहाँ शुभभाव आता है, वहाँ अशुभ से बचता है, इसलिए बढ़ता है, ऐसा कहने में आता है। .... मोक्षमार्ग है—मोक्ष अधिकार, समयसार में। व्यवहार है, वह राग को घटाते-घटाते आगे बढ़ता है। निश्चय है, वह तो अकेला वीतरागभाव ही अन्दर पड़ा है। उस वीतरागभाव की पूर्णता वहाँ नहीं, वहाँ रागभाव शुभ आता है, वह अशुभ को घटाता है। इसलिए धीरे-धीरे आगे जाएगा, ऐसा वहाँ लिखा है। समयसार मोक्ष अधिकार में। आहाहा! आधार सब देते जाएँ तो देरी लगे।... है। कहाँ कथन कितना कहाँ है, वह सब ख्याल में है। वकील तो कोर्ट में कायदे दे न? इसी प्रकार यह भगवान के कायदे शास्त्र में हैं। उन सब कायदों की खबर है।

ऐसा कहते हैं **उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है।** अन्तर आनन्द में ही रहना, विकल्प आवे ही नहीं, यह तो हठ है। वीतराग... विकल्प आयेगा और विकल्प आता है, इसलिए मुझे निर्विकल्पता उसके कारण से अटकेगी या बढ़ेगी, ऐसा भी वह नहीं मानता। शब्द में ध्यान रखनेयोग्य है, बापू!

यह तो तीन लोक के नाथ महाविदेह में परमात्मा विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। बहिन भी महाविदेह से आयी हैं न! वहाँ समवसरण में जाते थे। कुन्दकुन्दाचार्य जब यहाँ से संवत् ४९ में गये, वहाँ ये (बहिनश्री) सेठ के पुत्र थे। समवसरण में जाते थे। आहाहा! उसमें से यहाँ अन्त में जरा भूल हो गयी। स्त्री का देह हो गया। यह सब अन्दर में असंख्य अरब वर्ष का जातिस्मरण है। विश्वास बैठना, न बैठना जगत जगत के पास रहा। दुनिया दुनिया के पास। मार्ग तो जो है तद्नुसार है।

यह बहिन कहती हैं कि अपवाद और उसका हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थस्वरूप की खबर ही नहीं है। आहाहा! निर्विकल्प में जाए और न रह सके तो विकल्प में आये और विकल्प में आवे तो हठ नहीं कि इसमें ही मुझे रहना है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग, भगवान! यह ग्यारहवाँ हुआ। पश्चात्? २१। २१

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है॥ २१॥

२१वाँ बोल। आहाहा! ...है बात, देखो!

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना... चेतनस्वरूप भगवान आत्मा का चेतनस्वभाव। चेतनद्रव्य, उसका चैतन्यस्वभाव और उस चैतन्यस्वभाव में से परिणमित हुई भावना, वह पर्याय। चेतनद्रव्य है, चैतन्यगुण है और उसमें एकाग्र होने पर वह भाव पर्याय है। आहाहा! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना...** आहाहा! परसन्मुख की दशा की दिशा भूलकर चाहे तो शुभराग हो, परन्तु उसकी दशा, उसकी दिशा परसन्मुख है। क्या कहा? चाहे तो राग शुभ हो, महाव्रत आदि या देव-गुरु की भक्ति का। उस राग की दशा की दिशा परसन्मुख है; और वीतराग श्रद्धा-ज्ञान की दशा की दिशा द्रव्य के ऊपर है। समझ में आये, उतना समझना प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग है। अभी कठिनाई हो पड़ी है न! आहाहा!

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—... नास्ति से बात। पहले अस्ति से कही और फिर नास्ति से कही। आहाहा! केवल चैतन्य भगवान चैतन्य रत्नाकर प्रभु की अन्तर की स्वभावसन्मुख की एकाग्रता अर्थात् राग-द्वेष और मोहरहित हुआ भाव, **ऐसी यथार्थ भावना हो...** ऐसी यथार्थ भावना-शुद्धपरिणति-होवे **तो वह भावना फलती ही है।** आहाहा! इस चेतन को चैतन्यगुण की चैतन्य परिणति हो तो उसमें से चैतन्यपना फलता ही है। आहाहा!

चैतन्य भगवान जागृत होकर मैं सर्वज्ञस्वरूप हूँ, ऐसी सम्यग्दर्शन की भावना में यह होता है। **वह भावना फलती ही है।** आहाहा! **यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह**

ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े... आहाहा! क्या कहते हैं? 'घट-घट अन्तर जिन बसे' ऐसा जो जिनस्वरूपी भगवान, उसकी भावना अर्थात् अन्तरसन्मुख होकर वीतराग परिणति / पर्याय, राग-द्वेष-मोहरहित की, ऐसी भावना फलती ही है। वह भावना आवे और आत्मा का अनुभव न हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े... अर्थात्? जोर दिया है। शुद्धपरिणति हुई और परमार्थपने का साक्षात्पना न हो (तो) चौदह ब्रह्माण्ड का नाश हो। अस्ति तत्त्व महाप्रभु है और उसकी परिणति होकर उसकी ओर झुकी और उसके भगवान का साक्षात्कार पूर्ण का न हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! अन्तर में कैसे जा नहीं सकता? कि इसमें जो मति और श्रुत का सूक्ष्म उपयोग चाहिए, वह नहीं है; इसलिए नहीं जा सकता। किसी कर्म के कारण नहीं जा सकता, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

उपयोग में स्थूलता है, कि जिससे अन्तर में नहीं जा सकता परन्तु जिसके उपयोग सूक्ष्म हुआ है, उसे अन्दर आत्मा में गये बिना, फले बिना छुटकारा ही नहीं है उसे। ऐसा नहीं होता। चौदह ब्रह्माण्ड का नाश होना चाहिए अर्थात् कि ऐसा नहीं बनता। इतना जोर दिया है। आहाहा! राग और पुण्य की क्रिया द्वारा आत्मा प्राप्त होता है, यह तो तीन काल-तीन लोक में नहीं है परन्तु उसकी शुद्ध परिणति द्वारा भगवान प्राप्त न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड को नष्ट होना पड़े। आहाहा! अर्थात् कि ऐसा बनता नहीं।

अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! उसे पकड़नेवाली परिणति प्रगट हुई और यदि द्रव्य न... तो द्रव्य का अभाव हो। आहाहा! सूक्ष्म भाषा है, भाई! अनुभवी की अकेली वाणी। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे...' छोटी उम्र की बातें हैं। ७९ वर्ष पहले की। हमारे साथ (पड़ोस) में एक ब्राह्मण थे। वे हमारी माँ के ननिहाल-पीहर के थे, इसलिए हम मामा कहते थे। वे जब नहाते, तो नहाते-नहाते धोती धोवे न? क्या कहलाता है, वह लंगोटी। वे ऐसा बोलते 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना रे।' वे तो बेचारे कुछ समझते नहीं थे परन्तु मुझे उस समय लगा कि यह बोलते हैं वह क्या? ७९ वर्ष पहले की बात है। मामा यह क्या बोलते हो? वह कहे, मुझे कुछ खबर नहीं, भाई! हमारी माँ के पीहर के थे, इसलिए हम मामा

कहते थे। उतारा में नौकरी थी, अकेले रहते थे। स्त्री-पुत्र थे परन्तु ढुंढली में रहते थे। ऐसे गाते थे 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म...' परिब्रह्म अर्थात् समस्त प्रकार से आनन्द का नाथ आत्मा। 'भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना रे... ' दूसरा कुछ बीच में लाना नहीं। आहाहा! उसकी भी इसे कुछ खबर नहीं। लंगोटी पहनते और नहाते-नहाते गाते। उनसे पूछा कि मामा! यह तुम क्या बोलते हो? कि यह कुछ है अन्दर में आनन्द की बात।

यहाँ कहते हैं कि जब अनुभव की परिणति प्रगट होती है और आत्मा के आनन्द का नाथ हाथ में न आवे तो चौदह ब्रह्माण्ड का अभाव होना चाहिए और या द्रव्य का नाश होगा। आहाहा! ऐसा जोर दिया है। ऐसा जोर दिया है नहीं। इस प्रकार ऐसा उसका जोर है। आहाहा! तू तुझे प्रगट करने के लिये तेरी जाति की वीतरागी परिणति प्रगट कर और वीतरागपना हाथ न आवे, ऐसा कैसे बने? आहाहा! राग की कोई भी क्रिया के द्वारा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो बन्ध का कारण है, उससे प्राप्त हो, ऐसा प्रभु नहीं है। आहाहा! ऐसा सिद्ध करने के लिये यह बात डाली है।

उसकी उस जाति की परिणति प्रगट करे और उसमें राग और द्वेष और मोह का अभाव होवे तो उस परिणति द्वारा भगवान प्राप्त न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड का नाश होता है और या द्रव्य का नाश होता है। अर्थात् कि चौदह ब्रह्माण्ड का नाश नहीं होता, द्रव्य का नाश नहीं होता और द्रव्य प्रगट हुए बिना नहीं रहता। कहो, रमेशभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा! पागल जैसी बातें हैं। आहाहा! परमात्मप्रकाश में ऐसा कहा है कि धर्मात्मा आत्मा की बातें करे... आहाहा! तो पागल लोगों को पागल जैसा लगे। ऐसा पाठ परमात्मप्रकाश में है। पागल लोगों को पागल (जैसा लगे)। कहे, ऐसी क्या बात करते हैं? व्यवहार की तो बात ही उड़ा देते हैं, निमित्त की बात ही उड़ा देते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा उसकी जाति की परिणति उत्पन्न करे और उस परिणति में परमात्मा अनुभव में न आवे, ऐसा कभी नहीं होता। आत्मा का अनुभव साक्षात्कार वहाँ होता ही है। आहाहा! दूसरे किसी उपाय से वह आत्मा हाथ आवे, शास्त्र का पठन किया हो, बड़ा ग्यारह अंग का। वह है उसमें शब्द है कि शास्त्र के पठन ग्यारह अंग के किये,

वह परज्ञेयनिष्ठ है। है उसमें। एक जगह है। किस पृष्ठ पर है? ८१वाँ बोल? १३८ पृष्ठ। आहाहा!

क्या कहा यह? तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है। चौथी लाईन है। १३८ पृष्ठ (बोल ३८१) है। यह क्या कहते हैं? **प्रमाण-नय-निक्षेपादि से वस्तु की तर्कणा करे, धारणारूप ज्ञान को विचारों में विशेष-विशेष फेरे, किन्तु यदि ज्ञानस्वरूप आत्मा के अस्तित्व को...** अस्ति को निर्विकल्परूप से **न पकड़े और तद्रूप परिणमित न हो, तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,...** वह शास्त्र का ज्ञान भी परज्ञेय है। उस परज्ञेय में निमग्न है, मिथ्यात्व है। आहाहा! स्वज्ञेय ऐसा भगवान आत्मा उसे हाथ आया नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! है? **तो वह ज्ञेय निमग्न रहता है,...** ज्ञेय अर्थात् पर। यह भगवान आनन्द का नाथ, उसमें न आकर, स्वज्ञेय में निमग्न न होकर उस शास्त्र के पठन के... आहाहा! पहेलियों में रुककर वह परज्ञेय में निमग्न रहा। उसे आत्मा हाथ नहीं आता। लम्बी बात है। यह तो एक शब्द वहाँ बहिन ने रखा। थोड़ी जानकारी करके अभिमान करना नहीं, ऐसा आता है अन्दर। थोड़ी जानकारी हुई, इसलिए हमें आता है। बापू! जानकारी के रास्ते, इस अभिमान के रास्ते जाना नहीं, नाथ! तेरा रास्ता अन्दर कोई अलौकिक भिन्न है। अन्दर आता है, दूसरी जगह। जानकारी का अभिमान करना नहीं, ऐसा आता है।

यहाँ कहते हैं **परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है...** आहाहा! अर्थात्? राग और द्वेष और मोह के भाव से रहित हुए निर्विकल्प वीतरागी परिणाम से वीतरागी वस्तु प्राप्त हो, (उसके साथ) कुदरती बँधी हुई है। आहाहा! जगत का यह स्वभाव है (कि) इसकी जाति का भाव प्रगट हुआ और वह जाति अनुभव में न आवे, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। है? **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।** यह क्या कहना चाहते हैं? कि चैतन्य की परिणति जो निर्मल अन्दर वीतरागी होती है, उसे चैतन्य का अनुभव नहीं हो, द्रव्य कैसा है, उसका पता न लगे, ऐसा नहीं होता कभी। आहाहा!

यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है। आहाहा! यह बहिन कहती है। यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है। वीतराग परिणति द्वारा आत्मा प्राप्त न हो, यह तीन काल में नहीं होता और राग की क्रिया द्वारा प्राप्त हो, यह तीन काल में नहीं होता, ऐसा

सिद्ध करना है। चाहे जो राग की मन्दता हो, भगवान का विनय और महाव्रत और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... आहाहा! वह सब राग है। आहाहा! राग है, वह शुभभाव है, ...कहकर किया था न थोड़ा। समयसार की ४३ गाथा और १५४। यह राग है, वह नपुंसकता है। आहाहा! संस्कृत में शब्द पड़ा है। ४३ गाथा अकेली ४३ गाथा और १५४ गाथा। वह नपुंसक है, कहते हैं। आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? आत्मा का जो पुरुषार्थ वीतरागी है, ऐसा पुरुषार्थ जिसने जगाया और आत्मा उसे प्राप्त न हो, यह तीन काल में नहीं बनता। अर्थात् कि उसके विरुद्ध का कोई भी विकल्प हो और उससे आत्मा को सम्यग्दर्शन हो, यह तीन काल में नहीं बनता, यह अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है। ऐई! धीरुभाई! ऐसी बातें हैं। बनिये की ढिलाई जैसा यह नहीं है। थोड़ा बहुत पोचा रखो। बनिये ऐसा कहे न? थोड़ा पोचा रखो। थोड़ी छूट करो छूट। यहाँ छूट-बूट नहीं, कहते हैं। यहाँ बनियापना नहीं है।

बनिया था, दस हजार रुपया किसान से माँगता था। किसान के पास थी दो हजार की पूँजी मुश्किल से। सब भैंस-बैंस बेचे तो। वह बनिया कहे परन्तु दस हजार में एक पाई कम नहीं लेना है। वह (किसान) कहे, हजार के ऊपर एक पाई नहीं देनी है। ऐसा करके... फिर बनिया आठ हजार में तो वह आया बारह सौ। बनिया आया चार-पाँच हजार में, वह आया पन्द्रह सौ, फिर बनिया आया तीन हजार में, तब वह दो हजार में आकर, बापू! यह है। बनियागिरी की। इसी प्रकार यहाँ है कुछ? पोचा कुछ रखो पोचा, कुछ दूसरा मार्ग।

अरे! प्रभु! तू कौन है? भाई! आहाहा! देखो! यह बहिन का शब्द है न? जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाए? वह कहाँ जाए? आहाहा! क्या कहते हैं? ज्ञायक ध्रुव चिदानन्द, सच्चिदानन्द प्रभु खड़ा है अर्थात् ध्रुव है। जागता ज्ञायक जीव ध्रुव है न, वह कहाँ जाए? अवश्य प्राप्त होता ही है। है? आहाहा! उसे तो पंचम काल का आधार देकर यह काल शिथिल है। रहने दे... रहने दे... प्रभु! रहने दे। यह जागता ज्ञायकभाव प्रभु खड़ा है न अन्दर। यह गुरु की भक्ति से भी वह प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि गुरु और देव की भक्ति भी परद्रव्य और राग है, वह तो। राग आवे अवश्य अपवादमार्गरूप से, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

अन्दर में निर्विकल्प आनन्द के नाथ को... आहाहा! उसकी दशा द्वारा उस द्रव्य को पकड़। राग का कण कुछ भी हो, उसकी दशा की दिशा परसन्मुख है और वीतराग की रुचि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, उसकी दशा की दिशा द्रव्य के ऊपर है। समझ में आया? चाहे जितना राग महाव्रत का या भगवान की भक्ति का (हो) परन्तु उस राग की दशा की दिशा पर के ऊपर है और अन्दर वीतराग की परिणति की दशा की दिशा द्रव्य के ऊपर है। वह द्रव्य प्रगट हुए बिना नहीं रहता तीन काल में, कहते हैं। अभी ज्ञान पर तो बात को ले। आहाहा! जहाँ-तहाँ अटककर बैठा बाहर से। आहाहा! प्रभु! तू कौन है? तू स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, तू नपुंसक नहीं, पर्याप्त नहीं, अपर्याप्त नहीं, अल्पज्ञान नहीं, राग नहीं। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ अन्दर पूर्ण परमात्मा है। आहाहा! ऐसी जिसे दृष्टि और परिणति हुई, उसमें परिणामी परमात्मा उसे प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं।

यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकरों को रखा है बहिन ने। आहाहा! यह २१। पश्चात्? ३३। आहाहा!

'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है—ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है, इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता; और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है॥ ३३॥

'जिसे लगी है, उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं करना। बहुत खेद करने जाएगा कि एकदम यह (हो जाए), ऐसा नहीं होता। धीरे-धीरे धीर हो। यह वस्तु सहज प्राप्त है। आहाहा! बहुत हठ करके खेद करेगा कि कैसे यह (नहीं होता)? ऐसे उलझन नहीं करना, प्रभु! है? **'जिसे लगी है उसी को लगी है' ....परन्तु अधिक खेद नहीं**

करना। वस्तु परिणमनशील है, अर्थात् क्या कहते हैं? प्रभु पलटनशील स्वभाव है। परिणमनशील में, प्रभु! शुभभाव, अशुभभाव आयेंगे। उलझन में मत आना। है?

वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है;... कूट अर्थात् शिखर जैसे एक ऊपर रहे पर्वत पर। कूट-कूट। एकरूप रहता है। उसी प्रकार आत्मा एकरूप नहीं है। ध्रुवरूप से एकरूप कूटस्थ है परन्तु पर्यायरूप से कूटस्थ नहीं है। आहाहा! यह पलटती पर्याय की अपेक्षा से शुभभाव को तो तू एकदम हठ करके छोड़ने जाएगा तो नहीं छूटेंगे। धीमे से करना, प्रभु! ऐसा कहते हैं। ऐसी बातें हैं। आहाहा! **शुभाशुभ परिणाम तो होंगे।** है? क्योंकि परिणमन अर्थात् बदलने का उसका स्वभाव है। कूटस्थ अर्थात् ध्रुव कायम रहकर पर्याय में परिणमना, बदलना यह उसका स्वभाव है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है। यह प्रभु का वचन है, तो उत्पाद-व्यय के कारण परिणमन तो होगा, प्रभु! उसके कारण शुभाशुभभाव भी होंगे। आहाहा! है?

उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य... आहाहा! बहुत हठ करके शुभभाव को छोड़ने जाएगा तो नजर वहाँ जाएगी। आहाहा! है? **छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा।** आहाहा! यह छूटता नहीं, यह छूटता नहीं परन्तु ऐसे नहीं छूटता, प्रभु! यह तो चैतन्य अन्तर आनन्द का सागर। उस निज घर में जाए तो उसे शुभाशुभभाव की उत्पत्ति न हो, वह तो ऐसा उसका स्वभाव है। परन्तु उसमें न जा सके, वहाँ तक शुभाशुभ हों (तो) खेद नहीं करना, हठ नहीं करना (कि) क्यों छूटता नहीं। धीमे से धीरज रख। आत्मा की ओर के झुकाव को छोड़ना नहीं और शुभाशुभ परिणाम आवें, उनका खेद करना नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बैठे उतनी बैठाना, प्रभु!

यह तो भगवान का सन्देश है। महाविदेह के प्रभु का यह सन्देश है। बहिन तो अन्दर बीच में कहनेवाली है। बाकी यह सब सन्देश वे हैं। तीन लोक के नाथ परमात्मा प्रभु विराजमान हैं, वे ऐसा कहते हैं कि ...ऐसा तो कहा सवेरे कि मेरे सन्मुख देखेगा तो तुझे राग होगा, इसलिए मेरे सन्मुख देखना छोड़कर तेरे सन्मुख देख, जिसमें तुझमें वीतरागता भरी है। यदि तुझे वीतरागता करनी हो तो वहाँ जा और वहाँ जाने से तुझे न जा सके और शुभाशुभभाव आवे, खेद नहीं करना। आयेंगे, कमजोरी है तो (आयेंगे)। मैं अब धीरे-धीरे अन्दर में जाना चाहता हूँ। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश किस प्रकार का!

उन्हें छोड़ने जाएगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जाएगा। छूटेगा नहीं और तू जागृत हो सकेगा नहीं। आहाहा! धीरज से काम लेना, प्रभु! शुभभाव हो, अशुभ भी हो। उस पर्याय का उस काल का स्वभाव है परन्तु मैं तो उससे रहित हूँ। उसकी ओर के झुकाव को छोड़ना नहीं और शुभाशुभभाव में छोड़ने को हठ करना नहीं। आहाहा! हीराभाई! रात्रि में बहुत प्रश्न उठेंगे। ऐसा प्रभु है। आहाहा!

इसलिए एकदम जल्दबाजी नहीं करना। यह क्या कहते हैं? तू एकदम उतावल न कर। तेरी योग्यता इतनी न हो और एकदम अन्दर में जाना... जाना... उतावल करेगा तो प्रभु! हठ हो जाएगी। तेरी योग्यता प्रमाण अन्तर सन्मुख होने का प्रयत्न कर। लड़कियों के बीच में, चौसठ लड़कियाँ बालब्रह्मचारी हैं, उनके बीच में बोली थीं। उसमें नौ लड़कियों ने फिर लिख लिया। नहीं तो उन्हें खबर भी नहीं कि कौन लिखता है? लिखनेवाले को खबर नहीं कि यह बाहर प्रसिद्ध होगा। परन्तु जहाँ पुस्तक बाहर आयी, और हाथ में ऐसे आयी... ओहो! रामजीभाई! रामजीभाई को कहा। वरना तो सोनगढ़ की ओर से तो बाईस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बाईस लाख। लाखों अभी प्रकाशित होती हैं, छपती है। हमने कभी कहीं मकान का या पुस्तक का कुछ कहा नहीं। परन्तु यह पुस्तक जहाँ ऐसे देखी... आहाहा! अकेले चैतन्य के रत्न इसमें भरे हैं, कहा। एक लाख पुस्तकें प्रकाशित करने को कहा। साठ हजार तो प्रकाशित हो गयी हैं और पच्चीस हजार तो चिमनभाई की ओर से प्रकाशित हुए हैं। प्रमुख की ओर से यहाँ पच्चीस हजार का निश्चित हुआ है न? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह चीज़ ही कोई अलग है, यह वस्तु ऐसी है। परन्तु उतावल से और एकदम कुतर्क करने जाए तो यह बैठे, ऐसा नहीं है। आहाहा! **मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...** राग आवे परन्तु अन्तर में राग से भिन्न अन्दर में खटक उसके हृदय में रहा ही करती है। आहाहा! अरे! मैं कहाँ हूँ यहाँ? मेरा नाथ तो अन्दर वीतरागरूप से विराजमान है, मेरा स्वदेश तो वह है। ऐसी अन्तर में मुमुक्षु को राग आने पर भी अन्तर में अन्तर की खटक रहा करती है। आहाहा! समझ में आया? है?

उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका

लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। यह भाव-शुभादि आवे, उसमें सन्तोष नहीं करता कि हम यह शुभ करते हैं न, तो उसमें से धीरे-धीरे आगे जाया जाएगा। ऐसा करना नहीं, प्रभु! आहाहा! निर्जरा अधिकार में है, २०६ गाथा में। सन्तोष तो उसे कहते हैं कि ज्ञायकभाव मैं हूँ, उतना ही वह सत्य है। उसे मानना, उसका नाम सन्तोष कहने में आता है। आहाहा! २०६ गाथा। निर्जरा अधिकार, सन्तोष, कल्याण और सत् - तीन शब्द हैं। इतना सत्य है कि जितना भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। उतना सन्तोष है कि जितना ज्ञायकभाव है। उतना ही कल्याण है कि ज्ञायकभाव में जितना एकाग्र हो, उतना ही कल्याण है। ऐसी बातें हैं। (जगत को) पागल जैसी लगे।

बहिन तो चलती हों तो भी मुर्दे जैसी चले। बोले नहीं कुछ,... कुछ चपलता नहीं। दूसरे को-लोगों को तो बोलना आवे (तो) ऐसा मानो कि हमें कितनों को समझाना आता है, इसलिए मेरा ज्ञान कैसा! बापू! वह अलग बात है, भाई! आहाहा! वह बातें अलग, यह बातें अलग, नाथ! तेरे घर में जाने की बातें अलग है, प्रभु! और शास्त्र के करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ करके जगत को समझाना, वह पद्धति अलग। यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा! परन्तु प्रभु! तेरे घर के ओर की तुझे खटक नहीं है। आहाहा!

गहराई में खटका लगा ही रहता है, सन्तोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है — ऐसा गहरा खटका निरन्तर लगा ही रहता है,... आहाहा! है? **इसलिए बाहर कहीं उसे सन्तोष नहीं होता;...** कहीं हर्ष में हर्षित नहीं हो जाता। बाहर के काम में किसी में हर्ष में हर्षित नहीं हो जाता। मेरा नाथ तो अन्दर है। उसमें यह कहाँ हर्ष का ठिकाना बाहर है? इस प्रकार मुमुक्षु को अन्दर में खटक रहनी चाहिए। है?

अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिए उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर... भले कहते हैं... तू आड़ा-टेड़ा जाना नहीं। धीरज करना। **वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।** आहाहा! हाथ न लगे, इसलिए उलझन नहीं कि अरर! ऐसी चीज़ यह क्या? धीरज करना, प्रभु! बहुत उतावल करना नहीं, तथा उलझन करना नहीं। अन्दर में प्राप्त होगा ही। यदि खटक अन्दर रही तो मिलेगा ही। उसमें कुछ फेरफार हो, ऐसा नहीं है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११ चैत्र कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक १८-४-१९७९

वचनामृत - ३४, ३६, ४५ प्रवचन-७६४ (DVD 17)

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। उसे सुख का वेदन चाहिए है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिए उलझन होती है परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अन्दर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता॥ ३४॥

.....उसे मुमुक्षु कहने में आता है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भगवान परिपूर्ण है, उसकी जिसे अन्तर जिज्ञासा अन्तर में अनुभव करने की है, उसकी भूमिका में थोड़ी उलझन तो होती है। एकदम अन्दर न जा सके, राग न तोड़ सके, शुरुआत की बात की है। आहाहा!

परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए। आहाहा! ऐसा नहीं उलझता कि अरे रे! यह क्यों प्राप्त नहीं होता? इसलिए मैं अब राग को ही प्राप्त करूँ, ऐसा नहीं उलझता। थोड़ी सूक्ष्म बात है। अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, उसे अनुभव करना है, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। इसका नाम धर्म की पहली शुरुआत है। अतीन्द्रिय आनन्द जो पुण्य और पाप के दो भाव, जो बन्धन के कारण और विकारी, उनसे जिसकी जिज्ञासा चैतन्य के सन्मुख होकर राग की मर्यादा तोड़कर अन्तर में जाने की है। आहाहा! उसे एकदम अन्दर न जाया जाए, इससे उलझन भी होती है। **परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाए।** आहाहा! धीरे से, राग से भिन्न पड़कर, धीरे से मैं आत्मा के अन्तर में आनन्द के स्वघर में मैं जाऊँगा, ऐसी धीरज रखे। आहाहा! ऐसी कठिन बातें हैं।

मेरा निजघर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसमें मैं जाना चाहता हूँ, परन्तु अभी राग में से हटकर अन्तर में जाया नहीं जाता, इसलिए थोड़ी उलझन आती है परन्तु ऐसी उलझन नहीं करता कि मूढ़ता हो जाए। जो राग में ही एकाग्र होकर आगे बढ़ने का प्रयास ही छोड़ दे, ऐसी उलझन नहीं करता है। सूक्ष्म बात है। बहिनों के बीच में बहिन ने कहा। लड़कियाँ ६४ थीं, उसमें (बोले थे)। आहाहा!

उसे सुख का वेदन चाहिए है... क्या कहते हैं? मुमुक्षु उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा की अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन चाहिए है। क्योंकि अनादि से पुण्य और पाप के राग के वेदन में तो पड़ा है, वह तो संसार है। आहाहा! इसने नहीं आत्मा के राग के वेदन के अतिरिक्त पर का वेदन किया, इसने नहीं राग से भिन्न आत्मा के आनन्द का वेदन किया। समझ में आया? आहाहा! पर का वेदन कभी होता नहीं—शरीर का, कर्म का या किसी का। वेदन में इसे राग और द्वेष के विकल्प का वेदन होता है। इससे उसे अन्तर में जाने की भावना होने पर शीघ्र अन्दर में आनन्द का वेदन चाहिए है, उसे मुमुक्षु कहते हैं। आहाहा!

धर्म की जिज्ञासावाला उसे कहते हैं कि जिसे... है? **उसे सुख का वेदन चाहिए है, वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...** आहाहा! राग में रहना रुचता नहीं, अन्तर के आनन्द के वेदन में जा सकता नहीं; इसलिए मुमुक्षु को जरा धीरज रखनी पड़ती है, उलझन में नहीं आ जाना। आहाहा! करना तो यह है। 'लाख बात की बात...' आता है न छहढाला में? 'निश्चय उर लाओ, तोड़ि जगत द्वन्द्व-फन्द निज आतम उर ध्याओ'। मुमुक्षु को आनन्द का वेदन चाहिए है। उसे राग का वेदन नहीं चाहिए, तो भी राग के वेदन में से हट नहीं सकता और अन्दर में जा नहीं सकता, इसलिए उसे जरा उलझन होती है। आहाहा! तथापि उसे बाहर रहना पोसाता नहीं। आहाहा! राग का भाग आवे, दया, दान, व्रतादि का, वह भी बन्धन का कारण है। उसमें भी रहना सुहाता नहीं, इसलिए उलझन होती है।

परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। आहाहा! अन्दर में आनन्द का नाथ, उस ओर झुकाव करके धीरे-धीरे धीरज से ध्येय को ध्यान में लेकर... आहाहा! सूक्ष्म बात है। धीरज से ध्यान में ध्येय भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के सागर से लबालब भरा है। इसलिए मुमुक्षु को उसके वेदन की जिज्ञासा है परन्तु यहाँ राग का वेदन हटता

नहीं और वह वेदन आता नहीं। आहाहा! यह तो प्रथम भूमिका की बात करते हैं। आहाहा!

परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। उस राग में से भी हटकर; राग तो कृत्रिम क्षणिक पलटती विकृत अवस्था है और भगवान अन्दर तो त्रिकाली कायम रहनेवाला ध्रुव सत्ता, चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु है। इस प्रकार उसे राग में से भिन्न पड़कर शोध लेता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

जितना पुरुषार्थ उठाये, उतना वीर्य अन्दर काम करता है। राग में जितना पुरुषार्थ जाता है, वह मुमुक्षु जानता है सुनकर, (कि) इतना वह वीर्य नपुंसक है। आहाहा! शुभराग में भी जो कुछ अभी वीर्य रुकता है, उसके ख्याल में, लक्ष्य में सुनकर आया है कि राग में जितना रुकना है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का हो परन्तु है तो राग—सोने की बेड़ी। भाई कहते थे न! वह सोने की बेड़ी है। लोहे की बेड़ी से सोने की बेड़ी कठोर है। लोहे में वजन कम है, सोने में वजन अधिक है। इतनी बेड़ी में सोने में चमड़ी में घिसावट अधिक होती है। आहाहा! लोहे की बेड़ी की अपेक्षा सोने की बेड़ी में सोना वजनदार, चिकना वजनदार है, इसलिए उसकी बेड़ी में शरीर में घिसावट अधिक होती है। इसी प्रकार पाप की अपेक्षा पुण्य में मिठास लग जाए (तो)... आहाहा! अन्तर के आनन्द को घिसावट लग जाती है। समझ में आये उतना समझना प्रभु! यह तो अन्तर की बातें हैं। आहाहा! अभी तो मुश्किल पड़े ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं कि **पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अन्दर काम करता है।** जितना राग से भिन्न पड़कर अन्तर पुरुषार्थ जाए तो वह वीर्य स्वरूप की रचना करे, वैसा पुरुषार्थ उठावे। बहिन की भाषा बहुत सादी है, परन्तु (गम्भीर है)। आहाहा! अन्दर में राग के विकल्प की दशा की दिशा (परसन्मुख है)। राग जो होता है चाहे तो दया, दान का हो, उस राग की दशा पर की दिशा सन्मुख के झुकाववाली है और अन्तर की दशा की दिशा, वह वीतरागी दशा करने में उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। अन्तरद्रव्य के ऊपर है। समझ में आया? आहाहा! चाहे जो दया, दान, व्रत आदि के परिणाम हों, परन्तु उस राग की दशा की दिशा परसन्मुख है। उसे—मुमुक्षु को अन्दर जाना कठिन पड़ता है, परन्तु उलझन नहीं करना। उस राग के पुरुषार्थ को मन्द करके... आहाहा! अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु,

उस ओर पुरुषार्थ करे, उसे ही यहाँ वीर्य और पुरुषार्थ का स्वरूप रचना का कार्य करने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें!

वीर्य अन्दर काम करता है। पुरुषार्थ उठावे उतना। अर्थात् अन्दर में उठावे उतना, हों! राग की ओर के झुकाववाले वीर्य को समेटकर मर्यादा में लाकर। १४४ में है न? १४४ गाथा समयसार में है। मन और इन्द्रियाँ जो परसन्मुख झुकाववाली जाती है, और उसका झुकाव ही अनादि से परसन्मुख है। इसलिए उसे जरा ऐसे आगे जाने से जरा रोककर उसके पुरुषार्थ को अन्दर में झुका ले। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो मूलमार्ग है। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं।

बहिन तो अनुभव में से बातें बोली थीं, लड़कियों ने लिख लिया। बहिन को तो अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में बाहर की कुछ सूझ ही नहीं पड़ती। एक स्त्री का शरीर है इतना, बाकी अन्तर में तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के अनुभव के समक्ष कहीं उन्हें चैन नहीं पड़ता। उन्हें जयन्ती का दिन हो, बीस-बीस हजार, पच्चीस-पच्चीस हजार हीरे से सम्मान करते हैं।

एक बार ६१वीं जयन्ती थी। जरा आहार करने गये। तो बहिन कहती है, महाराज! हम तो आत्मा का करते हैं, उसमें यह क्या उपाधि! आहाहा! ऐई! हमको खड़े रखकर हीरा से सम्मान करे और क्या करते हैं यह? माँ! बहिन! तुम्हें खड़े रहना। माँ! इन लोगों को इच्छा और रस होता है। तुम्हें क्या है? तुम्हें तो देखना कि यह होता है। तब तो वे खड़ी रहती हैं। नहीं तो खड़ी रहे नहीं। उन्हें पर सम्मान करे, दस-दस हजार हीरे से, बीस-बीस हजार हीरे से और पहले से बधाई आती है कि भाई! भाद्र कृष्ण दूज को हमें सम्मान करना है दस हजार। एक कहे पाँच हजार। एक व्यक्ति कोई आया था। भाद्र कृष्ण दूज को हमें बहिन का सम्मान करना है। पाँच हजार के हीरे। कोई था तो सही। अपने को बहुत खबर नहीं। गोरडिया। उन्हें तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के अनुभव में कहीं अन्यत्र चैन नहीं पड़ता और अन्यत्र कहीं सुहाता नहीं। आहाहा!

एक बार फिर फाल्गुन कृष्ण दसवीं की राजकोट की खबर पड़ी कि राजकोट में सम्मान करनेवाले हैं। महाराज! यह क्या करते हैं यह? एक तो उपाधि जयन्ती की है

और फिर यह फाल्गुन कृष्ण दशम् की दूसरी निकाली ? समकित होने का दिन था। उस दिन अनुभूति हुई थी। इसलिए उन लोगों ने पाँच हजार के हीरों से सम्मान किया। उस समय उस दिन मैं नहीं आऊँ। फिर भाई को कहा। वजुभाई को—उनके भाई को। बहिन को लेकर आओ। बहिन को क्या है ? वहाँ खड़े रहे या यहाँ खड़े रहें। उन्हें क्या है ? माँ! यह जगदम्बा है। आनन्द की लहर में कहीं उन्हें अन्यत्र चैन नहीं पड़ता। खड़े रहें, दूसरा क्या है। नहीं तो ग्यारस को आनेवाले थे परन्तु जब कहा, तब नवमी को आये।

आत्मा के अतीन्द्रिय रस का जिसे स्वाद आया है... आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द के स्वाद की... से भरपूर। आहाहा! मुमुक्षु को राग की रुचि छूटकर उस स्वभाव के सागर को जहाँ स्वाद में उसे लिया। आहाहा! उसके स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन का करोड़ों अप्सरायें और बत्तीस लाख विमान है। सौधर्म देवलोक शकेन्द्र को, उसके सुख को भी आत्मा के स्वाद के समक्ष सड़े हुए श्वान की गन्ध मारे, उसे ऐसा सुख लगता है। आहाहा! ...जी! ऐसी बात है, बापू! भाई! आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ अन्दर... वस्तु हो, वह दुःखरूप नहीं हो सकती। वस्तु हो, वह अपूर्ण नहीं हो सकती। वस्तु हो, वह विपरीतभावरूप नहीं हो सकती। वस्तु हो, वह अविपरीतभाव और पूर्ण आनन्दमय पूर्ण वस्तु होती है। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, प्रभु! उसके अन्दर में जाना... कहते हैं कि आत्मार्थी अन्दर पुरुषार्थ डालकर काम करे। आहाहा! मुमुक्षु को शुभ-अशुभभाव में जानेवाला वीर्य उसे नपुंसकता दिखती है और जो पुरुषार्थ भगवान आनन्द के सागर में गया, उस पुरुषार्थ को पुरुषार्थ, पुरुष का पुरुषार्थ उसे गिनता है। क्या कहा ?

मुमुक्षु की तीव्र जिज्ञासा, जिसे आत्मा के आनन्द को वेदन करने की जिसे भावना है। अभी तो धर्म की पहली शुरुआत की प्रभु यह तो बात है। बापू! चारित्र और वह तो बापू! क्या कहें ? बापू! वह तो अन्दर कठिन बातें हैं, वह तो स्वरूप के आनन्द की रमणता की भान दशा हो, पश्चात् उसमें आनन्द में-अतीन्द्रिय आनन्द में, जैसे गन्ने के रस को गटक-गटक कर पीवे, उसी प्रकार आत्मा के आनन्द को क्षण-क्षण में गटक-गटक कर पीवे, उसका नाम चारित्र कहा जाता है। आहाहा! उस चारित्र की क्षमता पुरुषार्थ में

अलौकिक पुरुषार्थ है। उसके पहले यहाँ तो अभी समकित के वेदन के लिये कहते हैं, तथापि पुरुषार्थ अन्दर काम करता है।

आत्मार्थी हठ नहीं करता... देखो! धीमे से काम ले, धीरज से ले। आहाहा! एकदम हठ करने जाए तो भी इस राग में एकाकार हो जाए और हठ करने जाए तो स्वभाव का अनादर हो जाएगा। यह सहज वस्तु है, ऐसा लक्ष्य में रखकर **आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है।** देखा! यह तो मुद्दे की बातें हैं, बापू! इस धूल में बाह्य में पैसा और इज्जत और कीर्ति, करोड़ों या अरबों रुपये बाहर की सब चमक-दमक, वह तो श्मशान की राख है, बापू! आहाहा! शरीर की सुन्दरता और मकान की... आहाहा! पाँच-पच्चीस-पचास लाख के मकान, बड़े-बड़े करोड़ों के मकान। ऐई! रमणीकभाई! इन्हें सत्तर लाख का मकान समुद्र के किनारे है। वह सब मकान बाहर का ठाठ है। बापू! आहाहा! वह तो श्मशान की राख का ठाठ है।

चैतन्य ज्योति जलहल भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्होंने आत्मा अन्दर देखा है, उन्होंने ऐसा आत्मा देखा, उसे वह आनन्द का नाथ है, उसे आत्मा देखा है। उसे पुण्य और पाप के भाव हो, उसे तो पुण्य-पाप के तत्त्वरूप से देखा है। शरीर की क्रिया हो, उसे परमात्मा ने अजीवतत्त्व की क्रिया देखी है। आहाहा! उस अजीव की क्रिया से पार और शुभ-अशुभ परिणाम विकार की क्रिया से भी पार। आहाहा! ७३ में आया है न? उससे तो पार प्रभु! सूक्ष्म बात है, नाथ! आहाहा!

यह शरीर, वाणी, मन तो जड़, जगत के परतत्त्व हैं। उनका तो कोई भी वर्तमान उनकी एक समय की पर्याय आत्मा कर सके या पलटा सके, उसका अधिकार है नहीं। उसमें होनेवाले पुण्य और पाप के भाव, वे भी दृष्टि पर के ऊपर हो, तब उनका कर्ता होता है। मुमुक्षु को जब अन्दर अकर्तापने में आना है... आहाहा! तब उसकी रुचि उनमें हट जाती है और हटकर अन्दर में जाना चाहता है। अन्दर में जाना चाहकर, आहाहा! हठ वहाँ स्वभाव में काम नहीं करती। धीरज से काम ले। धीरे-धीरे। ज्ञायक की पर्याय को, मति और श्रुतज्ञान की वर्तमान वर्तती दशा को अन्तर में झुकाने का प्रयत्न मुमुक्षु करता है। आहाहा! ऐसी बातें! तब उसे अन्दर में आत्मा हाथ आता है। यह है न?

स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है,... आहाहा! यह तो बहिनों में

बोला गया और लिखा गया, इसलिए बाहर आया। नहीं तो उन्हें कुछ... भगवान आत्मा अन्दर आनन्दधाम, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु अन्दर। आहाहा! जैसे समुद्र के किनारे समुद्र का ज्वार आवे, वैसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा हुआ है। मुमुक्षु को उसमें दृष्टि पड़ने पर उसकी वर्तमान पर्याय में समुद्र के किनारे ज्वार आवे वैसे वर्तमान पर्याय में आनन्द का स्वाद पर्याय में आता है। वह आनन्द का ज्वार कहने में आता है। उस समय दुःख की बुद्धि, रुचि टल जाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं परन्तु बापू! क्या हो? आहाहा! अनादि का अनभ्यास, जगत का अभ्यास इस दुनिया का, और पाँच-पचास करोड़ का हुआ वहाँ हो गया मानो कि ओहोहो!

अपने एक शान्तिलाल खुशाल नहीं? गोवावाले। दो अरब चालीस करोड़। पानसणा के (हैं)। उनकी बहिन की लड़कियाँ बालब्रह्मचारी हैं। शान्तिभाई न? शान्तिभाई कहे, मैं वहाँ था उस समय। उसे हुआ वहाँ। ...दुःख हुआ न! डॉक्टर को बुलाओ, कहे। आहाहा! जहाँ बुलाने गये... आये वहाँ तो देह छूट गयी। उसके दो अरब चालीस करोड़ और साठ लाख के तीन मकान गोवा में हैं। चालीस लाख का एक और दस-दस लाख के दो। सब बँगले पड़े रहे। हजीरा समझ में आता है? जामनगर में नदी के किनारे मुल्ला का हजीरा है। यह मुल्ला नहीं लोटियावोरा। बड़ा हजीरा। बड़ा हजीरा। नदी के किनारे जामनगर में। उन्हें वहाँ दफनाते हैं, उसे हजीरा कहते हैं। इसी प्रकार यहाँ पाँच-पच्चीस लाख का मकान है उसमें मुर्दा, आत्मा के भान बिना यह सब चलते मुर्दे, उनका यह सब हजीरा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह बात तो कहीं रह गयी। राग की मन्दता के भाव में भी मुमुक्षु को उलझन आने पर अन्तर में हट न सके तो धीरे से काम ले। धीरे से अन्तर में जाने का प्रयत्न करे। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! धर्म, अन्तरमार्ग में है। अधर्म, वह बाह्य के लक्ष्य में उत्पन्न हुए पुण्य और पाप के भाव, दोनों अधर्म है। दोनों अधर्म है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।** एकदम उतावल—हठ करने जाए तो नहीं मिलता। धीरे से स्वभाव की महिमा करने से, धीरे से राग की महिमा घटाने से, स्वभाव अन्दर भगवान पूर्ण आनन्द है, उसकी महिमा में धीरे से जाने पर उतावल न करे। आहाहा! उसे आत्मा प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। वह यह कहा है। यह ३४वाँ कहा। अब ३६ है न?

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है॥ ३६॥

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है... क्या कहते हैं? जो यह जानने-देखने का जो उपयोग है न, मति और श्रुत का जानने-देखने का परसन्मुख के झुकाववाला, पर को जानने की ओर के झुकाववाला वर्तमान मति-श्रुत का उपयोग है, उस उपयोग को पलटना चाहता है कि उपयोग बाहर की ओर है, उसे अन्तर में लाऊँ। **परन्तु अन्तरङ्ग रुचि को नहीं पलटता,...** परन्तु अन्दर रुचि में उसे पलटाता नहीं। राग की रुचि छोड़कर भगवान आनन्द का नाथ अन्दर है, उसकी रुचि को पलटाये बिना उपयोग पलट नहीं सकता। समझ में आया? क्यों? कि रुचि अनुयायी वीर्य। जिसमें जिसकी रुचि, वहाँ उसका पुरुषार्थ काम किये बिना नहीं रहता, प्रभु! आहाहा!

जिसे राग की रुचि तो उसका पुरुषार्थ वहाँ काम करेगा। जिसे रागरहित भगवान आत्मा... सूक्ष्म बात तो पड़ती है, प्रभु! क्या हो? यह उपदेश ही कोई दूसरे प्रकार का है। अन्य तो व्रत करो और अपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, छह परबी दया पालो, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना वह तो बात समझ में आये। क्या समझना है? अनादि से किया है, वह प्रकार है यह तो।

यह तो अन्तर के परिवर्तन की बात है, नाथ! यह कहते हैं कि तू उपयोग को पलटाना चाहता है, परन्तु रुचि नहीं होवे तो उपयोग नहीं पलटेगा। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का सागर, उसकी रुचि किये बिना तेरा उपयोग वहाँ नहीं जा सकेगा। तू उपयोग अर्थात् वर्तमान परिणाम, जानने-देखने के परिणाम को पलटाना अर्थात् अन्दर में ले जाना चाहता है। परन्तु रुचि के बिना वे परिणाम अन्दर में नहीं जा सकेंगे। समझ में आये, उतना समझना, प्रभु! यह तो भगवान का निधान है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी, उसे—समकिती अनुभवी को वह वाणी निकलती है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं।

उपयोग को पलटना चाहता है... ३६वाँ बोल। अर्थात् क्या ? अन्दर में जानने-देखने के जो भाव हैं, वे परसन्मुख झुकाववाले, उन्हें अन्तर में झुकाना चाहता है परन्तु अन्तर की रुचि बिना अन्तर सन्मुख का उपयोग झुक नहीं सकता। समझ में आये, उतना समझना, प्रभु! यह तो वीतराग की बातें हैं। अरेरे! भरतक्षेत्र में भगवान का विरह पड़ा, तीर्थंकरों की उपस्थिति नहीं। जहाँ उपस्थिति है, वहाँ जन्म नहीं और उपस्थिति है, वहाँ नहीं वहाँ जन्म। प्रभु का विरह पड़ा। आहाहा! उनका तो पड़ा परन्तु वर्तमान केवलज्ञान उत्पन्न होने का विरह पड़ा। आहाहा!

भगवान का विरह तो है परन्तु उसमें केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी इसमें शक्ति के भाव का सामर्थ्य है। वह एक समय में उग्र पुरुषार्थ से तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसे केवलज्ञान की उत्पत्ति का भरतक्षेत्र में, प्रभु! विरह पड़ा है। आहाहा! उसमें रहे मात्र... अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान का भी विरह पड़ा। रहे मति और श्रुत दो। ऐसे मति और श्रुत में वह उपयोग जो है, उसे तू पलटाकर अन्दर में ले जाना चाहता है परन्तु रुचि को पलटाता नहीं तो उपयोग नहीं पलटता। आहाहा! अन्तर भगवान आनन्दस्वरूप है, उसकी रुचि नहीं करे तो परसन्मुख का जो उपयोग है, वह स्वसन्मुख में ढल नहीं सकेगा। ऐसा है, धीरुभाई! कभी ऐसा सुना नहीं होगा कहीं वहाँ। धूल का धमाका। उसमें फिर पाँच-पचास लाख, पाँच-पाँच लाख महीने में पैदा होते हों, पाँच-छह-दस लड़के हों और मानो कि ओहोहो! क्या बढ़ गये हम कहाँ रहे! धूल में भी नहीं। सुन न!

अन्दर तीन लोक का नाथ, जिसकी महिमा का पार नहीं होता, जिसकी महिमा सर्वज्ञ के मुख की वाणी में भी पूरी नहीं आती, ऐसे नाथ के ऊपर जाता नहीं, उसके सन्मुख झुकाव और... आहाहा! रुचि करता नहीं और उपयोग को पलटाना चाहता है, वह नहीं पलटेगा। आहाहा! रुचि अनुयायी वीर्य। यदि रुचि राग की रहेगी तो वीर्य वहाँ काम करेगा। रुचि यदि ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल में होगी तो वीर्य वहाँ काम करेगा। क्योंकि रुचि अनुयायी वीर्य अर्थात् जिसे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसमें उसका पुरुषार्थ किये बिना रहेगा नहीं। सिद्धान्त समझो त्रिकाली। जिसे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसमें उसका वीर्य-पुरुषार्थ किये बिना रहेगा नहीं। इसी प्रकार आत्मा के आनन्द की

रुचि की आवश्यकता यदि ज्ञात हो तो उस ओर का पुरुषार्थ ढले बिना रहेगा नहीं। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश है? कठिन पड़े। सुनने... तुमने क्या सुना इसमें? कौन जाने किसकी बातें करते थे? एक ऐसा और एक ऐसा। बापू! प्रभु! मार्ग वह तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है।** जानने का उपयोग है, उसे तू पलटाना चाहता है, परन्तु अन्दर वस्तु की रुचि नहीं करता और राग की रुचि हटती नहीं। आहाहा! उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। आहाहा! **प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा।** है? यह वस्तु है। **प्रथम रुचि को पलटे...** जो पुण्य और पाप के भाव का पोषण है, उसकी रुचि के पोषाण में पड़ा है, उसका माल उसे पोसाता है। आहाहा! बनिये को भी माल पोसाये, वहाँ से लाता है। ढाई रुपये का मण हो और घर आकर तीन रुपये, पौने तीन का दे। परन्तु ढाई रुपये का लेकर यहाँ सवा दो उपजते हों, वह माल पोसायेगा? इसी प्रकार यहाँ पोषाण करे राग का और पुरुषार्थ ढले अन्तर में, ऐसा नहीं हो सकता, प्रभु! आहाहा! तेरी दुनिया की ओर के झुकाव के पोषाण की रुचि छोड़कर... आहाहा! प्रथम रुचि का परिवर्तन कर। आहाहा! तेरी रुचि में वह रुचिकर तत्त्व वहाँ ले जा। वहाँ रुचि में भगवान सुहायेगा, राग नहीं सुहायेगा, इस प्रकार से रुचि कर। आहाहा!

रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जाएगा। आहाहा! एक महिला थी। नयी माँ थी और उसके लड़का था। पैसेवाले थे, फिर उसकी माँ के... उसकी बहू देखने गये। देखने गये तो बहू का वस्त्र उसकी नयी माँ थी, उसने पहने थे। वह पहनकर सो रही थी। उसमें इसे जरा विषयवासना हुई। इसलिए वह वस्त्र पहनी हुई देखकर तो बहू लगती है, इसलिए जरा पैर मारा। वहाँ थी तो नयी माँ। वह समझ गयी। भाई! बहू नहाने गयी है। जो अन्दर रुचि थी कि कुछ ऐसा करूँ, वहाँ रुचि एकदम गुलाँट खा गयी। यह बना हुआ है, हों!.... वे वस्त्र देखे न, इसलिए उसे खबर नहीं पड़ी कि यह बहू है या माँ है। जहाँ उसे पैर (छुआया), क्यों भाई? क्यों लड़के? वह गयी है नहाने। आहाहा! रुचि गुलाँट खा गयी। जो विषय की वासना का रस था, वह उड़ गया। एकदम उड़ गया। अरे रे! भले नयी माँ परन्तु माता है न? एकदम रस उड़ गया। इसी प्रकार...

जो अन्तर में राग की रुचि के प्रेम में सो रहा है, उसे जगाना होवे तो उसकी रुचि को गुलाँट खिला। आहाहा! यह तीन काल का नाथ अन्दर पड़ा है प्रभु, तू सच्चिदानन्द प्रभु है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन' यह वीतरागी वचन है। क्योंकि जब वीतरागपना बाहरवें-तेरहवें (गुणस्थान में) उत्पन्न होता है, वह कहीं बाहर से नहीं आता। अन्दर में है, प्रभु! अन्दर में है। परन्तु तेरी तुझे महिमा सूझती नहीं। क्योंकि इसे पर की महिमा हटती नहीं और पर की महिमा के अनादि से अभ्यास के कारण अन्दर महाप्रभु है, उसकी महिमा की इसे खबर नहीं पड़ती। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि पहले रुचि पलटा। पोषाण भगवान आत्मा का कर, राग का पोषाण छोड़ दे। वह माल तुझे नहीं पोसायेगा। आहाहा! उसका पोषाण छोड़ दे। अरे! कैसे छोड़े? आहाहा!

करनेयोग्य यह है। पर की रुचि का पोषाण प्रभु! एक बार छोड़ दे और अन्तर का नाथ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु की रुचि का पोषाण पहले कर तो पलटा सहज हो जाएगा। वह मति और श्रुतज्ञान उपयोग वहाँ ज्ञेय में जम जाएगा। जो वस्तु की रुचि की होगी, तो वह मति और श्रुत का उपयोग बाहर की ओर ढलता है, वह अन्दर में चला जाएगा। धीरुभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! यह तो भगवान की कॉलेज है। वीतराग तीन लोक के नाथ महाविदेह में विराजते हैं। उनकी यह सब बातें हैं। बहिन कहती है, वह बहिन वहाँ से आयी हैं। फिर अनुभव में से कहती हैं। आहाहा! अनभ्यास से कठिन लगे परन्तु इसका अभ्यास और रुचि करे तो यह वस्तु अपने घर की है। घर की रुचि करे तो उपयोग वहाँ ढले बिना नहीं रहता। ऐसा कहा न?

मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है। देखा! रुचि अन्यत्र रहे... आहाहा! पैसा, पुत्र, पुत्रियाँ, शरीर, इज्जत, कीर्ति, पैसा, भण्डार, सन्दूक, मकान में कहीं भी रुचि रुके और उपयोग अन्दर में झुके, यह नहीं होगा, प्रभु! नहीं झुकेगा। मीठालालजी! आहाहा! इस पुरुषार्थ को अन्दर में झुकाना हो तो पहले रुचि कर। यह एक चीज़, वह महाप्रभु चैतन्य है। अतीन्द्रिय आनन्द का दल है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। अरे! आकाश के प्रदेश की संख्या से उसमें अनन्त गुण का गोदाम प्रभु है। आहाहा! अरे! कैसे जँचे?

यह मुम्बई में केसर के और बादाम के बड़े गोदाम होते हैं न? जब हम माल लेने आते थे, (संवत्) १९६६, ६७, ६८ की बातें हैं। पालेज में दुकान थी न? है न अभी

दुकान है। पालेज में दुकान का माल लेने आते, तब केसर के डिब्बे लेने गये थे। गोदाम में हजारों केशर के डिब्बे भरे थे। हजारों बड़े डिब्बे केसर के थे। बहुत वर्ष हो गये। यह जैसे अन्दर केशर के डिब्बे भरे हैं, वैसे इस भगवान में अनन्त आनन्द, शान्ति के डिब्बे भरे हैं। यह अनन्त गुण के कमरे भरे हैं, प्रभु! अरे! कैसे जँचे? अनन्त-अनन्त गुण के रत्न के कमरे अन्दर हैं। यदि उसकी रुचि करे तो तेरा वर्तमान उपयोग वहाँ गये बिना रहेगा नहीं। आहाहा! मार्ग को प्राप्त करने की **विधि का यह क्रम है।** इसके बिना दूसरा ऐसा करते हैं और व्रत करे, भक्ति करे, पूजा करें, दया, दान करें, फिर समकित होगा, इस बात में दम नहीं है। प्रभु! कठिन पड़ेगा, भाई! आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, नाथ! परन्तु वस्तु तो जो हो वह आवे। बापू! दूसरा कहाँ से आवे? यह ३६। ३६ हुआ न? आहाहा!

अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके 'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता॥ ४५॥

अब ४५। आहाहा! **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान।** भारी कठिन। यह बहिन के वचन हैं। राग और पुण्य-पाप के भाव ऊपर-ऊपर मैल है। उसे जाननेवाली पर्याय भी ऊपर-ऊपर है। उस पर्याय का तल इस ओर में तल-भोंयरा, तल वह गहरा है। शरीर, वाणी, मन तो कहीं उसके कारण से रहे। उनके कारण से काम हो और उनके काल में वे छूट जाएँगे। यहाँ तो अन्दर में पर्याय जो है—अवस्था जीव की—उस पर्याय को तल में तल-ध्रुव ध्रुव भरा है। एक समय की पर्याय... भाषा तो सादी है परन्तु माल (भरा है)। क्या हो? आहाहा! यह वर्तमान जो पर्याय जानने का काम करती है न? वह क्षणिक दशा है। उस क्षणिक दशा को अन्तर जो ध्रुव पड़ा है, वह उसका तलिया है। है?

अन्तर का तल खोजकर... भगवान अन्दर ध्रुव है। एक समय की पर्याय जितना नहीं है। यह पुण्य और पाप के राग जितना तो नहीं, वह तो इसमें है ही नहीं। आहाहा! परन्तु इसकी एक समय की जो राग को जाननेवाली वर्तमान ज्ञान की प्रगट दशा है, उतना यह आत्मा नहीं है। वह प्रगट दशा जो ज्ञान की विचारधारा चलती है पलटती, उस पलटती पर्याय को तल में-अन्दर में... आहाहा! पर्याय के अन्दर में तल अर्थात् ध्रुव अन्दर पड़ा है।

अन्तर का तल खोजकर... आहाहा! भगवान एक समय की पर्याय में पहिचानने का जो तल है। त्रिकाली तत्त्व जो ज्ञायक का-आनन्द का सागर, उसके तल को तल में ध्रुव को खोजकर **आत्मा को पहिचान**। अरे.. अरे..! ऐसी बातें हैं। अब इसमें निवृत्ति कहाँ मिले? धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। छह-आठ घण्टे नींद में जाते हैं। छह-आठ घण्टे धन्धे में जाते हैं। दो-चार स्त्री-पुत्र को प्रसन्न रखने में जाते हैं। अरेरर! समय जाता है, प्रभु! एकाध घण्टा मिले तो सुनने जाए, वहाँ कुछ उल्टा ही रास्ता सुनने को मिले। तुम यह व्रत करो और तपस्या करो और भक्ति करो और होगा। यह तो सब उल्टा रास्ता है, भाई!

यहाँ तो वर्तमान ज्ञान की जो दशा... आहाहा! यह ध्रुव चीज़ जो शाश्वत् है, उसमें यह वर्तमान पर्याय ऊपर तैरती है। पानी की तरंग जो उठती है, वह पानी में गिरती नहीं। खड़ी है वह, हों! पानी की जो तरंग है, वह अन्दर पानी के दल का वह नहीं है और दल में वह तरंग नहीं है और उस तरंग में पानी का दल आया नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! इसी प्रकार आत्मा की ज्ञान की वर्तमान पर्याय जो जानने का काम पलटते-पलटते करती है। पलटती अवस्था। उस अवस्था को तल में ले जा, कहते हैं। उस पर्याय के पास ध्रुवतत्त्व भगवान स्थित है। अन्तर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द है। आहाहा! उसके तल में जाकर खोज कर (कि) वह कौन है?

अन्तर का तल खोजकर... तल में खोजकर त-ता आया। *दोनों त-ता। **अन्तर का तल खोजकर आत्मा को पहिचान। शुभपरिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके...** आहाहा! शुभपरिणाम करे जरा दया के, दान के, भक्ति के; (उसका) पुरुषार्थ करके '**मैंने बहुत किया है**'... ऐसा रहने दे, प्रभु! आहाहा! थोड़ी सी जहाँ दया पालन की,

---

* गुजराती भाषा में 'खोजकर' को तपासकर कहते हैं; इसलिए यहाँ गुरुदेवश्री ने 'दोनों त-ता'—यह शब्द प्रयोग किया है।

व्रत लिये, ब्रह्मचर्य शरीर से पालन किया, वह तो सब शुभभाव है, वह शुभभाव करके इसने ऐसा माना (कि) मैंने बहुत किया। जो शुभराग है, पुण्य है, प्रभु! उस पुण्य के पीछे, पुण्य के भाव को प्रभु स्पर्शा नहीं है। वे पुण्य के भाव प्रभु को छूते नहीं हैं। अन्दर चैतन्य ध्रुवसत्ता है। अनादि-अनन्त वस्तु है, प्रभु! है, उसकी आदि नहीं होती; है, उसका नाश नहीं होता; है, उसके स्वभाव से वर्तमान में खाली नहीं होता। समझ में आया कुछ इसमें? आहाहा!

कहते हैं, ऐसी थोड़ी धारणा की जानने की, या किंचित् शुभभाव किये। देवदर्शन किये, सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, वह तो शुभभाव है। वह कुछ वस्तु नहीं है, बापू! **'मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** आहाहा! इसे आगे जाना चाहिए अन्तर में, (उसके बदले) यह वहाँ अटक गया। आहाहा! स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान-धन्धा छोड़ा, इतना किया हमने! क्या किया है? बापू! एक तो प्रभु आत्मा में पर के त्याग और ग्रहण से शून्य उसका स्वभाव है। इसलिए पर का त्याग करूँ, यह मान्यता झूठी है। यह क्या कहा? त्यागोपादानशून्यत्व शक्ति, ऐसा सैंतालीस शक्तियों में एक गुण है।

आत्मा एक प्रभु है, उसमें अनन्त संख्यावाले गुण हैं। उसमें एक गुण ऐसा है कि त्यागोपादानशून्यत्व। पर का त्याग और पर का ग्रहण, उससे वह शून्य है। कभी पर को ग्रहण नहीं किया और पर को छोड़ता नहीं। वह तो पर से अत्यन्त भिन्न ही है। आहाहा! उसमें जहाँ थोड़ा बाहर का छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा कि हमने बहुत किया। अरे... बापू! कुछ नहीं किया, भाई! आहाहा! ऐसी बातें हैं। ए... चिमनभाई!

जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। आहाहा! **अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है;...** आहाहा! मुझे इतना आया, मुझे इतना बोलना आता है। बापू! यह क्या चीज़ है? यह तो परलक्षी ज्ञान धारणा का है। आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! उस परलक्षी ज्ञान के भाव के लक्ष्य को छोड़कर अन्तर चैतन्यमूर्ति की ओर लक्ष्य करके जो ज्ञान हो, उसे भगवान ज्ञान कहते हैं और वह ज्ञान भव के अन्त का कारण है। बाकी पर का ज्ञान-धारणा, वह कोई भव के अन्त का कारण नहीं है। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१२) चैत्र कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक १९-४-१९७९
वचनामृत - ४५, ६० प्रवचन-७६५ (DVD 17)

वचनामृत, ४५ बोल। फिर से। थोड़ा चला है। बहिन की भाषा सादी है परन्तु शैली अन्दर आत्मा-ध्रुव क्या है, उसे... बात है। आहाहा! यह है न? **अन्तर का तल खोजकर...** आहाहा! अर्थात् क्या? आत्मा इस शरीर, वाणी, मन से तो कोई भिन्न चीज़ है। पुण्य और पाप के भाव हैं, उनसे यह अत्यन्त भिन्न चीज़ है परन्तु उस राग को जाननेवाली जो ज्ञान की वर्तमान अवस्था, उससे भी अन्तर में तत्त्व अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! उस तल को खोजकर। सूक्ष्म बात है, प्रभु!

अन्तर का तल खोजकर... अन्दर में ध्रुव को देखकर। देखनेवाली है पर्याय। परन्तु देखती है वह ध्रुवतल। जिसका तल अन्दर, अन्दर दल अनन्त-अनन्त गुण का दल जो है, उसके अन्तर में तल खोजकर। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन प्रथम पहले की बात है, भाई! **आत्मा को पहिचान।** अन्तर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ तल में अर्थात् एक समय की वर्तमान पर्याय के समीप में अन्तर्मुख उस तल को खोज। **आत्मा को पहिचान।**

शुभपरिणाम,... कुछ हुए और **धारणा...** कुछ हुई। शास्त्र के जानपने की कुछ धारणा हुई। **आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके...** यद्यपि वह पुरुषार्थ यथार्थ नहीं है परन्तु थोड़ा वह स्वयं ने माना है कि मैंने पुरुषार्थ किया। शुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि; और शास्त्र के कुछ भंगभेद भी सीखा। आहाहा! **'मैंने बहुत किया है'...** उसे अनादि से ऐसा हो जाता है कि मैंने बहुत किया। उसे पूरा भगवान तल में रह जाता है, इसकी उसे खबर नहीं है। आहाहा! मैंने बहुत किया, ऐसा कहे। शुभभाव किये, शास्त्र की बात को मैंने धारण की है, धारणा करके मैं कह सकता हूँ, ऐसी बात में अटककर। आहाहा!

जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। आहाहा! जहाँ जाना है, वहाँ नजर नहीं करता। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! पर्याय की एक समय की जो दशा, उसकी

अनादि से परसन्मुख की दिशा, पर्याय की दशा परसन्मुख की दिशा की ओर झुकी हुई है। उस पर्याय की दशा अन्तर की दशा सन्मुख झुकानी है। अन्तर्मुख दिशा सन्मुख झुकानी है। अरे! ऐसी बातें हैं। ऐसा न करके पर्याय में कुछ शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की, कुछ शास्त्र के धारणा के बोल धारण किये। वहाँ ऐसा मानकर, कि मैंने बहुत किया। **जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।** अटकने के बोल अनन्त और छूटने का बोल एक। क्या कहा? ऐसे बाहर में अटकने के बोल अनन्त। अनेक प्रकार के शुभराग, अनेक प्रकार के अशुभराग, अनेक प्रकार की शास्त्र की धारणा की बातें, ऐसे बाहर की ओर के झुकने के प्रकार अनन्त हैं। अन्तर में झुकने का एक ही प्रकार है। आहाहा! यह वहाँ न जाकर, वहाँ (बाहर में) अटक जाता है।

अज्ञानी को जरा कुछ आ जाए, धारणा से याद रह जाए,... धारणा से। अनुभव से नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। **वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;...** आहाहा! ये शुभराग और शास्त्र की धारणा की बात से अगाध चैतन्य भिन्न अन्दर है। जिसका तल देखने में तो अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! जिसे पहलू बदलना है। जो ऐसे पर्याय में राग और परसन्मुख के पक्ष में अनादि से खड़ा है, उसे ऐसे झुकाना है, प्रभु! उसे पहलू बदलना है। वह पहलू न बदलकर वहाँ ही अटका रहता है और अभिमान हो जाता है। आहाहा!

वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;... आहाहा! अपार चैतन्य प्रभु, जिसकी शक्ति में गुण की संख्या का तो पार नहीं, परन्तु जिसके एक-एक गुण की अनन्त पर्यायें हों और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप, ऐसी अनन्त-अनन्त एक गुण की ताकत अनन्त। ऐसे अनन्त गुण का अगाध तत्त्व भगवान, उसके सन्मुख जाने का प्रयत्न नहीं करता। आहाहा! है? **वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है;...** मानो कि कोई शुभभाव किया (और) कोई धारणा हुई, इसलिए हुआ अपने को। आहाहा! प्रभु! इस धारणा और शुभराग से अगाध स्वभाव अन्दर भगवान पूर्णानन्द के नाथ को खोजने, अन्दर देखने की नजर नहीं की। आहाहा! इसलिए....

इसलिए वह बुद्धि के विकास आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है। अर्थात् शुभभाव में अटक जाता है और एक धारणा के ज्ञान में अटक जाता है। इससे उसे अगाध

ऐसा जो भगवान आत्मा... यह तो सादी भाषा है बहिन की तो। लड़कियों ने लिखा है, बोला गया है। चौंसठ लड़कियाँ बाल ब्रह्मचारी हैं। रात्रि में... बोला गया और उनका लिखा हुआ बाहर आया। आहाहा! प्रभु! तू अगाध शक्ति का धनी है, नाथ! तुझे एक शुभभाव और धारणा की दशा में तुझे अभिमान हो जाए और वहाँ तू रुके और मैंने बहुत किया, ऐसा मानने में आ जाए, (उसमें) अगाध तत्त्व भगवान है, वह रह जाता है। आहाहा! है? **आदि में सन्तुष्ट होकर अटक जाता है।** आहाहा!

ज्ञानी को... भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप ऐसा शुद्ध चैतन्यघन जिनस्वरूप की ओर का भाव न करके बुद्धि में रुक गया। ज्ञानी को ऐसा नहीं होता। **ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से...** पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... बापू! पूर्ण क्या कहना? आहाहा! पूर्णता के दो प्रकार हैं। एक वर्तमान पर्याय में पूर्ण दशा प्रगट हो, वह साध्य है और एक समय में भगवान पूर्ण है, वह ध्येय है। बात अलग प्रकार की है, बापू! दो प्रकार की पूर्णता आत्मा में है। एक तो पूर्ण पवित्र अर्थात् ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... पूर्ण स्वरूप है। ज्ञानी को ध्येय में पूर्ण स्वरूप है। दृष्टि का विषय जो ध्रुव है। वहाँ ज्ञानी की दृष्टि लग गयी है और इसलिए उसे पूर्णता के लक्ष्य के कारण, पूर्णता पर्याय में जब तक न आवे, तब तक स्वद्रव्य का आश्रय छोड़ता नहीं। आहाहा! ऐसा है। मार्ग तो ऐसा, भाई! आहाहा! अनन्त काल से कुछ न कुछ बहाने अटकने के अनन्त में अटककर रुक गया है। परन्तु अगाध स्वभाव जो भगवान आत्मा, (उसे पहिचाना नहीं)। आहाहा!

ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता। अर्थात् क्या? त्रिकाली अखण्डानन्द का नाथ जिसकी दृष्टि में आया समकिती को, (उसे) पर्याय में चार ज्ञान उघड़े और यथाख्यातचारित्र हो तो भी वह वहाँ अटकता नहीं है। आहाहा! जब तक पूर्ण केवलज्ञान अकम्पदशा आत्मा की पूरी न हो, तब तक साध्य के लक्ष्य से (आगे बढ़ता है)। साध्य का लक्ष्य है और द्रव्य का ध्येय है। त्रिकाली इसीलिए कहा था न।... प्रभु का मार्ग कोई अलग है।

अन्दर में भगवान पूर्णानन्द के नाथ का धर्मी को ध्येय है और प्रगट करने में पूर्ण केवलज्ञान का साध्य है। समझ में आया? आहाहा! धर्मी को उसकी दृष्टि में पूर्ण स्वरूप पूर्ण इदम्—पूरा चैतन्यद्रव्य जो है, वस्तु है, वह उसका ध्येय और वह उसका लक्ष्य है

और उसमें से प्रगट करना पूर्ण स्वरूप, वह उसका साध्य है। इसलिए थोड़ी दशा प्रगट हुई है, वहाँ वह सन्तुष्ट नहीं हो जाता। आहाहा!

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तो ऐसा कहा है, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में आता है और उसका ज्ञान तथा रमणता भी भले आंशिक आयी, परन्तु वह केवलज्ञान की अपेक्षा से अपने को तृणसमान जानता है। यह (अज्ञानी) तो अभी अन्तर के भान बिना की धारणा और शुभभाव में सन्तुष्ट होकर वहाँ अटककर खड़ा रहता है। तब धर्मी पूर्ण के ध्येय की दृष्टि पड़ी होने से जब तक पूर्ण न प्रगटे, तब तक अपूर्ण पर्याय को पामररूप से स्वयं उसे देखता है। आहाहा! पूर्ण प्रभु को प्रभुतारूप से देखता है और पर्याय को पामररूप से जानता है। मुझे तो अभी बहुत करना बाकी है। आहाहा! भाषा ऐसी सादी है परन्तु भाव जरा सूक्ष्म है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष्य होने से वह अंश में नहीं अटकता।** अंश अर्थात् प्रगट हुई दशा। भले सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, स्वरूपाचरण की एकाग्रता भी बढ़ी, तथापि वह वहाँ अटकता नहीं है। आहाहा! पूर्ण पर्याय प्रगट हो... वहाँ तो अटकता नहीं परन्तु पूर्ण पर्याय प्रगट हो, पूर्ण दशा प्रगट हो, केवलज्ञान प्रगट हो **तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है?** आहाहा! तीन लोक का नाथ अन्दर सर्वज्ञस्वभाव से विराजमान है, उसकी पर्याय में सर्वज्ञता आयी, वह कहीं नयी चीज़ नहीं है। वह तो है, वह अन्दर से प्रगट हुआ है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! वीतराग का उपदेश अन्तर का बहुत सूक्ष्म बात है। लोगों को बाहर से मिले और वहाँ रुककर वहीं का वहीं जीवन व्यतीत करते हैं। जीवन चला जाता है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मी को **पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था, सो प्रगट हुआ, इसमें नया क्या है?** आहाहा! अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का मेरा स्वभाव, अनन्त शान्ति और अनन्त पवित्रता, अनन्त स्वच्छता, स्वच्छता—ऐसा जो प्रभु का स्वभाव, वह तो पर्याय में मेरे द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ। वह तो था, वह प्रगट हुआ, उसमें कुछ नवीन नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! बहिन तो बहिनों-लड़कियों में ऐसा बोले हैं। यह अन्तर की बातें हैं। आहाहा!

तो भी स्वभाव था, सो... स्वभाव था, सो प्रगट हुआ,... वजन यहाँ है। सर्वज्ञ को अनन्त आनन्द दशा में प्रगटे तो भी वह स्वभाव था, था, वह प्रगट हुआ है। वह विद्यमान चीज़ सत् की सत्ता, अपने में सत् की सत्ता पूर्ण थी, वह पर्याय में पूर्ण आयी है। वह था, वह आया है। उसमें कुछ उसकी नवीनता ज्ञानी को विशेष नहीं लगती। आहाहा! समझ में आया?

नया क्या है? इसलिए ज्ञानी को अभिमान नहीं होता। इस कारण से। आहाहा! भले चौथे गुणस्थान में समकिती हो। बालक आठ वर्ष की कन्या भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है। ऐसा ही अन्दर... तत्त्व है न। यह शरीर की दशा, राग की दशा, वह तो अत्यन्त भिन्न है। उसे जहाँ यह भान-स्वसंवेदन होता है, तब आगे बढ़ने पर पूर्ण दशा होती है... स्त्री के शरीर को तो पूर्ण नहीं होता परन्तु पुरुष का शरीर हो और पुरुष को पूर्ण होवे तो भी था वह आया है। कुएँ में था, वह हौज में आया है। अवेड़ा को क्या कहते हैं तुम्हारे? अवेड़ा कहते हैं न अपने? क्या कहते हैं मीठालाल तुम्हारे? कुएँ में से... इसी प्रकार अन्दर भगवान पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता उसरूप तो था। उसरूप तो है, उसरूप है, वह उसका स्वरूप है। था, वह प्रगट हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं, धीरुभाई! आहाहा!

इसलिए धर्मी को अभिमान (नहीं होता), पर्याय में पूर्ण हो तो भी वहाँ उसे अभिमान नहीं होता। वह तो पूर्ण दशा मेरा नाथ सत्ता में पूर्णरूप से है, उसके अस्तित्व में, उसकी... आहाहा! मौजूदगी में, मेरी मौजूदगी का जो तत्त्व है, उसमें तो पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, स्वच्छता, प्रभुता पड़ी थी। उस मौजूदगी में से था, उसमें से यह तो आया है। आहाहा! ऐसा कहने पर राग से तो वह हुआ-आया नहीं, परन्तु पूर्ण पर्याय मोक्षमार्ग से भी आयी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा?

केवलज्ञान होता है, वह राग से तो होता नहीं परन्तु मोक्ष का जो मार्ग है, उससे भी केवलज्ञान नहीं होता। वह तो अन्दर था, वह वहाँ से आया है। आहाहा! अब ऐसी बातें। उसमें यह मुम्बई नगरी। भगवान आत्मा कहाँ मुम्बई नगरी का है। वह जहाँ राग का भी नहीं, भगवान की भक्ति और भगवान के स्मरण का राग, उसका भी जहाँ वह नहीं तो फिर नगरी-फगरी का आत्मा कहाँ से आवे? आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा जिसे दृष्टि में,

अनुभव में आया, उसे पर्याय में पूर्णता आती है, तथापि था, वह आया है। विद्यमान है, वह पर्याय में विद्यमान दशा प्रगट हुई है; इसलिए ज्ञानी को उसका अभिमान नहीं होता। यह ४५।

अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भटकते-भटकते, सुख की लालसा में विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखों को सहता रहा है। कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा, कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए वहाँ से अटका और गिरा। इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। पुण्योदय से यह देह प्राप्त हुआ, यह दशा प्राप्त हुई, ऐसे सत्पुरुष का योग मिला; अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे॥ ६०॥

६०? आहाहा! ६०, **अनादि काल से अज्ञानी जीव...** जिसकी आदि नहीं, जिसकी शुरुआत नहीं—ऐसी चीज़ भी है और उसका अज्ञान भी अनादि का है। दोनों अनादि का है। यह क्या कहा? वस्तु जो है महा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर—ऐसा जो पूर्ण प्रभु, वह भी अनादि का है और उसकी वर्तमान पर्याय में भूल भी अनादि की है। वह **अनादि काल से अज्ञानी जीव संसार में भटकते-भटकते,...** आहाहा! **सुख की लालसा में...** सुख की लालसा में मानो बाहर में कहीं सुख है। आहाहा! मृग की नाभि में कस्तूरी, उसकी उसे कीमत नहीं। शिकारी जब उसे चीर डालता है, तब कस्तूरी बाहर आती है और उस कस्तूरी को वह ले जाता है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का सागर पड़ा है। आहाहा! उसकी खबर नहीं और अनादि जीव संसार में भ्रमता हुआ सुख की लालसा; सुख है अन्दर। हिरण की नाभि में कस्तूरी परन्तु उसकी गन्ध आने पर मानो कहीं वन में से आती होगी, (ऐसा मानकर) वह वन में कस्तूरी की गन्ध को ढूँढ़ते हुए जिन्दगी खो बैठता है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा में आनन्द और सुख अन्दर होने पर भी अज्ञानी सुख की लालसा में **विषयों के पीछे दौड़ते-दौड़ते,...** आहाहा! जहाँ सुख है, वहाँ अन्दर जाता नहीं और पाँच इन्द्रियों के विषय... आहाहा! सवेरे तो यहाँ तक आया था कि भगवान की वाणी और भगवान स्वयं इन्द्रिय का विषय है। इन्द्रिय का विषय है; इसलिए उन्हें इन्द्रिय कहा है। आहाहा! भगवान अनीन्द्रिय आत्मा की अपेक्षा से सब चीज़ें इन्द्रिय में गिनने में आयी हैं क्योंकि उनके लक्ष्य से आत्मा में इन्द्रियपना प्रगट नहीं होता। इसलिए कहते हैं... आहाहा!

सुख की लालसा... शब्दों में, इज्जत में सुख है। कोई बाहर की महिमा की पदवी मिले, उसमें सुख है। शरीर की सुन्दरता की... आहाहा! उत्पत्ति में कुछ सुख है। कुटुम्ब और कबीला की संख्या बढ़े, इससे उसमें कहीं सुख है। पैसे की संख्या बढ़े, उसमें सुख है। आहाहा! ऐसी विषयों की लालसा में विषयों के पीछे दौड़ते... दौड़ते... आहाहा! यह आया था न उसमें? मोहरूपी भूत तृष्णारूपी... तृष्णा फटी है और विषय का घेरा डालता है। मेरा प्रभु अन्दर सुख का सागर है। आहाहा! साधु होकर भी पंच महाव्रत के परिणाम का भी क्रिया में अटका और उसमें से मानो सुख आयेगा, वह भी एक विषय है।

पंच महाव्रत के परिणाम भी प्रभु, पुरुषार्थसिद्धिउपाय में उन्हें राग कहा है और यह राग है, वह स्वरूप जो अहिंसक त्रिकाली चिदानन्द है, उसमें यह राग होता है, वहाँ स्वरूप का घात होता है। ऐसी बातें हैं। राग को हिंसा कहा है। दया के राग को हिंसा कहा है। क्योंकि राग है न? और प्रभु तो वीतरागमूर्ति चैतन्यस्वरूप है। वह राग में अटकने से... आहाहा! उसके **पीछे दौड़ते-दौड़ते, अनन्त दुःखों को सहता रहा है।** आहाहा! अनादि-अनादि काल से...

एक बार कहा था कि अनन्त काल में मनुष्य का भव मिले तो भी अनन्त बार मनुष्य भव मिल गये हैं। उससे नरक के भव असंख्यगुने अनन्त मिल गये हैं। आहाहा! परमात्मा के ज्ञान में आया है कि जो मनुष्य की संख्या अनन्त भव किये, उसकी अपेक्षा असंख्यगुणी अनन्त संख्या नरक की हुई है। आहाहा! उसकी अपेक्षा असंख्यगुने अनन्त स्वर्ग के भव किये हैं। भगवान केवलज्ञान से देखकर वाणी में आया है, प्रभु! तूने जो नरक की संख्या अनन्त भव किये, उसकी अपेक्षा असंख्यगुने अनन्त स्वर्ग के किये हैं।

अब यहाँ जहाँ पाँच-पच्चीस लाख मिले, वहाँ तो मानो ओहो! क्या हो गया और यह हो गया। मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाए। स्वर्ग में अनन्त बार (गया)। नरक की संख्या अभी अनन्त है। उसकी अपेक्षा स्वर्ग के भवों की संख्या असंख्यगुणा अनन्त भव किये हैं।

यह यहाँ कहते हैं। वह भी पर में झनखना मारता हुआ... वहाँ भी इन्द्राणी में सुख और स्वर्ग में सुख। आहाहा! हजारों वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। उसे यह रोटियाँ-रोटियाँ उसे नहीं बनानी पड़ती। चूल्हा नहीं है, वहाँ अग्नि नहीं है। हजार वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरता है, तथापि उस विषय की लालसा में पीछे दौड़ता है। अमृत का सागर अन्दर पड़ा है, उसे अमृतरूप न मानकर, वह कण्ठ में से अमृत झरता है, वहाँ सन्तुष्ट हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार) ९६ गाथा में तो ऐसा भी कहा है। समयसार की ९६ गाथा में। पूर्ण अमृत का पूर, पूर्ण अमृत का सागर विज्ञानघन इस मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। अभी मृतक कलेवर, हों! अभी मृतक कलेवर है, भाई! यह तो। ९६ गाथा में ऐसा है। अमृतरूप आत्मा। उस कण्ठ में अमृत झरता है स्वर्ग (के देव) को वह तो जहर है। आहाहा! और उसकी स्थिति एक सागरोपम होवे तो पखवाड़े में एक श्वास एक ऊँचा-नीचा होता है। एक पखवाड़े में एक श्वास होता है और हजार वर्ष में एक बार अमृत झरता है। परन्तु वह जहर का प्याला है, जिसे अमृत कहा। आहाहा! उसमें वह सन्तुष्ट होकर विषय की लालसा में कहाँ-कहाँ दौड़ता है। अन्दर अमृत का सागर भगवान आत्मा... आहाहा! उसकी उसे महिमा और महत्ता सुनने में आयी होने पर भी उसे जँची नहीं। मेरी महत्ता के समक्ष सिद्ध की पर्याय की भी कीमत नहीं है। आहाहा! सिद्ध की पर्याय तो एक समय की अवस्था है और ऐसी अनन्त अवस्था का पिण्ड, वह आत्मा है। आहाहा! ऐसा वह भगवान आत्मा विषय के पीछे दौड़ता हुआ **अनन्त दुःखों को सहता रहा है**। आहाहा!

कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले... सुनानेवाले अनन्त भव हुए तो मिले हैं। **तो शंका रखकर अटक गया,...** शंका (की)। ऐसा यह होगा? इतनी बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, इसमें कुछ दिखता था नहीं और बड़ा भगवान है, भगवान ऐसा है।

बतलानेवाले मिले... आहाहा! **कभी उसे सच्चा सुख बतलानेवाले मिले तो शंका रखकर अटक गया,...** वह कहे, कहे वे बातें। अन्दर में सुख होवे तो हमें ज्ञात न हो? क्यों वेदन में नहीं आता? अन्दर में सुख है, सुख है तो कुछ उसका आंशिक वेदन तो होना चाहिए या नहीं? परन्तु वेदन तूने कब नजर वहाँ की है? जहाँ है, वहाँ भरती में भरोसा, उस भरती का तुझे भरोसा आया नहीं। और खाली जो राग और पर्याय, उसके भरोसे में भ्रम रहा है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चा सुख बतलानेवाले की उपेक्षा करके...** यह बड़े पुरुष बातें करते हैं परन्तु अपने लिये कुछ ऐसा होगा? आहाहा! ऐसा करके भी अवगणना कर डाली। ऐसा आत्मा वर्णन करते हैं परन्तु यहाँ तो कुछ दिखता तो नहीं न! प्रभु! दिखता नहीं—ऐसा निर्णय किस भूमिका में किया? जिसकी सत्ता में 'दिखता नहीं'—ऐसा निर्णय होता है, वह सत्ता प्रभु की-आत्मा की है। आहाहा! मैं नहीं, मैं नहीं। कहाँ निर्णय किसमें तूने किया? यह मैं हूँ, उसमें मैं नहीं—ऐसा निर्णय किया है। आहाहा! समझ में आया? मुझे कुछ खबर पड़ती नहीं। यह निर्णय तूने किसमें किया? यह जो निर्णय किया, वह सत्ता चैतन्य की है। आहाहा! परन्तु उस ओर का पहलू बदला नहीं, पहलू बदलता नहीं। बदले बिना पहलू की चीज़ जिस पहलू में पड़ी है, (वह दिखे कहाँ से)? पर्याय के पहलू में चीज़ पड़ी है, इस ओर पर्याय के पहलू में राग है तथा उस ओर पर्याय के पहलू में अन्दर में प्रभु है। आहाहा! ऐसा कोई बतानेवाले मिले तो अवगणना की। बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, ऐसा करके निकाल डाला। आहाहा! है? आहाहा!

एक जवेरी था। बहुत करोड़ों हीरे-माणिक का जवाहरात। उसमें एक व्यक्ति वह जवाहरात लेने आया, परन्तु लेने आया, वह कुछ मूल जवाहरात लेने नहीं आया था, मूल तो चोर था। इसलिए वह जवाहरात बताने के लिये मनुष्य था वह बताने लगा। वहाँ नजर गयी, वहाँ एक बड़ा जवाहरात लगा हाथ में मोम लेकर आया हुआ था मोम और साथ में पटिया होगा, हीरा ऐसे बताते थे पाट के ऊपर। ऐसे ऊँचे में ऊँचा हीरा जहाँ नजर में पड़ा, वहाँ उसकी नजर फेर हो गयी, इसलिए वह मोम था वह साथ में पाट थी न पाट? उसमें मोम चिपकाकर उस हीरे को चिपका दिया। देखो! यह नजर फेर से क्या हो गया? दिया

नहीं अभी। वहाँ चिपका कर रखा। ऐसे देखता है तो कहे, भाई! यह हीरा कहाँ गया? जवेरी कहे परन्तु यह हीरा भी किसमें गया? भाई! तूने जेब में लिया है? खोजो न, बापू! कुछ नहीं मिलता। आहाहा! और पन्द्रह दिन महीने और दस हजार रुपये रोकड़ लेकर आया तथा वह हीरा था दस लाख का। भाई! उस दिन तुम्हारा देख गया था परन्तु मुझे यह एक हीरा दो। यह दस हजार का। वह दस हजार देकर जहाँ हीरा लेता है, वहाँ उसकी नजर फेर (हुई), वहाँ वह चिपका था न, वहाँ से उठा लिया। पाट में नीचे चिपका था।

इस नजर फेर से आत्मा कहीं चिपका है। राग और पुण्य की पर्याय में प्रेम में पड़ा है। हीरा वहाँ चिपटा है। उसे हीरे को लेने के लिये चाहिए नजरें, वह नजरें नहीं की। आहाहा! वह क्रियाकाण्ड के विचारों के विकल्प में रुककर... आहाहा! **बतलानेवाले की उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा,...** आहाहा! भले वे कहते हों, वहाँ रख ऐसा। ऐसा कहाँ है? यहाँ हमें पैसे में मजा आता है। कहो, रमणीकभाई! सत्तर लाख का मकान, पाँच-सात करोड़ रुपये, आमदनी कितने लाखों की हो, अब वह सुखी नहीं कहलायेगा?

एक व्यक्ति आया था आनन्दभाई का रिश्तेदार कोई एक बार बहुत वर्ष पहले (आया था)। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं, कहे। सोनगढ़। यह वे वढ़वाणवाले क्या कहलाते हैं? चूडगर.. चूड़गर। हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। वह मानो कि यहाँ आते हैं, नाराणभाई और सब। मैंने कहा, भाई! सुखी की व्याख्या क्या? सुखी की व्याख्या क्या—इसका स्पष्टीकरण कर। यह पैसा, इज्जत, ऐई! जयन्तीभाई! चूड़गर था न? व्याख्या क्या, बापू! तू सुखी की करता है? कि पैसा (रुपये) पाँच-सात-दस लाख पैदा हो, करोड़-दो करोड़ रुपये हैं। परिवार, तीन भाई और सब हीरा और... यह और यह और यह... अरे! प्रभु! परन्तु यह सुख की व्याख्या है? वहाँ सुख है? उसमें सुख है? जहाँ है, वहाँ जाता नहीं और जिसमें नहीं है, वहाँ झपट्टे मारा करता है ऐसे और ऐसे। इन्द्रियों में और स्पर्श में और... धूल में और धूल में। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

बतलानेवाले की उपेक्षा करके अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करने से वंचित रहा,... यह अटकने के साधन ऐसे है, कहते हैं। आहाहा! **कभी पुरुषार्थ किये बिना अटका**

रहा, कभी पुरुषार्थ किया भी तो थोड़े से पुरुषार्थ के लिए वहाँ से अटका और गिरा। थोड़ा कुछ पुरुषार्थ किया शुभ का और कुछ जानपने का, वहाँ से अटका और वहाँ से गिरा। आहाहा! **इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका।** और संसार में-चौरासी के अवतार में भटका। आहाहा!

पुण्योदय से यह देह प्राप्त हुआ,... अब कहते हैं कि बापू! तुझे देह यह मनुष्य का अनन्त भव में मिला। **यह दशा प्राप्त हुई,...** आहाहा! अर्थात् कि सुनने तक की दशा को प्राप्त हुआ, ऐसा। **ऐसे सत्पुरुष का योग मिला;...** वास्तविक सर्वज्ञ का कहा हुआ तत्त्व तुझे सुनने को मिला। आहाहा! तीन लोक के नाथ, जिनकी हाजिरी में इन्द्र बड़े बत्तीस लाख विमान के स्वामी, वे भगवान की वाणी सुनने के लिये, कुत्ती का बच्चा हो, ऐसे सुनने बैठते हैं। ऐसी जो वाणी तीन लोक के नाथ की, जहाँ एक भवतारी एक भव में मोक्ष जानेवाले शकेन्द्र है पहले देवलोक का इन्द्र। एक भव में मोक्ष जानेवाला है। उसकी पटरानी है, करोड़ों में एक रानी, वह भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। शास्त्र में लेख है। ऐसे भी भगवान की वाणी सुनने आते हैं। ऐसा मिला वहाँ... आहाहा!

इस प्रकार जीव अपना स्वरूप प्राप्त करने में अनन्त बार अटका। अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा... आहाहा! ऐसे अवसर में अवसर चूका। आहाहा! **तो किस भव में करेगा?** ऐसे भव में यदि भाई! ऐसा मनुष्यदेह मिला और सच्ची बात वीतराग के अन्तर-घर की सुनने को मिले। यहाँ तक आया, प्रभु! यदि यहाँ अभी नहीं करेगा तो प्रभु! तू कहाँ करेगा? आहाहा! क्यों?—कि तू तो अनादि अनन्त नित्य वस्तु है। देह नाश होगी, परन्तु तू तो अनन्त काल रहनेवाला है। भविष्य में तो अनन्त काल रहनेवाला है। कहाँ रहेगा? नाथ! यदि तेरी दृष्टि राग और पर्याय के ऊपर रहेगी तो भटकने में रहेगा अनन्त काल। आहाहा! रहने का तो है ही। देह छूटेगा तो रहेगा तो सही। देह छूटने पर भी ऐसा बोलते हैं न कि जीव गया। या जीव मर गया, ऐसा कहते हैं? यह वापस हुआ वह... जीव गया। गया तब कहीं है अवश्य या नहीं? आहाहा! ऐसे अनन्त बार ऐसा समय मिला, अब यदि यहाँ पुरुषार्थ न करे तो कहाँ करेगा? प्रभु! आहाहा! करना तो यह है और करने का तो यह है। आहाहा!

राग और पर्याय से भी भिन्न भगवान पूर्ण स्वरूप ही हूँ, परमेश्वर हूँ। आहाहा! ३८

गाथा में आता है न! अपने परमेश्वर को भूल गया था। ३८ गाथा में आता है। समयसार। अपने परमेश्वर को। अपना परमेश्वर। भगवान परमेश्वर उनके पास रहे। आहाहा! अपने परमेश्वर को भूल गया था। जैसे मुट्ठी में सोना दाँतून करते हुए सवेरे... सोना-बोना कुछ दाँत का या ऐसा हो, वह ऐसे रखा हो। भूल गया, कहाँ सोना है? ३८ गाथा में आता है। यह सोने का दाँत-बाँत होते हैं न कितने ही। उस समय निकाल डाले, मुँह साफ करना हो। ... वह क्या कहलाता है तुम्हारा? ओटलो टोडलो। भूल जाते हैं। उसमें रखा हो। भूल गया। कहाँ रखा? इसी प्रकार अनादि काल से तीन लोक का नाथ यहाँ प्रभु अन्दर विराजता है, परन्तु कहाँ गया मैं? कहाँ हूँ मैं? इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! यह कहते हैं।

अब यदि पुरुषार्थ नहीं करेगा तो किस भव में करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर;... तब कोई ऐसा कहता है कि क्रमबद्ध में होनेवाला होगा, वह होगा। एक ओर तुम क्रमबद्ध की व्याख्या करते हो और एक ओर पुरुषार्थ कर, ऐसा कहते हो। आहाहा! क्रमबद्ध अर्थात् जगत के पदार्थों की एक के बाद एक पुणी जैसे पुणी होती है और एक के बाद एक डोरा निकला ही करता है। इसी प्रकार आत्मा और जड़ में समय-समय की आयत अर्थात् लम्बी ऐसी क्रमबद्ध जिस समय में जहाँ पर्याय होनी है, वह हुआ ही करती है। ऐसा कहना और फिर पुरुषार्थ कर, (ऐसा) कहना। ऐसा कहते हैं। भाई! यह क्रमबद्ध है, इसका निर्णय करने जाए वहाँ ही अन्तर में पुरुषार्थ होता है। समझ में आया? आहाहा!

यह बात की थी, (संवत्) १९७२ में। ७२ के वर्ष में यह प्रश्न सम्प्रदाय में उठा था। ७२। कितने वर्ष हुए? ६३। ६३ वर्ष हुए। ७२ के वर्ष। कितने हुए? दीक्षा ६६ की, वहाँ ७३ कहाँ से लावे? ७० में तो दीक्षा और उसके पश्चात् ७२ में यह प्रश्न उठा। बड़ा प्रश्न उठा। भगवान ने देखा, वह होगा। केवली ने देखा, वह होगा। हम क्या पुरुषार्थ करेंगे? अपना पुरुषार्थ क्या काम आयेगा? प्रभु! कहा, तू ऐसा कहता है, तू सुन! भगवान ने देखा, वैसा होगा। वे भगवान कौन हैं? उनके अनन्त गुण में एक गुण की पर्याय ज्ञान की तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी एक गुण की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी जगत के अन्दर केवलज्ञान की पर्याय की सत्ता है। उसकी सत्ता है, वह

स्वीकार करने के पश्चात् उन्होंने देखा, वह होगा, उसकी बात है। उनकी सत्ता जगत में है, यह स्वीकार करने जहाँ जाता है, वहाँ सर्वज्ञस्वरूपी भगवान है, वहाँ उसकी दृष्टि जाती है, वह पुरुषार्थ है। आहाहा! कठिन बातें हैं। यह तो ७२ में हो गया। ७० में दीक्षा और ७२ में यह झगड़ा उठा था। एक दिन तो छोड़ दिया था, सम्प्रदाय छोड़ दिया था। मैं कहीं इसमें आ गया, इसलिए पकड़ा गया हूँ, ऐसा मत समझो। मुझे तो सत्य लगेगा वहाँ रहूँगा, बाकी मैं छोड़ दूँगा, सब छोड़ दूँगा। इस प्रकार जो तुम कहते हो, वह मुझे मान्य नहीं है।

भगवान ने देखा, तो भगवान जगत में है और उनके एक गुण की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को जाने, बापू! ऐसी एक समय की पर्याय की सत्ता का, अस्तित्व का स्वीकार कब होता है? कि उस पर्याय का स्वीकार ज्ञायक पर दृष्टि जाए, तब स्वीकार होता है। समझ में आया? परन्तु उस समय यह बात तो थी नहीं न। यह बात ही सम्प्रदाय में नहीं थी; इसलिए गड़बड़ उठी। यहाँ तो अन्दर से बात आयी थी। ७२ की बात है। पालियाद की बात है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

पुरुषार्थ कर;... एक ओर कहते हो कि क्रमसर भगवान ने देखा वैसा होगा और वह क्रमसर होगा तथा एक ओर कहे कि पुरुषार्थ कर। परन्तु उस क्रमसर में और केवली ने देखा होगा, उसकी सत्ता में, स्वीकार में पुरुषार्थ आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! इस जगत में सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा! केवलज्ञानी हैं, भाई! यह तो अन्तर से बातें आयी थीं। तब तो यह समयसार और शास्त्र देखे भी नहीं थे। यह तो ७८ में हाथ आये। अन्दर में से आया कि प्रभु! केवलज्ञानी इस जगत में हैं, सर्वज्ञ हैं, जिनकी एक गुण की एक पर्याय सर्वज्ञ है, ऐसी तो अनन्त पर्यायें दर्शन-चारित्र-आनन्द-शान्ति की है। एक समय में है, उसमें एक समय की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक को उन्हें स्पर्श किये बिना जानती है और वह सत्ता लोकालोक की है, इसलिए केवलज्ञानी जानते हैं, ऐसा भी नहीं है। वह सत्ता पर में रह गयी और केवलज्ञान की एक समय की पर्याय की सत्ता स्वयं से प्रगट हुई है। उस पर्याय को जब स्वीकार करने जाता है... आहाहा! तब राग का अकर्ता हो जाता है। अरे! पर्याय करूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि भी उड़ जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु! आहाहा! अर्थात् पुरुषार्थ कर में यह क्रमबद्ध और भगवान का देखा हुआ, ये दोनों आ जाते हैं। समझ में आया?

हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा सुयोग एवं सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। आहाहा! अभी तो कठिन पड़ गया है। सर्वत्र जहाँ हो वहाँ बस! व्रत करो और तप करो... परन्तु मूल समकित बिना व्रत कैसे और तप कैसा? जिसे अभी आत्मज्ञान का अनुभव नहीं, उसके व्रत और तप को तो बालव्रत और बालतप कहा गया है। आहाहा! तो मूल जो भूमिका है अभी तो उसे हाथ आयी नहीं और व्रत, तप, चारित्र उसे आ गया? आहाहा! अंक के बिना लाख और करोड़ शून्य करे, वह शून्य को संख्या में गिना नहीं जाता परन्तु एक एकड़ा लिखे तो एकदम संख्या में आ जाता है। आहाहा! उसी प्रकार लाख क्रियाकाण्ड करे, करोड़ करे परन्तु एक समय में भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द है, ऐसी अन्तर्मुख में प्रतीति करे... आहाहा! उसे अन्तर में आनन्द का स्वाद आये बिना नहीं रहता। उसके जन्म और मरण के छोर आ गये हैं—अन्त आ गया है। आहाहा! एकाध-दो भव भले कदाचित हो परन्तु केवली ने उसके भव नहीं देखे, कहा, ऐसा उस दिन कहा था। ७२ में, हों!

७२ के वर्ष, ६३ वर्ष पहले कहा था, जिसे सर्वज्ञ की पर्याय बैठी है, उसके भव सर्वज्ञ ने देखे ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? तीन लोक का नाथ वह परमात्मा स्वयं यह परमात्मा स्वयं है परन्तु वह तो एक ओर रखो परन्तु जो सत्ता में था, वह आया, ऐसी जो सत्ता सर्वज्ञ की है, है, जगत में है। वह अल्प ज्ञान के आश्रय से 'है', सर्वज्ञ की सत्ता नहीं स्वीकार की जाती, राग के आश्रय से तो नहीं स्वीकार की जाती परन्तु अल्पज्ञ जो पर्याय है, उसके आश्रय से सर्वज्ञ की सत्ता स्वीकार नहीं की जाती। समझ में आया? इस सर्वज्ञ की सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करने पर एक समय की पर्याय सर्वज्ञस्वभाव के सन्मुख अन्दर झुक जाती है। अन्दर सर्वज्ञस्वभाव है, वहाँ झुक जाती है। तब उसे सर्वज्ञ जगत में है, ऐसी सच्ची प्रतीति उसे होती है और भगवान में उसके भव देखे ही नहीं, कहा। उसके भव भगवान ने देखे नहीं। वह एक-दो भव में मोक्ष जानेवाला, उसे यह केवलज्ञान की पर्याय बैठी है। वह यहाँ कहते हैं।

सच्चा आत्मस्वरूप बतलानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे। आहाहा! ६० हुआ। समय हो गया।　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३ चैत्र कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक २०-४-१९७९
वचनामृत - ७९, ८१ प्रवचन-७६६ (DVD 17)

शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों, ऐसा दिखायी देता है परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर। यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके ऊपर आजा। चैतन्य द्रव्य निर्मल है। अनेक प्रकार के कर्म के उदय, सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं॥ ७९॥

७९ बोल है। बहिन तो रात्रि में कुछ थोड़ा बोले होंगे। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में रहती है। सूक्ष्म बात। जगत को जँचना कठिन है। उसमें रात्रि में लड़कियाँ बैठी होंगी और यह थोड़ा बोला गया होगा। उन्हें खबर नहीं कि यह लिख लेती हैं। वरना तो वे भी स्वयं लिखने से इनकार करे। परन्तु नौ लड़कियों ने लिख लिया और फिर हिम्मतभाई के हाथ में आया, यह बाहर आ गया। अभी उनकी स्थिति अलौकिक है! अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव के समक्ष उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ता। यहाँ इस अनुभव में आ गये और वाणी बोली गयी है।

शुद्धस्वरूप आत्मा में मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों, ऐसा (अज्ञानी को) दिखायी देता है... वास्तव में तो द्रव्य जो शुद्ध है, वह तो त्रिकाल निरावरण और शुद्ध है। ३२० गाथा। सूक्ष्म बात है। वह वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण है अखण्ड है, पर्याय का भेद भी द्रव्य में नहीं। एक है, अविनश्वर है, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। उसमें— आत्मा में प्रकाश नाम का गुण है, इसलिए उस द्रव्य को पकड़ने पर प्रत्यक्ष वेदन में— अनुभव में आवे, ऐसा उसमें गुण है। वह निज शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण ऐसा निज परमात्मद्रव्य, उसे यहाँ शुद्ध स्वरूप कहा है। सूक्ष्म बात है, भाई!

उसमें **मानों विकार अन्दर प्रविष्ट हो गये हों ऐसा...** अज्ञानी को दिखता है। आहाहा! जैसे स्फटिक निर्मल है, वैसे प्रभु तो निर्मलानन्द है। द्रव्य के स्वभाव को आवरण भी नहीं, अल्पता नहीं, विपरीतता अर्थात् विकार नहीं। वह तो पूर्ण शुद्ध स्वरूप है। आहाहा! उसमें मानो अज्ञानी को पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, शुभभाव मानो अन्दर में प्रवेश कर गये हों, ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। अथवा उस शुभभाव से मानो कि अन्दर कल्याण होगा, ऐसा उसे भासित होता है। उसे विकार अन्दर में प्रवेश कर गया, ऐसा भासित हुआ है। क्योंकि लाभ विकार से नहीं होता; आत्मा का लाभ स्वभाव से होता है। अलिंगग्रहण है न? लालचन्दभाई कहाँ गये? अलिंगग्रहण, छठवाँ बोल है।

आत्मा स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! व्यवहार के रसिक को यह बात बैठना कठिन पड़ती है। अनादि का व्यवहार का रस है न मिथ्यात्व का, इसलिए मानो कि अन्दर विकार के विकल्प हों पुण्य के, वे मानों अन्दर प्रवेश कर गये हों, ऐसा उसे दिखायी देता है परन्तु वास्तव में उस शुभराग और त्रिकाली द्रव्य के बीच साँध है-दरार है; एक नहीं। इसने माना है कि एक है। यह मान्यता भी द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई। आहाहा!

परन्तु भेदज्ञान प्रगट करने पर... ऐसा किसे दिखायी देता है परन्तु भेदज्ञान करने पर... अन्तर शुद्धस्वरूप भगवान परिपूर्ण परमात्मा, परमात्मा ही स्वयं है। शक्ति और स्वभावरूप से परमात्मा न होवे तो पर्याय में परमात्मपना आवे कहाँ से? आहाहा! ऐसा जो भगवान... भेदज्ञान करने पर **वे ज्ञानरूपी चैतन्य-दर्पण में...** ज्ञानरूपी चैतन्य दर्पण में **प्रतिबिम्बरूप हैं।** क्या कहते हैं? पुण्य के परिणाम उठें—दया, दान, व्रत, भक्ति शुभ, वह भी चैतन्य दर्पण में प्रतिबिम्बरूप है। अर्थात् राग राग में है और राग सम्बन्धी का चैतन्य में ज्ञान स्वयं से होता है। वह उसका प्रतिबिम्बरूप से दिखता है। जरा सूक्ष्म बात है।

राग है, इसलिए यहाँ राग का ज्ञान हुआ है, ऐसा भी नहीं है। राग से ज्ञान होता है, ऐसा तो नहीं, परन्तु ज्ञान जो यहाँ स्व-पर प्रकाशक भेदज्ञान होता है, वह स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की पर्याय... सूक्ष्म है, प्रभु! षट्कारकरूप से परिणति खड़ी होती है। वह राग है, उसे जानना—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु राग की अस्ति के काल में भेदज्ञान में स्व-परप्रकाशक ज्ञान की परिणति एक समय में षट्कारकरूप से स्वतन्त्र परिणमित होती है। अरे! ऐसा सूक्ष्म। यह क्या कहा?

यहाँ बहिन यह कहना चाहती हैं। **चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं।** अर्थात् वह तो दिखता है। चैतन्य में राग दिखता है—ऐसा कहना, वह भी अभी व्यवहार है। आहाहा! राग के कारण ज्ञान तो नहीं होता, परन्तु राग है; इसलिए उसका—राग का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। वह तो उस काल में स्व-परप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव होने से उस समय की ज्ञान की परिणति अर्थात् पर्याय षट्कारकरूप से स्वतन्त्र परिणमती है। जिसे राग की तो अपेक्षा नहीं परन्तु जिसे अन्दर द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं। सूक्ष्म प्रभु! मार्ग तो सूक्ष्म है, भाई! वीतराग परमात्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

कहा था न उस दिन, नहीं? तेईस वर्ष पहले (कि) एक समय की पर्याय में जो विकार होता है; विकार—मिथ्यात्व का, राग का, द्वेष का एक समय की पर्याय में वह... वर्णीजी के साथ बड़ी चर्चा हुई थी। नहीं बैठी। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! कहा, यह राग और मिथ्यात्व के परिणाम एक समय में होते हैं, उन्हें कर्म के निमित्त की अपेक्षा तो नहीं परन्तु उस विकार को द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। क्योंकि द्रव्य और गुण तो शुद्ध है और यह विकार जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, एक समय की पर्याय में स्वतन्त्र सत् है, उसे कोई हेतु नहीं होता। आहाहा! ऐसा जो ज्ञान होता है, वह षट्कारकरूप विकार परिणमित होता है, वह भी स्वतन्त्र है। परन्तु यहाँ तो अब विकार है और भेदज्ञान हुआ है; इसलिए वह... समझ में आये, उतना समझना, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि के वचन हैं। लोगों को बैठे, न बैठे (वे) स्वतन्त्र है। आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! तेरा जो ज्ञानगुण है, वह जब राग से भिन्न पड़ा, तब उस ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय षट्कारकरूप से स्वतन्त्र द्रव्य-गुण की अपेक्षा बिना परिणमित होती है। द्रव्य-गुण की अपेक्षा तो नहीं, इसलिए राग है, इसलिए यहाँ षट्कारकरूप से ज्ञान की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! यह यहाँ बहिन कहती हैं।

चैतन्य-दर्पण में प्रतिबिम्बरूप हैं। प्रतिबिम्ब अर्थात् राग है। उसका ऐसा भेदज्ञान हुआ है, इसलिए उसे मानो राग राग में रहा और राग सम्बन्धी मानो यहाँ प्रतिबिम्ब अर्थात्? जैसे दर्पण में, अग्नि और बर्फ बाहर पड़े हों, वे अन्दर दिखते हैं, वह दर्पण और अग्नि नहीं है। उस दर्पण में अग्नि और बर्फ नहीं है। वह दर्पण की स्वच्छता है। उसी प्रकार

चैतन्य दर्पण में राग जो प्रतिबिम्बरूप से ज्ञात होता है, उस राग के कारण उस राग का का ज्ञान आत्मा में हुआ है, ऐसा नहीं है। धीर है धीर, बापू! काम ऐसा। अनन्त काल हुआ। चौरासी के अवतार कर-करके कुछ न कुछ, कुछ न कुछ शल्य तो अन्दर रखी है।

यह भगवान अत्यन्त चैतन्यस्वरूप, उस दर्पण में प्रतिबिम्बरूप राग है। राग प्रतिबिम्बरूप है, ऐसा कहा, वह भी व्यवहार है। केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हैं— ऐसा कहना, वह भी एक असद्भूतव्यवहार है। आहाहा! वे तो उनकी पर्याय को जानते हैं, उसमें लोकालोक सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी का स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य के कारण वह एक समय की पर्याय षट्कारकरूप से स्वतन्त्र परिणमित होती है। समझ में आया? भाई! सूक्ष्म पड़े परन्तु समझना ही पड़ेगा, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके कचूमर निकल गया है। स्वयं कुछ न कुछ न कुछ गहरा शल्य अन्दर रखा है।

भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यस्वरूप विराजमान स्व-परप्रकाशक...

स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी तातैं वचन भ्रम भारी
ज्ञेय शक्ति द्विविधा प्रकाशी स्वरूपा पररूपा भासी

पररूपाभासी—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वह ज्ञान की पर्याय राग से जहाँ भिन्न पड़ी, सम्यग्दर्शन हुआ और जहाँ सम्यग्ज्ञान का वेदन अतीन्द्रिय आनन्द का साथ में हुआ, तब वह एक ज्ञान की पर्याय स्व और पर को जानती हुई स्वतन्त्र पर की अपेक्षा बिना, राग का प्रतिबिम्ब कहना वह भी अपेक्षित है। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं।

वह **प्रतिबिम्बरूप हैं। ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर।** आहाहा! स्व को जानने का और राग को जानने का राग की अपेक्षा बिना तुझमें जानने की शक्ति है, उसे प्रभु! प्रगट कर। आहाहा! सूक्ष्म है। पहले ज्ञान में निरधार तो करे कि यह वस्तु है। सम्यग्दर्शन, वह तो अलौकिक चीज़, बापू! आहाहा! कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्य। निर्जरा अधिकार में आता है। ज्ञान और वैराग्य। अस्ति का ज्ञान और पुण्य-पाप के विकल्प की विरक्ति, उसका नाम वैराग्य। अस्तित्व ऐसा जो चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, उसके अस्तित्व की, पूर्ण अस्ति की, पूर्ण सत्ता का, पूर्ण मौजूदगी का स्वतन्त्र ज्ञान। उस ज्ञान में द्रव्य नहीं आता। वह ज्ञान की पर्याय द्रव्य में नहीं जाती, तथापि उस ज्ञान की पर्याय में पूरा द्रव्य भी ज्ञात होता है और रागादि ज्ञात होते हैं। वह राग है,

इसलिए ज्ञात होते हैं, ऐसा भी नहीं। अब इससे जरा आगे जाते हैं। उस ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात हुआ, परमात्मा पूर्णानन्द नाथ, तो द्रव्य है; इसलिए उस ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ज्ञात हुआ, ऐसी भी जिसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी ज्ञान की पर्याय स्वतन्त्र स्व-परप्रकाशकरूप भेदज्ञानी जीव को—राग से पृथक् पड़े हुए भगवान आत्मा को वह ज्ञात होता है।

यह **ज्ञान-वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति...** ज्ञान की अचिन्त्य शक्ति और वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति, दो शब्द हैं। ज्ञान की अचिन्त्य शक्ति ऐसी कि वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्द के नाथ को जानना, उसे स्पर्श किये बिना और वैराग्य अर्थात् कि राग को स्पर्श किये बिना और राग को छोड़ना है, ऐसी भावना बिना। आहाहा! ऐसे राग के अभावस्वभावरूप... पुण्य-पाप के अधिकार में है। वैराग्यरूप, राग में रक्त था, वह छूटकर ज्ञान में रक्त हुआ, ऐसा जो वैराग्य... आहाहा! अचिन्त्य ज्ञान और अचिन्त्य वैराग्य। दो शब्द को अचिन्त्यता लागू पड़ी है।

उस **शक्ति से पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर**। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, परन्तु अब कितने वर्ष से सूक्ष्म पड़ेगा? कहाँ तक? भाई! इसे ख्याल में—ज्ञान के ऊपर तो ले कि इस प्रकार से वस्तु की स्थिति जो जानने की पर्याय भी अचिन्त्य, अचिन्त्य उसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती। ऐसी तो वह ज्ञान की पर्याय है और राग से रहित की वैराग्यशक्ति भी कोई अचिन्त्य है। ऐसी ज्ञान और वैराग्य की अचिन्त्य शक्ति से **पुरुषार्थ की धारा प्रगट कर**। आहाहा!

यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके... भगवान आत्मा द्रव्य के ऊपर दृष्टि (की)। दृष्टि है पर्याय परन्तु उस पर्याय का ध्येय द्रव्य, तथापि वह द्रव्य पर्याय में नहीं आता तो भी पर्याय की दृष्टि द्रव्य के ऊपर है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है। एक बार कहा था वहाँ सोनगढ़। जो ज्ञान की पर्याय है, वह द्रव्य का आश्रय ले, इतनी पराधीनता हुई या नहीं? नहीं। राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, उस ज्ञान की पर्याय में कर्तापना स्वतन्त्र है। षट्कारकरूप से पर्याय परिणमती है, वह स्वतन्त्ररूप से परिणमती है। एक समय की पर्याय ज्ञान की जो होती है, वह स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर होती है, उस पर्याय में कर्तापना स्वतन्त्ररूप से ऐसा है कि उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। द्रव्य

के कारण से वहाँ लक्ष्य जाता है, (ऐसा भी नहीं है)। उसका—पर्याय का स्वतन्त्र कर्तापना उसका स्वतन्त्र ऐसा है। आहाहा! अब ऐसी बातें।

एक समय की पर्याय जो है सम्यग्दर्शन की, उसका ध्येय द्रव्य भले कहो। परन्तु उस द्रव्य पर जो लक्ष्य जाता है, वह स्वतन्त्र एक पर्याय के कर्तापने के कारण जाता है। द्रव्य का आश्रय लिया, इसलिए द्रव्य की मदद मिली, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! यह एक समय की ज्ञान की, समकित की पर्याय, ऐसे अनन्त गुण की एक समय में जो पर्याय होती है, वह एक-एक पर्याय षट्कारक (रूप स्वयं से होती है)। पर्याय, पर्याय की कर्ता; पर्याय, पर्याय का कार्य; पर्याय, पर्याय का साधन; पर्याय, पर्याय को समर्पण की होकर अपने में रखी; पर्याय से पर्याय हुई; पर्याय के आधार से पर्याय हुई। ऐसे अनन्त गुण की एक समय में षट्गुण पर्याय एक-एक की स्वतन्त्र। दूसरे गुण की पर्याय भी दूसरे गुण के कारण से है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आये, उतना पकड़ना, भाई! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ की बातें हैं, भाई! आहाहा! अभी तो सब बिखर गया है। ऐसा नोंच डाला है कि कहीं का कहीं।

यहाँ कहते हैं, **यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके...** यहाँ क्या कहा? यथार्थ द्रव्य पर दृष्टि की, इसलिए दृष्टि को द्रव्य का आश्रय है, इतनी पराधीनता है—ऐसा नहीं है। यथार्थ शब्द में ऐसा शब्द है। **यथार्थ दृष्टि (द्रव्य पर दृष्टि) करके ऊपर आजा।** जिस पर्याय में द्रव्य का ज्ञान करके, जो पर्याय बाह्य ऊपर लक्ष्य में गयी, अब उस पर्याय को द्रव्य के ऊपर ऐसे ला। आहाहा! राग और दया-दान के शुभराग ऊपर जो पर्याय गयी है, वह तो मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव है। आहाहा! उस पर्याय को... आहाहा! ऊपर आ जा। पर्याय द्रव्य में ऊपर आ जा। द्रव्य का ज्ञान करे पर्याय, तथापि वह पर्याय द्रव्य से ऊपर रहती है। वह पर्याय द्रव्य में प्रवेश नहीं करती। अरर्र! ऐसी बातें हैं।

चैतन्य द्रव्य निर्मल है। ऊपर आ जा। द्रव्य के ऊपर आ जा। ऐसे राग के ऊपर है, पर्याय के ऊपर पर्याय है लक्ष्य में। वह अब द्रव्य के ऊपर ऐसे आ जा स्वतन्त्ररूप से। आहाहा! सूक्ष्म बातें ऐसी हैं, भाई! परन्तु बहिन की बात में ही बहुत सूक्ष्मता है। बहिन तो साधारण बोल गयी हैं। उन्हें कुछ था नहीं। कौन सुनता है और कौन... बैठे होंगे रात्रि

में, चौसठ बालब्रह्मचारी बहिनों में थोड़ा बोल गयीं। उनमें फिर नौ लड़कियों ने लिख लिया, इसलिए यह बाहर आया। वरना तो बाहर आवे नहीं। आहाहा! वह तो मर गये, राग से मर गये और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में जीनेवाले हैं। बहिन हो, तब इतना अधिक नहीं बोला जाता, हों! उन्हें नहीं रुचता। आहाहा! वे यहाँ बोले, एक बार ऊपर तो आ जा। राग के ऊपर जो है, वह द्रव्य के ऊपर आ जा। अथवा पर्याय के ऊपर पर्याय है, वह पर्याय द्रव्य के ऊपर आ जा। आहाहा! अब ऐसी बातें।

चैतन्य द्रव्य निर्मल है। अन्दर द्रव्य है, वह तो निर्मलानन्द घन है। भगवत्स्वरूप परमात्मा है। १४४ में आता है। १४४ गाथा है न? उसमें परमात्मा और प्रत्यगात्मा नाम आते हैं। अन्तिम। अभी तो सम्यग्दर्शन में, हों! है? आहाहा! १४४ गाथा है न कर्ता-कर्म की। अन्त में बोल है, देखो!

आदि-मध्य-अन्त रहित अनाकुल, केवल एक, सम्पूर्ण विश्व पर मानो कि तैरता हो वैसा अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप... अभी तो चौथे गुणस्थान की बात है। आहाहा! १४४ (गाथा की टीका)। **परमात्मारूप समयसार को...** परमात्मारूप ऐसे समयसार को **जब आत्मा अनुभव करता है।** यह पर्याय। आहाहा! १४४ गाथा में सम्यग्दृष्टि परमात्मा को अनुभव करता है, ऐसा कहा है। लालचन्दभाई! आहाहा! कठिन लगे, प्रभु! परन्तु यह तो झेलना पड़ेगा। आहाहा! राग से भिन्न पड़ने पर आदि-मध्य-अन्तरहित। जिसे आदि नहीं, मध्य नहीं, अन्त नहीं। है... है... है... है... है... है... निर्मलानन्दनाथ प्रभु अनाकुल आनन्द है, ऐसा एक है। एक ही है। जिसमें पर्याय का द्विधापना अन्दर नहीं है। आहाहा!

सम्पूर्ण विश्व पर मानो कि तैरता हो, उस प्रकार अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मरूप समयसार को जब आत्मा... सम्यग्दर्शन के काल में। सम्यग्दर्शन का काल ध्यान में अनुभूति में होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति, वह अन्तर के ध्यान में होती है। यह एक बार कहा था।

द्रव्यसंग्रह ४७ गाथा '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' निश्चय और व्यवहार दोनों ध्यान में प्राप्त होते हैं अर्थात् कि विकल्परहित अनुभूति आत्मा की होने पर उस अनुभूति में परमात्मा का स्वरूप अर्थात् अपना स्वरूप अनुभव में, वेदन

में आवे पर्याय, परन्तु मानो परमात्मा का वेदन हो, ऐसा ज्ञात होता है। वेदन परमात्मा ध्रुव का नहीं होता। वेदन पर्याय का होता है।

(प्रवचनसार) १७२ (गाथा) है न? अलिंगग्रहण। उसके बीस बोल। उसका अन्तिम बोल यह है कि भगवान आत्मा तो शुद्धपर्यायरूप ही है। आहाहा! एक ओर द्रव्यदृष्टि की है, तथापि वह द्रव्यदृष्टि करने से वेदन में जो आता है, वह द्रव्य नहीं आता। वेदन में आनन्द और ज्ञान और शान्ति जो पर्याय में निर्मल (प्रगट हुई), वह वेदन में आती है। इसलिए वेदन है वह पर्याय... बीसवाँ बोल अलिंगग्रहण में है। वही आनन्द की पर्याय और अनुभूति की पर्याय... आहाहा! द्रव्य को स्पर्श किये बिना... आहाहा! परमात्मा को अनुभव करती है। आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान, वह ध्यान में अनुभव में आता है, कहते हैं। ऐसे विकल्प हों और वाँचन हो और उसमें से हो जाए समकिती, ऐसा है नहीं।

'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा' 'णियमा' शब्द पड़ा है। ४७ गाथा, द्रव्यसंग्रह। निश्चय और व्यवहार ध्यान में प्राप्त होते हैं। अर्थात्? राग से भिन्न पड़कर पूर्णानन्द के नाथ की जो अनुभूति होती है, वह ध्यान में होती है। अनुभूति करता हूँ और अनुभव करनेवाला आत्मा है, ऐसा भी जहाँ भेद नहीं है। आहाहा! ऐसी ध्यान में जो अनुभूति हो, उसे निश्चय कहते हैं और उसके साथ अबुद्धिपूर्वक ध्यान में भी जो राग रह गया है, पूर्ण वीतराग हुआ नहीं, उस राग को व्यवहाररत्नत्रय का आरोप देकर व्यवहार मोक्षमार्ग कथन कहने में आया है। परन्तु उस ध्यान में समकित प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी कहते हैं कि विकल्प से प्राप्त होता है, शुभ से प्राप्त होता है और अमुक से प्राप्त होता है। भगवान कहते हैं कि ध्यान से प्राप्त होता है। उसमें पर्याय का भी लक्ष्य नहीं रहता, तथापि पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। ध्यान में एकाग्र होता है, तब वह परमात्मा ऐसा समयसार, उसे अनुभव करता है।

उसी समय ही... है? **आत्मा सम्यक्रूप से दिखायी देता है...** उस समय आत्मा सम्यक्रूप अनुभव में आता है और दिखायी देता है। है गाथा! १४४। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ बहिन यह कहती हैं। **चैतन्य द्रव्य निर्मल है। अनेक प्रकार के कर्म के उदय,**

सत्ता, अनुभाग तथा कर्मनिमित्तक विकल्प आदि तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन के अनुभूति के काल में ये सब विकल्प अत्यन्त भिन्न रहते हैं। उनका सच्चा ज्ञान तो कर। सच्चे ज्ञान बिना सत्य की ओर ढल नहीं सकेगा। सत्य ज्ञान बिना सत्स्वरूप के प्रति वीर्य झुक नहीं सकेगा। मिथ्याज्ञान, वह अन्दर में ढल नहीं सकेगा। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं। **अनेक प्रकार के कर्म के उदय,...** भले हो। **सत्ता...** भले पड़ी हो। **अनुभाग...** हो। रस-रस। **कर्मनिमित्तक विकल्प...** भले हो शुभादि। **तुझसे अत्यन्त भिन्न हैं।** ऐसा अन्तर में जाकर अनुभव कर तो सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! यह ७९ गाथा (पूरा हुआ)। बाद में कौन सा? ८१।

भावनगर में एक प्रोफेसर है। अर्धमागधी का (प्रोफेसर) ब्राह्मण। भावनगर में बड़ी शाला है और उसमें एक ब्राह्मण प्रोफेसर है। वह एक बार यहाँ व्याख्यान सुनने आया था। फिर रामजीभाई ने कहा कि इन्हें कुछ दो। फिर उन्हें यह दिया—वचनामृत दिया। वैष्णव ब्राह्मण थे परन्तु यह उन्हें दिया और जहाँ जाकर पढ़ा, उसका पत्र आया। महाराज! आपने मुझे यह क्या दिया! पृष्ठ-पृष्ठ में निधान भरे हैं। वह अन्यमति था। पृष्ठ-पृष्ठ में निधान भरे हैं अब मैं इसमें भींगना चाहता हूँ। अभी तक मैं पूरा रूखा था। मुझे मेरी कुछ खबर नहीं थी, परन्तु यह पढ़ते हुए... आहाहा! मैं अब अन्तर अनुभव में जाना चाहता हूँ। उसकी भाषा भींगने की। अर्थात् कि कोरा हूँ, अब भींगना चाहता हूँ - ऐसा यह कथन है। वह यहाँ कहा।

जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है। परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता, वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता। यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो॥ ८१॥

८१, ८१ न? जैसे **जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं, तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है,...** आहाहा! स्फटिकमणि है। जामनगर में इतना देखा है। (संवत्) १९९१ में एक प्राणभाई थे न? गुजर गये। बड़े डॉक्टर थे, ढाई हजार का वेतन उस समय था। किसी समय आते थे। छह लाख का सोलेरियम। व्याख्यान में आते थे। १००वीं गाथा चलती थी। इसलिए कहे कि महाराज! मेरे यहाँ जरा देखने तो आओ। आपको दृष्टान्त में काम आयेगा। उसमें उनके पास इतना स्फटिक। इतना स्फटिक, हों! निर्मल स्फटिक। यहाँ कहते हैं कि

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की त्यों ही जीव स्वभाव रे,
ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की त्यों ही जीव स्वभाव रे,
श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया,
प्रबल कषाय अभाव रे।

इस राग का-शुभभाव इसके अभावस्वरूप अकषायमूर्ति यह जिनस्वरूप प्रभु है। अमृतचन्द्राचार्य में आता है। उसका बनारसीदास ने हिन्दी किया है। 'घट-घट अन्तर जिन बसे, अरु घट-घट अन्तर जैन।' जैन कोई बाहर वेश के क्रियाकाण्ड में जैनपना नहीं है, ऐसा लिखते हैं। 'घट-घट अन्तर जिन बसे' प्रभु! सब देह-देवल में घट-घट में जिन बसता है और 'घट-घट अन्तर जैन।' उसे-जिनस्वरूपी वीतराग को जहाँ एकाग्र होकर अनुभव किया, उसे यहाँ जैन कहा जाता है। बाकी वाड़ावालों को जैन नहीं कहते।

'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन।
किन्तु मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न॥'

परन्तु अपने अभिप्राय की मदिर पीये हुए, उस अपनी मान्यता को न छोड़ते हुए स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकते। 'मत मदिरा के पान सों' अपने अभिप्राय की मदिरा पीये हुए। वे मतवाले स्वरूप के सन्मुख नहीं जा सकते। आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान वीतरागमूर्ति त्रिकाल विराजमान है। आहाहा! उन्होंने यहाँ यह कहा है। है न?

जैसे स्वभाव से निर्मल... अज्ञानी को जैसे स्फटिक रत्न में लाल, पीली झाँईं दिखती है, इसलिए मानो निर्मल पूरा स्फटिक लाल फूल हो गया हो, ऐसा दिखता है। **वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें,...** एक तो यह बात है कि

निर्मलानन्द स्फटिक है, उसमें लाल, पीले फूल का संग और झांईं जो दिखती है, वह कहीं फूल के कारण नहीं है। वह अपनी योग्यता के कारण है। यदि लाल और पीले फूल से लाल और पीली झांईं यदि अन्दर दिखती हो तो इस लकड़ी में रखो तो दिखना चाहिए। परन्तु उस स्फटिक की पर्याय की योग्यता है। उस फूल के कारण नहीं। द्रव्य-गुण के कारण नहीं। आहाहा! उस पर्याय की वैसी योग्यता है कि वह लाल, पीले परिणामरूप षट्कारकररूप परिणमती है। उस निमित्त के कारक की अपेक्षा नहीं है, उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! वह अज्ञानी विकार को पर्याय में देखने पर मानो कि वस्तु में विकार प्रविष्ट हो गया हो, ऐसी अज्ञानी की दृष्टि ऊपर है। अन्तर में जाता नहीं, इसलिए उसे पूरा निर्मल स्फटिक रँगा हुआ दिखता है। भाषा तो समझ में आये ऐसी है, प्रभु! आहाहा! हमारे वृद्ध देखो न हाँ करते हैं। यह तो यह है, बापू! वस्तु ऐसी है, भाई! आहाहा!

कहते हैं **निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें,...** पर्याय की योग्यता से दिखते हैं। कर्म से नहीं। द्रव्य-गुण से नहीं, कर्म से नहीं। उसकी एक समय की पर्याय की योग्यता से वहाँ दिखता है। **तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है।** आहाहा! वह तो एक समय की पर्याय में है। वस्तु है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक अविनाशी स्व-परप्रकाशक। आहाहा! ऐसा जो शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। समकिती की पर्याय ऐसा मानती है। पकड़ में आये उतना पकड़ना, प्रभु! आहाहा!

वीतरागी सन्त इसके कथन करें, उसकी तो बात क्या करना? वीतरागी मुनि जिन्हें तीन कषाय का नाश हुआ है, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर उछाला मारता है। नग्न मुनि होते हैं, बाह्य और अभ्यन्तर दोनों, हों! अकेला नग्नपना तो अनन्त बार लिया है। पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये, वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! अन्दर नग्न— जिन्हें विकल्प का वस्त्र नहीं। जिन्हें विकल्प-राग का वस्त्र नहीं। ऐसा जो निर्विकल्प नाथ आत्मा, उसे अनुभव करनेवाले सन्त ऐसा कहते हैं कि पर्याय में विकल्प दिखता है, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा!

वस्तु तो सकल त्रिकाल निरावरण है। वस्तु को आवरण होवे तो वस्तु, अवस्तु हो जाए। समझ में आया? सत् है, सत् है प्रभु! केवली ने देखा उसकी बात है, हों! दूसरे

आत्मा... आत्मा... करे। वह बात नहीं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो ज्ञान में आत्मा देखा और कहा, वह निर्मलानन्द का नाथ है। आहाहा! पर्याय में भले विकल्प दिखायी दे परन्तु वस्तु निरावरण—त्रिकाल निरावरण है। यह आवरण अर्थात् राग और कर्म का सम्बन्ध तो एक समय की पर्याय में है, वस्तु में नहीं। आहाहा! कितना पचाना इसमें?

स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोध-मानादि दिखायी दें, तथापि वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। आहा! **वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** यह तो ऊपर-ऊपर पर्याय में मलिनता है, एक समय का संसार है। एक सेकेण्ड का असंख्यातवाँ भाग, एक समय की संसार की विकृत पर्याय में है। भगवान त्रिकाली तो निर्मलानन्द है। आहाहा! है? **वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है। वस्तुस्वभाव में मलिनता नहीं है।** वस्तु स्वभाव, स्व-भाव, स्व-भाव। स्वभाववान् वस्तु का स्व-भाव त्रिकाल निर्मल है। उसमें मलिनता नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। लोग प्रेम से सुनते हैं। सुने, अब सुने, बापू! ऐसी बात कहाँ है? भगवान!

अब दृष्टान्त देते हैं। माँ, वह तो जगदम्बा है। **परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता,...** क्या कहते हैं? यह परमाणु-पॉइन्ट है। यह तो अनन्त परमाणु का दल पिण्ड है। टुकड़े करते हुए अन्तिम रजकण रहे, वह परमाणु पलटकर अपने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित नहीं होता। आहाहा! परमाणु जो गुणी द्रव्य है, वह गुणरहित नहीं होता। आहाहा! भाषा तो सादी है। परमाणु जो द्रव्य है, वह गुणी। उसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, गुण। वह गुणी, गुण बिना कभी नहीं रहता। गुणी, गुण बिना नहीं होता। आहाहा! है?

परमाणु पलटकर... आहाहा! **वर्ण** अर्थात् रंग, **गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता, वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** आहाहा! वस्तु जो अनन्त गुण का नाथ प्रभु गुणी, वह अपने गुण से भिन्न नहीं पड़ता, दूसरे अपने गुणरहित नहीं रहता। विकाररहित रहता है परन्तु गुण बिना नहीं रहता। आहाहा! इन्द्र सुनते होंगे एकावतारी-एक भव (बाकी है)। पहले देवलोक का इन्द्र एकावतारी है, एक भवतारी है—शकेन्द्र। उसकी स्त्री है रानी—देवी। एक-एक। है करोड़ों, परन्तु उनमें एक ऐसी है कि वह भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। सिद्धान्त में लेख है। पति-पत्नी दोनों का देव का अन्तिम भव है। वहाँ से

मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वह देव और देवी व्याख्यान में सुनने आते होंगे, वह प्रवचन कैसा होगा प्रभु! आहाहा!

जिन्हें विश्वास है कि हमारे अब एक अन्तिम मनुष्य होकर मोक्ष जाना है। तीन ज्ञान तो प्रगट है—मति, श्रुत और अवधि, और सम्यग्दर्शन। वे जब भगवान की वाणी सुनने समवसरण में आते हैं और सिंह तथा बाघ और नाग जंगल में से ऐसे सर्र.. सर्र... सर्र... करते हुए चले आते हैं। केसरिया सिंह, सैकड़ों सिंह जंगल में से समवसरण में चले आते हैं। काले नाग लम्बे पच्चीस-पचास हाथ के। परन्तु जैसे लट आवे, वैसे चलकर अन्दर आते हैं भगवान को सुनने। आहाहा! ऐसे नाग, बाघ, सिंह और इन्द्र तथा इन्द्राणी के बीच भगवान की वाणी कैसी होगी, बापू! साधारण कथा यह दया पालो, व्रत करो, यह तो कुम्हार कहता है। समझ में आया? आहाहा!

कुम्हार कहता है अर्थात् क्या? जरा बात याद आयी है। हमारे जो उमराला है न उमराला जन्मगाँव? जन्मगाँव। उस समय ७५ वर्ष पहले की बात है। उस समय ऐसा रिवाज था कि श्रावण शुक्ल एकम आवे तो जो सेठ हों, अपने नगरसेठ बनिया। वहाँ जैनधर्म स्थानकवासी का। सेठ थे, वे श्रावण शुक्ल एकम आवे तो सब सेठ तीन-चार-पाँच-पाँच सुपारी लेकर जाए और कुम्हार हो भट्टी करनेवाले, तेली हो घाणी करनेवाले। सबके पास जाए। पाँच सुपारी रखे, तो वे समझे बनियों के पर्यूषण आये हैं। वह श्रावण शुक्ल एकम से भाद्र शुक्ल पंचमी तक घाणी नहीं पेलते। यह रिवाज था। उस समय लौकिक लाईन ऐसी थी। कुम्हार भट्टी नहीं करता। श्रावण शुक्ल एकम् से भाद्र शुक्ल पंचमी। श्रावण महीना पूरा और भाद्र पंचमी। तेली-मुसलमान (घाणी) नहीं करते। सेठ-बनियों के पर्यूषण आये हैं। ऐसी छाप थी। बड़े शहर में तो कहाँ... नागेश में होगा कुछ। यह तो हमने सब नजर से देखा हुआ है। आहाहा! वे ३५ दिन घाणी नहीं पेलते, मुसलमान, हों! और जब पूरा हो पंचमी के बाद तो पहले कौन शुरु करता है, उसकी होड़ लगे। क्योंकि पहले शुरु करे, उसे पाप अधिक बनता है। आहाहा! ऐसी बाहर की बातें तो प्रभु लौकिक में अनादि से चली आती है। वह कहीं पर की दया पाली, नहीं मारा, इसलिए धर्म हुआ है, ऐसी बातें तो अनन्त काल से चली है, बापू! यह बातें नहीं। सूक्ष्म बात, भाई!

पर की दया तो जीव पाल नहीं सकता। क्योंकि परद्रव्य की पर्याय उस काल में स्वतन्त्र स्वकाल में होती है, उसमें दूसरा क्या करे? परन्तु पर की दया का भाव आवे, उसे पुरुषार्थसिद्धियुपाय में अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं कि वह राग है, वह हिंसा है। राग विकल्प उठा है न? वह भगवान अहिंसक वीतरागमूर्ति है, उसमें इतनी हिंसा होती है। आहाहा! यह तो कौन कहे? वीतराग है, जिन्हें जगत की पड़ी नहीं है, जिन्हें समाज सुगठित रहेगा या नहीं? दो भाग पड़ेंगे या नहीं? इस पक्ष से विरुद्ध पड़ेगा या नहीं? आहाहा! जिन्हें कुछ पड़ी नहीं है, ऐसे तीन लोक के नाथ और तीन कषाय के अभाववाले सन्त, समाज सुगठित रहेगा या नहीं? यह (दरकार) नहीं है। सत्य को प्रसिद्ध करके ढिंढ़ोरा पीटते हैं। सत्य को प्रसिद्ध करके ढ़िंढ़ोरा पीटते हैं कि पर की दया का भाव, वह हिंसा है। यह कौन कहेगा? पर की दया पाल सकता नहीं। तुझे भाव आवे कि इस जीव को बचाऊँ अथवा न मारूँ, यह विकल्प है, प्रभु! यह राग है। और राग, वह स्वरूप में नहीं है। रागरहित चीज़ को राग आने पर वहाँ शान्ति का घात होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

कहते हैं **परमाणु पलटकर वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से रहित नहीं होता,...** यह गुणी पलटकर गुणरहित नहीं होता। आहाहा! **वैसे ही वस्तुस्वभाव नहीं बदलता।** क्या कहते हैं? जैसे परमाणु के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पलटते नहीं। पलटे तो वस्तु रहती नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा का ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण जो हैं, उन गुणरहित तो कभी रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह गुणी प्रभु। गुणी तो चावल और गेहूँ की (बोरी), उसे कहते हैं। वह यह नहीं। यहाँ तो गुण का धारक, ऐसा गुणी प्रभु। वह गुणी गुणरहित नहीं होता। परमाणु के वर्ण गन्ध, स्पर्श बिना नहीं होता। इसी प्रकार चैतन्य भगवान उसके अनन्त-अनन्त आनन्द आदि गुणों से रहित कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! है?

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। आहाहा! अनन्त गुणरहित वह नहीं होता, ऐसी जो दृष्टि हो... आहाहा! तब पर से एकत्व टूट जाता है। राग के विकल्प से निर्विकल्प गुण, गुण निर्विकल्परहित गुणी नहीं होता। पूर्णानन्द के अनन्त गुण हैं, उन अनन्त गुणरहित गुणी नहीं होता। ऐसी दृष्टि होने पर राग की एकता टूट जाती है। आहाहा!

उसे यहाँ सम्यग्दर्शन की पहली धर्म की भूमिका कहा जाता है। आहाहा! उसे धर्म की पहली सीढ़ी (कहने में आता है)। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

यह तो पर से एकत्व तोड़ने की बात है। यह भी नास्ति से बात है। स्व में एकत्व हो वहाँ पर का एकत्व अर्थात् राग उत्पन्न नहीं होता, उसे पर को तोड़ा—ऐसा कहने में आता है। यह क्या कहा? गुणी परमाणु, वह उसके गुणरहित नहीं होता, इसी प्रकार गुणी ऐसा भगवान, उसके गुणरहित नहीं होता। ऐसी जहाँ दृष्टि होती है, वहाँ उसे राग की उत्पत्ति मिथ्यात्व की नहीं होती। उसे यहाँ ऐसा कहते हैं। पर से एकत्व तोड़ने की बात है, ऐसा कहा। तोड़ने जाना है, ऐसा नहीं। परन्तु गुणी गुणरहित नहीं होता। मेरा नाथ मेरे गुणरहित नहीं है, ऐसी जहाँ एकत्वबुद्धि होती है, वहाँ राग की एकता टूट जाती है। उसे तोड़ने जानापना आता नहीं।

अन्तर में वास्तविक प्रवेश कर तो (पर से) पृथक्ता हो। अन्दर में जा तो राग से भिन्न पड़ जाए, नहीं तो भिन्न पड़ेगा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१४) चैत्र कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक २१-४-१९७९
वचनामृत - ८२, ८६, १०० प्रवचन-७६७ (DVD 17)

'मैं तो दर्पण की भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ; विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता; मैं तो विकल्प से भिन्न, निर्विकल्प आनन्दघन हूँ; ज्यों को त्यों पवित्र हूँ।' इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान। तू विकल्प से मलिन होकर - मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है; दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है। निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह प्रगट होगा। अन्तर में ज्ञान और आनन्दादि की निर्मलता ही भरी है॥ ८२॥

.... इसमें तत्त्व की बात है। अनन्त काल से यह तत्त्व आत्मा राग से भी जहाँ अन्दर निराला है, ऐसा जिसने अन्तर में स्वतत्त्व का अवलम्बन लिया नहीं, उसे धर्म की शुरुआत नहीं होती। आहाहा!

मैं तो दर्पण की भाँति अत्यन्त स्वच्छ हूँ;... यहाँ से शुरु किया। आहाहा! जैसे दर्पण अपने स्वभाव से स्वच्छ है, उसी प्रकार मैं आत्मा मेरे स्वभाव से ही मैं स्वच्छ और निर्मल हूँ। आहाहा! **विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता;...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा वस्तु जो है सच्चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द सहजात्मस्वरूप, वह रागादि के विकल्प की वृत्तियों से यह वस्तु मलिन नहीं होती। आहाहा! यह बात बैठाना (कठिन पड़ती है)। दुनिया को बैठे, न बैठे परन्तु वस्तु का स्वभाव ऐसा है।

विकल्प के जाल से आत्मा मलिन नहीं होता;... आहाहा! यह शरीरादि तो पर जड़ है, वह तो इसके अस्तित्व में नहीं, परन्तु राग की जाल, गुण-गुणी भेद का विकल्प उठे या कोई पंच परमेष्ठी के स्मरण का विकल्प-राग उठे, वह भी जाल में आत्मा मलिन नहीं होता। वस्तु मलिन नहीं होती। आहाहा! कैसे बैठे यह? वस्तु सच्चिदानन्द निर्मलानन्द

स्फटिक। जैसा निर्मल स्फटिक है, वैसा ही प्रभु चैतन्य निर्मल त्रिकाल है। इस विकल्प की जाल से वस्तु मलिन नहीं होती। पर्याय में-अवस्था में-हालत में-वर्तमान दशा में भले मलिनपना एक समय के अस्तित्व में दिखता है परन्तु त्रिकाली वस्तु में वह मलिनपना नहीं आता और उस त्रिकाली चीज़ में दृष्टि करके अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन की धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा! ऐसी बात है।

दूसरे समझ सकें या न समझ सकें, यह दूसरे को धर्म प्राप्त करा सके या न प्राप्त करा सके, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! मेरा नाथ निर्मलानन्द प्रभु, शुभ और अशुभ की विकल्प की वृत्ति के जाल से वह वस्तु मलिन हुई नहीं। आहाहा! उसकी वर्तमान मलिन पर्याय की दृष्टि छूटकर उससे रहित भगवान निर्मलानन्द है, इसमें उसकी दृष्टि जाए तो वह वस्तु मलिन हुई नहीं। आहाहा! और इसलिए उस निर्मल चीज़ का वर्तमान में अनुभव करने पर उसमें उसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है— अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, तब उसने आत्मा को जाना और माना और है—ऐसा उसने तब स्वीकार किया। आहाहा! यह तो शुरुआत की बात है, भाई! सम्यग्दर्शन बिना सब क्रियाएँ व्रत, तप करके करे चाहे जो, प्रभु! जन्म-मरण का अन्त उसमें नहीं आयेगा, प्रभु! क्योंकि वह तो पुण्य और पाप के भाव तो स्वयं संसार हैं। उस संसार से संसार का अन्त किस प्रकार आयेगा? आहाहा! परन्तु उस पुण्य और पाप के विकल्प जाल (से) रहित भगवान आत्मा, जिसमें संसार नहीं अर्थात् राग का उदय नहीं और उसका भाव जो संसार का कारण राग, वह भी उसमें नहीं। ऐसी विकल्परहित चीज़ मलिन नहीं होती।

मैं तो विकल्प से भिन्न,... हूँ। अरे रे! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अन्दर चैतन्य भगवान राग की वृत्ति से अत्यन्त भिन्न है। वास्तव में तो वह वस्तु जो है, वह शुभराग के विकल्प को भी स्पर्शी नहीं है। आहाहा! यह वस्तु है भगवान, जिसने आत्मा को भगवान को देखा... आहाहा! वह चीज़ निर्मल ऐसी चीज़ है कि विकल्प का अंश उसमें नहीं है। और जिसमें उस विकल्प का अंश नहीं, वह संसार और संसार के भाव से रहित है, तो उसका आश्रय करने से संसार से रहित हुआ जा सकता है परन्तु विकल्प का जाल है, वह तो संसार है। चाहे तो भक्ति, पूजा, व्रतादि चाहे जो विकल्प हो... आहाहा! परन्तु वह तो परद्रव्य के कारण से, पर के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाला विकल्प जाल, वह तो संसार है।

उससे छूटना होवे तो जिसमें वह नहीं, उस चिदानन्द द्रव्यस्वभाव, वस्तु स्वभाव चिद्घन, आनन्दकन्द में वह विकल्प है ही नहीं, (उसका आश्रय करना चाहिए)। आहाहा!

मैं तो विकल्प से भिन्न,... ऐसा इसे अन्तर में स्वसन्मुख का प्रयत्न करना पड़ेगा, प्रभु! आहाहा! ऐसी बात है। **निर्विकल्प आनन्दघन हूँ;...** आहाहा! शरीरादि तो मैं हूँ ही नहीं, वह तो जगत की चीज़ है। पुण्य-पाप का भाव, वह विकार है परन्तु मेरी अल्पज्ञता है, उसमें भी मैं नहीं हूँ। मैं तो पूर्ण आनन्दघन हूँ। कठिन काम है, भाई! आहा! है? निर्विकल्प और आनन्दघन दो शब्द प्रयोग किये हैं। निर्विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति के विकल्प की मलिनता से रहित अभेद और आनन्दघन। आहाहा! यहाँ पर में झपट्टे मारता है। यहाँ सुख... यहाँ सुख... यहाँ सुख। कहते हैं कि मैं तो निर्विकल्प आनन्दघन हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से उसका नाम सत्य सम्यग्दर्शन कहलाता है। क्योंकि इतना वह सत्य जैसा है, उसे उस प्रकार से स्वीकार करे तो उसे सम्यक् अर्थात् सत्य दर्शन कहने में आता है। जितना वह पूर्ण सत्य है, उससे दूसरे प्रकार से अल्पज्ञरूप से, विकाररूप आदि उसे माने तो वह तो मिथ्यात्वरूपी संसार है। आहाहा! समझ में आया?

मैं तो निर्विकल्प आनन्दघन हूँ; ज्यों का त्यों पवित्र हूँ। अर्थात् यह क्या कहते हैं? चाहे जैसे निगोद में अनन्त भव किये, नरक के अनन्त भव किये परन्तु मैं वस्तु हूँ, वह तो ऐसा का ऐसा हूँ। आहाहा! मुझमें कुछ मलिनता या अल्पता आयी नहीं। पूर्णता और निर्मलता से भरपूर मैं भगवान हूँ। आहाहा! **ज्यों का त्यों पवित्र हूँ।** अनन्त बार नरक में गया, अनन्त बार निगोद के भव, तो वह तो सब पर्याय की अवस्था में अवस्थादृष्टि से किये परन्तु वस्तुदृष्टि से मैं ऐसा का ऐसा अनादि शुद्ध हूँ। आहाहा!

पानी का विशाल समुद्र भरा हो परन्तु किनारे चार हाथ का कपड़ा पर्दा—आड़े रखा हो और स्वयं चार हाथ का ऊँचा हो, उसकी नजर में कपड़ा आता है। उसकी नजर में समुद्र नहीं आता। समुद्र है अगाध पानी से भरपूर गम्भीर और चौड़ाई का पार अवगाहना का नहीं, तथापि किनारे चार हाथ का कपड़ा पर्दा अर्थात् आड़े रखा हो तो नजर करनेवाला भी चार हाथ ऊँचा और कपड़ा भी चार हाथ ऊँचा। उसकी आँख में तो कपड़ा आता है, वह चीज़ नहीं आती; इसी प्रकार भगवान आत्मा राग के विकल्प की नजर में खड़ा रहे, उसे त्रिकाली निर्मलानन्द नजर में नहीं आता, नाथ! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

बहिन के वचन हैं। बहिनों के पास कहे हुए, लड़कियों के बीच। आज तो समाचार आये हैं कि आयेंगे नहीं। डॉक्टर ने इनकार की है कि मुम्बई जाना नहीं। समाचार आ गये। यह तो रात्रि में कोई चर्चा में लड़कियों में बोला गया और यह लिखा गया। बाकी यह तो अन्तर का उफान है। आनन्द का नाथ अन्दर उछला है। हिलोरे मारते हुए आत्मा अन्दर निर्विकारी निर्विकल्प आनन्दघन हूँ और मैं तो पवित्र जैसा हूँ, वैसा अनादि से ऐसा का ऐसा रहा हूँ। चाहे जितने भव किये तो वे भव और भव के भाव, उनका मेरे द्रव्यस्वभाव में असर नहीं है। आहाहा! उस असर में मैं आया नहीं और वह असर मुझमें नहीं, ऐसा मैं पवित्र अनादि-अनन्त हूँ। है? **ज्यों को त्यों पवित्र हूँ।** आहाहा!

इस प्रकार अपने स्वभाव की जाति को पहिचान। ऐसे अपने स्व-भाव। स्व अर्थात् अपना निर्मल त्रिकाल भाव, उस स्वभाव की जाति को पहिचान। स्वभाव की जाति को पहिचान। रागादि, वह स्वभाव की जाति नहीं है, प्रभु! वह तो कुजाति है। आहाहा! समझ में आया? अपने स्वभाव की जाति को पहिचान। ऐसे शब्द पड़े हैं। अपने स्वभाव की जाति, वह तो त्रिकाल पवित्र आनन्दकन्द पूर्ण घन है। उसकी स्वभाव की जाति को पहिचान। स्वभाव से विरुद्ध जो रागादि, निमित्तादि हैं, वे तुझमें नहीं हैं और तू उनरूप हुआ नहीं है, उनका असर तुझे कभी लागू पड़ा ही नहीं। आहाहा! वस्तुस्वभाव जो द्रव्यस्वभाव है, उसे विकल्प के जाल का असर, संग, स्पर्शा भी नहीं है। ऐसा मैं हूँ—ऐसा अन्तर में-नजर में ले। कठिन बातें हैं, प्रभु! मार्ग बहुत कठिन।

यह सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ किया जाता है ऊपर के व्रत, तप, अमुक और अमुक। वह सब बिना एक के शून्य हैं। शून्य की कोई संख्या नहीं होती। लाख, करोड़ शून्य लिखे, वह कहीं संख्या में गिने जाते हैं? इसी प्रकार प्रभु स्वयं हाथ नहीं आता और उसके बिना सब व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया लाख-करोड़ और अनन्त बार करे, वह इसमें हाथ नहीं आता, प्रभु! आहाहा! और हाथ आवे तो मैं पवित्रता विकल्प से मलिन होकर, मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है। है? आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु यह... आहाहा! **विकल्प से मलिन होकर**- राग का अंश फिर भले शुभ हो या अशुभ हो। मोक्षपाहुड़ में गाथा १६ में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा

है **परदव्वादो दुग्गई**। प्रभु! स्वद्रव्य के आश्रय बिना जितना लक्ष्य हमारे ऊपर भी तुझे जाएगा, वह हम तेरे द्रव्य से परद्रव्य भिन्न हैं। भिन्न पर लक्ष्य जाएगा, प्रभु! तेरी दुर्गति है। अरर्र! दुर्गति अर्थात् तेरे चैतन्य की गति नहीं है। चैतन्य से कुजात राग है, उस गति में जाएगा। आहाहा! ऐसा कठिन है। यह यहाँ कहते हैं।

विकल्प से मलिन होकर - मलिनता मानकर... देव, गुरु और धर्म का लक्ष्य किया, स्मरण किया, वह भी विकल्प है। परद्रव्य की ओर का झुकाव; स्वद्रव्य का झुकाव छोड़कर परद्रव्य की ओर का झुकाव, वह मलिनता का विकल्प भाव है। आहाहा! वह **मलिनता मानकर भ्रमणा में ठगा गया है;...** आहाहा! जो चीज़ है, उसे न जानकर वह विकल्प सूक्ष्म राग अन्दर उठता है, उससे मानो मैं मलिन हो गया हूँ, इस प्रकार **मलिन होकर - मलिनता मानकर...** दो शब्द हैं। **विकल्प से मलिन होकर...** अर्थात् विकल्प है, उससे पर्याय में मलिन होकर **मलिनता मानकर...** यह तो बहिन के वचन अकेले तत्त्व के हैं। वे तो बोल गये हैं। वे तो (जगत से) मर गये हैं, यह तो स्त्री का देह आ गया है पूर्व के कारण। बाकी अभी तो बापू! आहाहा! उन्हें पहिचानने को जगत के पास कठिन है। यह तो रात्रि में बोल गये हैं। बहिनों ने-लड़कियों ने लिख लिया। आहाहा!

यहाँ तो अन्दर की अकेली बातें हैं। आहाहा! कपाट खोल, प्रभु! आहाहा! यह मलिन विकल्प की जाल में रुक गया। तेरा नाथ अन्दर अनन्त गुण से भरा है, उसे तूने ताला लगाया है। यह ताला लगाया है, उसे खोल। अन्दर भगवान पूर्णानन्द विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? उपदेश का प्रकार अलग है, इसलिए कठिन लगता है। धीरुभाई! सब सेठ जैसे पैसे और दान का करे, इसलिए प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए और मानो हो जाए धर्म। दो-पाँच लाख खर्च करे, इसलिए हो जाए उसे धर्म। धूल में भी धर्म नहीं है। ऐई! हसमुखभाई! पैसेवाले को ऐसा कि दो-पाँच लाख यहाँ दो तुम्हारा नाम भी रहे और तुम्हें गति अच्छी मिले। कौन सी गति? प्रभु! उसमें कदाचित् राग मन्द किया हो तो कहते हैं कि मलिन होकर-मलिन मानकर... आहाहा! धीरुभाई! ऐसा है, भगवान! आहाहा!

निर्मलानन्द निर्विकल्प प्रभु अन्दर विराजता है। यह तो कहा नहीं था एक बार? नाटक का नहीं कहा था? बड़ोदरा का। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात एक बार हुई

थी। बड़ोदरा दुकान का माल लेने गये थे। संवत् ६४ की बात है। अठारह वर्ष की उम्र थी। यह तो नब्बे हुए। बहत्तर वर्ष पहले की बात है। दुकान का माल लेने गये थे। घर की दुकान और माल ले लिया। रात्रि में निवृत्ति, इसलिए नाटक देखने गये। उसमें अनुसूईया का नाटक। उस अनुसूईया को लड़का हुआ और फिर उसे झुलाती है। एक बार बात की थी। यह तो बहत्तर वर्ष पहले की बातें हैं। ऐसी बातें नाटक में थी। आहाहा! अरेरे! अभी सम्प्रदाय में सुनने को मिलती नहीं। उस नाटक में ऐसा था। बेटा! तू निर्विकल्प है। यह शब्द थे, हों! नाटक में। पुस्तक ली थी। ऐसे तो मुझे पहले से आदत ऐसी है। भाई! तुम क्या बोलते हो, यह कुछ हमें न समझ में आये तो नाटक... लाओ तुम्हारी पुस्तक। पैसा लो भाई! बारह आने की टिकिट और बारह आने की पुस्तक। यह तो ६४ के वर्ष की बात है। उसमें (नाटक में) उसकी माँ ऐसे झुलाती है। आहाहा! बेटा! तू निर्विकल्प है, उदासीन है, शुद्ध है, बुद्धोसि।

इसी प्रकार यहाँ... आहाहा! बहिन कहती है कि भाई! आहाहा! तू तो निर्मलानन्द आनन्दघन है न! उसे इस कुजाति में मलिनता मानकर भ्रमणा में तू ठगा गया है। आहाहा! बाहर के पाँच-पच्चीस हजार या दस हजार में ठगा जाए तो उसमें कहीं कोई... रमणीकभाई! तुम्हारे क्या करोड़पति में वहाँ अब पाँच-पचास हजार में फेरफार, वहाँ क्या गिनती थी? परन्तु यहाँ बड़ी ठगाई है यहाँ। आहाहा! अरे रे! प्रभु! पवित्रता के पिण्ड के अन्दर छोटे में छोटे राग की वृत्ति को अपनी मानकर मलिनता से मानो मैं मलिन हुआ, ऐसा मानकर ठगाकर भ्रमणा में भ्रम रहा है। चौरासी के अवतार भगवान, भगवान को भूलकर भ्रमणा में पड़कर भगवान और भ्रमणा के भव के भव कर रहा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! परन्तु वस्तु तो यह है। सत्य तो ऐसा है। अभी तो पहले दर्शनशुद्धि की बात है। दर्शनशुद्धि हुए बिना उसे व्रत, तप और भक्ति-वक्ति सब शून्य है। रण में शोर है। रण में शोर करे, वह कोई सुनता नहीं और उसका शोर पूरा होता नहीं। इसी प्रकार आत्मा में दर्शनशुद्धि, पहले यह चिदानन्द पवित्र परमात्मा ऐसा अन्दर अनुभव बिना यह एक छोटे में छोटी वृत्ति और उसके द्वारा मैं मलिन हुआ और मलिन मानकर ठगाकर भ्रमणा में भ्रम रहा है। आहाहा! है?

भ्रमणा में ठगा गया है; आहाहा! **दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है।** दर्पण

की जाति तो स्वच्छ है। दर्पण में कोई मलिनता कभी आती नहीं। आहाहा! इसी प्रकार दर्पण की भाँति जाति और चैतन्य जाति, आत्मा की जाति भगवानस्वरूप प्रभु की जाति स्वच्छ ही है। प्रभु! तू स्वच्छ है। स्वच्छ है, ऐसा नहीं कहा। स्वच्छ ही है, ऐसा कहा। आहाहा! प्रभु! यह जो स्त्री, शरीरादि ऊपर के न देख। अन्दर के रागादि को न देख। इस रागादि को मलिन (को निज) मानकर भ्रमणा में भ्रम रहा है, प्रभु! एक बार भ्रमणा को भूल जा और भूले हुए भगवान को अन्दर याद कर। आहाहा! यह भगवान स्वच्छ ही है। यहाँ स्वच्छ है, ऐसा नहीं कहा। स्वच्छ ही है, प्रभु! तू स्वच्छ ही है।

४७ शक्तियाँ हैं न! आत्मा में अनन्त-अनन्त गुणरूप शक्ति है। शक्ति कहो, गुण कहो, सत् का सत्त्व कहो, जैसे शक्कर का शक्करपना। शक्कर, वह सत् और उसका शक्करपना, उसका पना अर्थात् गुण है। उसी प्रकार भगवान सत् है, उसका सत्पना अर्थात् गुणपना आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त गुण का गुणपना है। आहाहा! ऐसी जाति को **निर्मलता के भण्डार को पहिचान...** आहाहा! है?

दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है। निर्मलता के भण्डार को पहिचान... प्रभु तो निर्मल भण्डार है। आहाहा! कैसे जँचे? पूरे दिन... कहो, मीठालालजी! पूरे दिन पैसे में-पैसे में मकान और ... आहाहा! यह तो जिसे जो हो वह। प्रभु अन्दर रह गया है भाई! आहाहा! यह सवेरे तो बहुत आया था। ग्राह्य-ग्राहक का। अभी थोड़ा कल आयेगा। यह तो सब पदार्थ, रागादि का विकल्प और परमात्मा स्वयं और पंच परमेष्ठी, प्रभु! तेरे ज्ञान का तो परज्ञेय है। उसके बदले उस पर सन्मुख के झुकाव से जो वृत्ति हुई, वह वृत्ति मेरी है, ऐसे मलिन होकर तू मानकर ठगा गया है। तेरी जाति को तूने पहिचाना नहीं है। तेरी जाति में तुझे भात पाड़ना नहीं आया। आहाहा! यह ठगा गया है। है?

दर्पण की भाँति जाति से तो स्वच्छ ही है। निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह... यह क्या कहते हैं? भगवान अन्दर निर्मल आनन्द सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान का ज्ञान सबको जानता है तीन काल तीन लोक को। उन भगवान के ज्ञान में प्रभु! तेरा आत्मा ऐसा ज्ञात हुआ है। तेरा आत्मा, हों! पुण्य-पाप के परिणाम, वे पुण्य-पाप के तत्त्वरूप जाने। शरीर और कर्म को प्रभु ने

अजीवतत्त्व जाना परन्तु तेरा जो तत्त्व है, उसे भगवान ने तो निर्मलानन्द जाना है। आहाहा! समझ में आया?

निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का... यह क्या कहते हैं? निर्मल से भरपूर भगवान की यदि तुझे दृष्टि और स्वीकार और सत्कार हुआ **तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह प्रगट होगा।** क्योंकि प्रभु अत्यन्त निर्मल का पिण्ड है। अनन्त निर्मल गुण की शक्ति का भण्डार है, तो उसके ऊपर दृष्टि जाने से तुझमें निर्मल पर्याय का समूह एक के बाद एक... देखा! **निर्मलता के भण्डार को पहिचान तो एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह...** एक ही पर्याय उघड़ेगी, ऐसा नहीं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा तो प्रभु अनन्त गुण का सागर है न, तो यदि उसकी दृष्टि करे तो वे जितने गुण हैं, उनकी एक के बाद एक पर्याय का समूह, वह अनन्त पर्याय का समूह पर्याय में-अवस्था में (प्रगट होगा)। एक पर्याय प्रगट होगी, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समझ में आया?

एक के बाद एक निर्मलता की पर्यायों का समूह प्रगट होगा। आहाहा! यह क्या कहा? प्रभु! तू अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उसकी कोई अनन्त के अनन्त की संख्या नहीं, इतने अनन्त गुण का भण्डार प्रभु तू। ऐसे अनन्त गुण के धारक को यदि पहिचान तो तेरी वर्तमान पर्याय में एक के बाद एक पर्याय का समूह प्रगट होगा। एक के बाद एक परन्तु पर्याय का समूह प्रगट होगा। आहाहा! जिसे श्रीमद् ने सर्वगुणांश, वह समकित कहा है। जिसे टोडरमलजी ने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में... रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न? अपने इस मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे प्रकाशित की है। उसमें ऐसा कहा है कि जिसे यह आत्मा निर्मलानन्द प्रभु का जहाँ अन्तर्मुख होकर स्वीकार हुआ, उसे एकदेश अनन्त गुणों का एकदेश प्रगट सबका होगा। उसे यहाँ समूह कहा है। क्या कहा?

फिर से। भगवान आत्मा एकरूप होने पर भी उसकी गुण और शक्ति का स्वभाव अनन्त है। संख्या से अनन्त है। उस अनन्त गुण के भण्डार को यदि नजर में लिया... आहाहा! निर्मलानन्द के नाथ को निर्मल पर्याय ने नजर में लिया तो पर्याय का समूह, जितने गुण हैं, उतने सबकी पर्याय का समूह एक के बाद एक, एक के बाद एक वृद्धि को पाकर समूह प्रगट होगा। आहाहा! लोग ऐसा नहीं कहते कि धन कमाये तो ढ़ेर हो।

बातें करते हैं। वह ढ़ेर तो पुण्य होवे तो होता है, नहीं तो मर जाए तो भी नहीं होता परन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि धन कमाये तो ढ़ेर हो। उसी प्रकार चैतन्यघन अनन्त गुणों का भण्डार, जिसमें मलिनता का अंश नहीं, ऐसे निर्मलानन्द की यदि दृष्टि कर तो जितने गुण हैं, उतनी ही पर्याय का समूह तेरी प्रगट दशा में आयेगा। आहाहा! भले पहले पूर्ण नहीं आवे। परन्तु एक के बाद एक। ऐसा लिया न?

पहली अनन्त गुण में से निर्मल पर्याय भले अनन्त आवे कम, परन्तु बाद में दूसरी आयेगी, फिर तीसरी आयेगी। एक के बाद एक बढ़ती-बढ़ती निर्मल पर्याय आयेगी। दूज उगने के पश्चात् पूर्णिमा... तीज, चौथ, पंचम हुआ ही करेगी। उसी प्रकार यह तीन लोक के नाथ को अन्दर यदि पकड़ा सम्यग्दर्शन से... आहाहा! तो जितने गुण की संख्या है, उतनी ही एक समय की पर्याय में अनन्त पर्याय का समूह निर्मल प्रगट होगा और वह एक समय में प्रगट होगा, दूसरे समय में विशेष निर्मल अनन्त समूह। वह अनन्त समूह, हों! तीसरे समय में अनन्त समूह, चौथे समय में अनन्त समूह। ऐसे पूर्ण-पूर्ण अनन्त गुण की पर्याय का समूह एक के बाद एक प्रगट होने पर पूर्ण दशा हो जाएगी। पूर्ण दशा होने पर तुझे केवलज्ञान होकर देह से छूट जाएगा। आहाहा! ऐसी बातें पागल जैसी लगे। परन्तु यह बहुत करते हैं। व्रत करना और तप करना और दान का तो आता नहीं इसमें। बापू! दान तो उसे कहा जाता है। सम्प्रदान। सम्प्रदान है न इसमें? यह सम्प्रदान नाम का गुण है। सुना है?

सम्प्रदान अर्थात् आत्मा में जितनी शक्तियाँ हैं, उसमें एक सम्प्रदान नाम की शक्ति है कि जिससे उन अनन्त गुणों में उस सम्प्रदान का रूप है कि जिससे उस अनन्त गुण के निर्मल के नाथ को जहाँ दृष्टि (में) लिया, इससे उसकी पर्याय में निर्मल पर्याय होकर स्वयं ली और स्वयं दी। स्वयं पात्र और स्वयं दाता। (ऐसी) सम्प्रदान है, शक्ति है सम्प्रदान की। वर्णन बहुत हो गया है। सम्प्रदान नाम का एक गुण आत्मा में है कि जो गुण ऐसे अनन्त गुण का धारक जो भगवान, उसे यदि तू पकड़े तो अनन्त गुण की पर्याय वर्तमान समय में तुझे प्रगट होगी सम्प्रदान दानरूप से। वह पर्याय लेनेवाला और अनन्त पर्याय होगी, उसे देनेवाला। तू का तू लेनेवाला और तू का तू देनेवाला। तू का तू पात्र और तू का तू दाता। आहाहा! दूसरे को आहार-पानी आदि देना, वह तो विकल्प है, कहते हैं।

मुनि को आहार। तीर्थंकर जैसे छद्मस्थ हों, उन्हें भी जब आहारदान दे तो भी वह शुभभाव है। संसार का अन्त आवे, वह साधन नहीं। आहाहा! वह शुभभाव है।

यहाँ कहते हैं कि निर्मल भण्डार भरा है, उसकी ओर यदि तेरी नजर स्वद्रव्य में जाए तो पर्याय का समूह प्रगट होगा। अन्दर ज्ञान और आनन्द आदि की निर्मलता ही भरी हुई है। क्या कहते हैं ? आहाहा! प्रभु! तेरी सत्ता में, तेरे अस्तित्व में, तेरे तत्त्व की मौजूदगी में अनन्त ज्ञानादि की निर्मलता भरी हुई है। कैसे जँचे ? यह धूल आदि (से) निवृत्त होवे तब... आहाह!

यहाँ कहते हैं, **अन्तर में ज्ञान और आनन्दादि की निर्मलता ही भरी है।** है, उसमें से आयेगा। प्राप्त की प्राप्ति है। कुँए में से जो होवे, हौज में उस प्रकार आयेगा। कुँए में मीठा पानी हो तो हौज में मीठा आयेगा। कुँए में खारा होवे तो समुद्र का तो हौज में खारा आयेगा। यह तो निर्मलानन्द का समुद्र भगवान है। आहाहा! उसकी श्रद्धा और ज्ञान में जा तो अन्तर में से अनन्त निर्मल की पर्याय का समूह तुझे एक के बाद एक यह तो प्रगट होगा। आहाहा! क्योंकि अन्दर तो ज्ञान और आनन्द आदि की निर्मलता ही भरी है। यह ८२ हुआ। ८६ ? अब ८६।

दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे ही विभावपरिणाम के समय ही तुझमें निर्मलता भरी है। तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर विभाव में तन्मय हो जाती है, वह तन्मयता छोड़ दे॥ ८६॥

इसके बाद ८६। **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े,...** यह लिखे हुए बोल हैं। दर्पण में जैसे सामने चीज़ अग्नि और बर्फ। अग्नि की ज्वाला ऐसे-ऐसे होती है और बर्फ का ढ़ेर पिघलता जाए, ऐसा यहाँ अन्दर दिखता है। परन्तु वह कहीं अग्नि और बर्फ वहाँ नहीं है। वह तो दर्पण की स्वच्छता है। दर्पण में दर्पण का अस्तित्व है। दर्पण में अग्नि और बर्फ का अस्तित्व-मौजूदगी नहीं है। आहाहा! भरतभाई! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। थोड़ी-थोड़ी बातें करते हैं, करते हैं दोनों भाई। ऐसा कोई कहता था। आहाहा!

दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े,... प्रतिबिम्ब क्यों कहा ? कि सामने चीज़ है, उसे बिम्ब कहा जाता है और दर्पण में स्वच्छता में जो ज्ञात हो, उसे प्रतिबिम्ब कहा जाता है। प्रतिबिम्ब अर्थात् जैसा वहाँ बिम्ब है, वैसा यहाँ हो, उसे प्रतिबिम्ब कहा जाता है। **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है,...** भले प्रतिबिम्ब पड़े परन्तु दर्पण तो उस समय निर्मल ही है। आहाहा! दर्पण कहीं अग्नि और बर्फ जैसा नहीं हो गया वहाँ। आहाहा! यह तो दर्पण का दृष्टान्त देकर फिर बात करते हैं, हों! भाई ने तो द्रव्यदृष्टि में डाला है कि दर्पण की पर्याय में यह सब दिखता है। दर्पण का दल है, वह तो पर्याय से भिन्न है। यह क्या कहा ?

दर्पण जो है, उसमें दो प्रकार। एक ऊपर की अवस्था-हालत और एक त्रिकाली कायम रहनेवाला दल। ध्रुव दल, दर्पण का ध्रुव दल एकरूप रहनेवाला और एक अवस्थारूप होना—परिणमना, वह उसकी पर्याय। वह सब जो ज्ञात होता है, वह पर्याय में स्वच्छतारूप स्वयं अपनी अवस्था है वह। दल में नहीं। अरे! अब ऐसी बातें। दल और दर्पण। भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं। प्रभु की महिमा तूने सुनी नहीं। आहाहा! विकल्पातीत, वाणी से अतीत, उसे किस प्रकार कहना ? उसे उपमा भी क्या देना ? उसकी उपमा उसे लागू पड़े। वह कैसा ? कि वह उसके जैसा।

ऐसा जो आत्मा **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है, वैसे...** यह तो दृष्टान्त हुआ। **विभावपरिणाम के समय ही...** भले कहते हैं कि विभाव विकार हुआ विकल्प, उस समय ही **तुझमें निर्मलता भरी है।** उस विकल्प में तू आ नहीं गया। आहाहा! वह दर्पण, अग्नि और बर्फ में नहीं आ गया। अग्नि की ज्वाला ऐसे-ऐसे हो और बर्फ पिघलता जाए, ऐसा यहाँ दिखायी दे, परन्तु वह दर्पण वहाँ गया नहीं तथा दर्पण में वह चीज़ आयी नहीं।

वैसे ही विभावपरिणाम के समय... विभाव परिणाम के समय विभाव स्वभाव में आया नहीं। उसी प्रकार स्वभाव विभाव में आया नहीं। ऐसी बातें हैं। यह बहिन के वचनामृत हैं। आहाहा! अरे! यह तो जिसे बापू! जन्म-मरण का अन्त लाना हो, उसकी बातें हैं। बाकी तो सब दिन गँवाते हैं। दिन गँवाते हैं। चले जाता है समय अवसर, बापू!

यहाँ कहते हैं, **विभावपरिणाम के समय...** जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़े, उस समय भी दर्पण निर्मल ही है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य-दर्पण, ज्ञायक की जलहल ज्योति दर्पण, उसे विकल्प के काल में भी, विभाव के काल में भी प्रभु तो वह निर्मलानन्द है। विभाव सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान (हो), वह भी स्वयं से हुआ निर्मल है। विभाव में वह ज्ञान गया नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह विभाव—विकल्प हो पुण्य-पाप का, उस समय भी प्रभु है, वह तो निर्मल ही है। निर्मलपना जो है, वह विभाव में आ नहीं गया और विभाव को जानता है, वह विभाव को नहीं जानता, उस विभाव सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय को अपनी और परसम्बन्धी का अपना ज्ञान, उसे जानता है। आहाहा! कठिन पड़े, भाई! मूल विचार नहीं, अभी फेरफार बहुत हो गया। बहुत हो गया है। यह बाहर का यह किया, उसका कर दो, उसका कर दो। दूसरे को समझा दो। दूसरे को कौन समझावे? प्रभु! आहाहा! वह तो वाणी के काल में वाणी आती है। आहाहा! विकल्प के काल में विकल्प आता है, तो भी निर्मल ज्ञान उस विकल्परूप हुआ नहीं। यहाँ भेदज्ञानी की बात है।

जिसने राग और पर से भगवान को भिन्न देखा है-चैतन्य को, उसके चैतन्य के ज्ञान में, आनन्द में विभाव ऐसा है, वह ज्ञान में दिखता अवश्य है। उस समय भी स्वयं निर्मल ही है। आहाहा! है? **दर्पण में जब प्रतिबिम्ब पड़े, उसी काल उसकी निर्मलता होती है,...** उसी प्रकार विभाव के समय भी प्रभु तो निर्मल (ही है), उसकी दृष्टि में निर्मलता आती नहीं। उसकी दृष्टि अकेली विभाव पर पड़ी है। आहाहा! दृष्टि में उस विभाव से हटाकर अन्दर में ले जाए तो विभाव के काल में भी स्वयं विभाव का ज्ञान अपने से हुआ, ऐसा निर्मल में स्वयं रहा है। वह विभाव में आया नहीं। आहाहा!

विभावपरिणाम के समय ही... समय ही। 'ही' है न? एकान्त नहीं करना न? एकान्त कहा है। उसमें ऐसा था—दर्पण की तरह प्रतिबिम्ब पड़े, उस समय ही उसकी निर्मलता होती है। उसी प्रकार विभावपरिणाम के समय ही। वस्तु स्वभाव सन्मुख यदि तेरी नजर जाए तो उस समय ही तू निर्मलानन्द ही है। विभाव की भूमिका की स्थिति के समय भी उसे जाननेवाला, तुझे जाननेवाला ऐसे ज्ञानरूप निर्मल ही है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर... यह न्याय दिया। निर्मल है, तथापि क्यों नहीं दिखता ? विभाव-विकार के काल में भी प्रभु तो निर्मल ही अन्दर है। वह क्यों नहीं दिखता ? और कैसे उसे निर्मल लक्ष्य में नहीं आता ? कि **तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर...** आहाहा ! क्या कहा यह ? पुण्य और पाप का विभाव हुआ, उस काल में भी आत्मा तो निर्मल ही है। परन्तु **तेरी दृष्टि चैतन्य की निर्मलता को न देखकर....** दृष्टि वैसी सृष्टि। तेरी दृष्टि, निर्मल है अन्दर वस्तु, उसे न देखकर **विभाव में तन्मय हो जाती है,...** जरा सूक्ष्म बातें हैं।

पुण्य और पाप के भाव के अस्तित्व के काल में भी आत्मा का अस्तित्व तो निर्मलरूप भरा हुआ पड़ा है। परन्तु उस निर्मलता पर दृष्टि न पड़कर मात्र विभाव पर दृष्टि होने से... आहाहा ! उसमें तन्मय हो जाता है। यह राग, वह मैं, राग का जाननेवाला भिन्न है मैं नहीं, मैं हूँ वह मैं नहीं और मैं नहीं वह मैं हूँ (—ऐसे तन्मय हो जाता है)। आहाहा ! ऐसा है। वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि के उपदेश की क्या बातें करना ? आहाहा ! उनकी बात तो गणधर रचें, उनके शब्दों के गहनता की बातें अगाध है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, निर्मल होने पर भी विभाव के काल में, विभाव के काल में निर्मल होने पर भी तेरी दृष्टि निर्मलता के ऊपर न होने से, विभावरूप तन्मय होकर मैं रागरूप हूँ— ऐसा तू तुझे मानता है और देखता है। बहुत कठिन काम। **निर्मलता को न देखकर विभाव में तन्मय हो जाती है,...** दूसरी भाषा से कहें तो विभाव के काल में द्रव्य को न देखकर, द्रव्यदृष्टि न करके पर्यायदृष्टि में विभाव में तन्मय हो जाता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा निर्मलानन्द का नाथ अन्दर प्रभु और विभाव, विभाव के स्थान में है। उसके काल में और उसके क्षेत्र में-स्थान में है। उसका क्षेत्र भिन्न है। यहाँ तो निर्मल है, उसका और स्व का जाननेवाला निर्मलानन्द प्रभु है। परन्तु निर्मल पर दृष्टि नहीं होने से उसे न देखकर विभाव को देखकर विभाव के साथ एकमेक हो जाता है, इसका नाम संसार है, इसका नाम मिथ्यात्व है और इसका नाम परिभ्रमण का कारण है। ऐसा है। आहाहा !

वह तन्मयता छोड़ दे। वापस कहकर तो छोड़ने का कहना है न ! उसका योगफल

तो यह है न! उल्टा समझाकर भी उल्टे में रखना है, ऐसा है? आहाहा! वह प्रभु! तेरे पास निर्मलानन्द भगवान अन्दर स्थित है न! उसकी नजर कर और विभाव में से नजरें छोड़। पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर। ऐसी भाषा संक्षिप्त ऐसी है। आहाहा! अज्ञानी द्रव्य की दृष्टि छोड़कर पर्याय अर्थात् विभाव की दृष्टि में तन्मय होता है, तब ज्ञानी विभाव की पर्याय दृष्टि छोड़कर त्रिकाल आनन्द का नाथ भगवान, उसमें—द्रव्यदृष्टि में तन्मय होता है। उसे समकिती और ज्ञानी कहने में आता है। समझ में आया? ८६। बाद में कौन सा है? १००। आहाहा! प्रभु! तू ऐसा एक बार निर्णय कर, कहते हैं।

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। 'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये' इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है॥ १००॥

मैं... यह अस्ति-मौजूदगी बतायी। प्रभु चैतन्य की अस्ति, प्रभु चैतन्य की मौजूदगी -सत्ता **अनादि-अनन्त...** मैं हूँ, उसकी आदि नहीं। हूँ, उसका नाश नहीं। मैं वर्तमान हूँ, वह मेरे त्रिकाली स्वभाव से खाली नहीं है। आहाहा! तीन काल लिये हैं। '**मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ**' आहाहा! अबद्ध कहा है न, १४-१५ गाथा में। १४ और १५ गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। '**जो पस्सदि अप्पाणं**' जो कोई आत्मा को अबद्ध देखता है, राग के सम्बन्ध रहित देखता है। अबद्ध कहते ही मुक्त देखता है, उसने जैनशासन देखा। १५ गाथा।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

१५वीं गाथा है। जिसने इस भगवान को मुक्त देखा। आहाहा! और एक कलश में तो 'मुक्तएव' शब्द पड़ा है। अबद्ध कहो या मुक्त कहो। कैसे बैठे? भगवान अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अबद्ध है, राग के सम्बन्ध के बन्ध रहित है। आहाहा! उसे अपने स्वरूप के स्व के स्वामीपने का सम्बन्ध है। उसे राग और पर के स्वस्वामीपने का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मैं... 'मैं' में अस्ति सिद्ध की है। ७३ गाथा में मैं की व्याख्या बड़ी की है। मैं एक्को। **अनादि-अनन्त मुक्त हूँ...** आहाहा! वस्तु है, वह तो सर्व आवरणरहित ही त्रिकाल है। वह तो एक समय की पर्याय में राग का, एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। वस्तु है, वह तो त्रिकाली निरावरण पड़ी है। सूक्ष्म पड़े परन्तु प्रभु! मार्ग यह है। यह करना पड़ेगा, प्रभु! दुःख में से छूटना होवे तो। बाकी तो दुःख भोग रहा है। आहाहा!

अनादि-अनन्त मुक्त हूँ... कैसे बैठे? मैं मेरी सत्ता, मेरी मौजूदगी, मेरी अस्ति अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। रमणीकभाई! ऐसा है भगवान! आहाहा! कहो, चिमनभाई! अनादि-अनन्त मुक्त हूँ। व्यापार सब लोहे का-फोहे का.. आहाहा! इतना बड़ा लम्बा जखीरा, व्यापार और धन्धा, पुत्र और नौकर... कहते हैं। मैं तो मुक्त हूँ। आहाहा! बापू! इसे दृष्टि का परिवर्तन कितना करना पड़ेगा। आहाहा! जिसे अपने नाथ के अतिरिक्त दूसरी सभी चीज़ों के अस्तित्व से दृष्टि को उठाकर। आहाहा! अपनी अस्तिवाला तत्त्व जो अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, उसकी अस्ति की नजर करके, उसकी अस्ति के अतिरिक्त दूसरी अस्तियों का अनन्त-अनन्त विस्तार पड़ा है, उन सब के ऊपर से दृष्टि उठा ली है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, परन्तु प्रभु! सुने। सुनते हैं, लोग सुनते हैं। शान्ति से सुनते हैं। ऐसी बातें, बापू! क्या करें? आकर पड़े हैं आड़े कहीं से कहीं। आहाहा! भगवान का विरह पड़ा और भरत में आकर पड़े हैं, बापू! यह सब भगवान के घर की बातें हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

मैं अखण्ड एक अनादि-अनन्त मुक्त हूँ और मुझे राग का सम्बन्ध का स्पर्श भी हुआ नहीं। अरेरे! आहाहा! बापू! दृष्टि पलटे, तब दृष्टि की सृष्टि। जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। यदि अनादि-अनन्त मुक्त ऐसी दृष्टि करे तो पर्याय में समकित की सृष्टि अर्थात् उत्पत्ति होती है और यदि विकार की दृष्टि करे तो विकार की सृष्टि अर्थात् विकार उत्पन्न होता है। आहाहा! जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। जैसी दृष्टि, वैसी उत्पत्ति। सृष्टि अर्थात् उत्पत्ति। आहाहा! यदि भगवान अनादि-अनन्त मुक्त हूँ, ऐसी दृष्टि कर प्रभु! आहाहा! तो सृष्टि अर्थात् तेरी पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द आदि का स्वाद आयेगा। वह उसकी सृष्टि है। यह दृष्टि, वैसी सृष्टि है। परन्तु यदि विभाव की दृष्टि की, पुण्य और पाप मैं हूँ, ऐसी दृष्टि की

तो उसकी सृष्टि मिथ्यात्व की उत्पन्न होगी। आहाहा! समझ में आया? भोगीभाई! यह ऐसी बातें हैं।

'मैं अनादि-अनन्त मुक्त हूँ'—इस प्रकार शुद्ध आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से... देखा! ऐसे शुद्ध भगवान आत्मद्रव्य पर दृष्टि देने से **शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।** सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। दूसरे किसी बाह्य के उपाय से प्रगट नहीं होता। आहाहा! **द्रव्य तो मुक्त है,...** देखा! अब लिया। वस्तु तो मुक्त है। सर्व आवरणरहित है। अखण्डानन्द प्रभु अन्दर है। आहाहा! चैतन्यज्योति जलहल ज्योति जिसकी सत्ता की अस्ति मुक्तस्वरूप है वह। मात्र माना है कि राग से मैं बन्ध में हूँ। वह उसकी मान्यता है। वह मान्यता भी द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए कहते हैं मैं—**'द्रव्य तो मुक्त है, मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आये'...** अरर! दृष्टि का जहाँ विषय त्रिकाल है, वहाँ दृष्टि पड़ी। अब मुक्ति की पर्याय आनी हो तो आवे, मैं तो द्रव्य मुक्त ही हूँ। आहाहा! दृष्टि में जो मुक्त हूँ, ऐसा जहाँ आया तो उसकी पर्याय मुक्त तो होगी परन्तु उस पर उसका जोर नहीं है। है? आहाहा! मुक्ति की पर्याय को आना हो तो आवे।

इस प्रकार द्रव्य के प्रति आलम्बन और पर्याय के प्रति उपेक्षावृत्ति होने पर स्वाभाविक शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। प्रगट हुए बिना नहीं रहती। इसका नाम आलम्बन और इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१५) चैत्र कृष्ण १०, रविवार, दिनांक २२-४-१९७९
वचनामृत - १०५, १३६, १३८ प्रवचन-७६८ (DVD 17)

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है॥ १०५॥

१०५, १०० आ गया, १०५ है। सूक्ष्म विषय है, प्रभु!

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। आहाहा! क्या कहते हैं? प्रभु! यह आत्मा अन्दर द्रव्य जो वस्तु है, उसने तो ज्ञायकपना-जाननापना-देखनापना, आनन्दपना—ऐसा जो ज्ञायकपना, वह द्रव्य का वेश और द्रव्य का स्वरूप है। जरा सूक्ष्म बात है। बहिन तो लड़कियों में बोल गयी होंगी। वहाँ तो परिचय बहुत न! उसमें अन्तर की बात थोड़ी आ गयी है।

इस **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही...** आहाहा! यह ध्रुव ज्ञायकपना ही एक उसका वेश अर्थात् वस्तु है। परमार्थ से तो एक ज्ञायकपना ही धारण (कर) रखा है। अर्थात् क्या? **ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** आहाहा! भगवान आत्मा को कोई पर्याय-राग की पर्याय या क्षयोपशम की पर्याय... आहाहा! या क्षायिक की अवस्था का वेश भी ज्ञायक में नहीं है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! यह नित्यानन्द प्रभु ज्ञायकपना ही जिसमें अनादि-अनन्तरूप से धारण कर रखा है, जिसमें परमार्थ से कोई पर्याय वेश नहीं है। अर्थात् क्या?

ज्ञायकपने का जो तत्त्व—द्रव्य है, उसमें किसी प्रकार की पर्याय उसमें नहीं है।

आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो प्रभु! वे तो भिन्न रहे। कर्म भिन्न रहे, राग भिन्न रहा परन्तु अन्दर किसी प्रकार की पर्याय, ऐसा लिया है न। कोई पर्यायवेश नहीं। आहाहा! प्रभु! द्रव्यदृष्टि सम्यग्दर्शन का विषय—प्रथम धर्म की दशा का विषय जो द्रव्य ज्ञायकभाव, उसने कोई पर्यायवेश धारण नहीं किया है। सम्यग्दर्शन की पर्याय भी ज्ञायक का वेश नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! अनन्त काल से सर्वज्ञ परमेश्वर जो हुए वे द्रव्यस्वभाव में से हुए हैं। वह द्रव्यस्वभाव ऐसी गम्भीर चीज़ है कि जिसमें दया, दान, पुण्य, पाप के विकल्प तो, वेश तो उसे नहीं परन्तु उसमें धर्म की पर्याय का—उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय भी ज्ञायकपने के भाव में उस पर्याय का वेश नहीं है। ऐसी बात है। यहाँ तो अभी बाहर का कुछ कर दूँ, यह कर दूँ...

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! आहाहा! तेरी चीज़ जो अन्दर है, उसने उसकी अवस्था में जो पर्याय होती है, उस पर्याय का वेश भी द्रव्य ने धारण नहीं किया है। पर्याय, पर्याय में रहती है। अवस्था, अवस्था में रहती है और अवस्थायी-अवस्थायी अवस्थायी में है। अवस्थायी अवस्था त्रिकाल जो है अवस्थायी, उसमें वर्तमान अवस्था, उस त्रिकाली अवस्थावन्त वस्तु में वह अवस्था नहीं है। जरा सूक्ष्म है, भाई। आहाहा!

जहाँ दृष्टि रखनी है; सम्यग्दर्शन की पर्याय, धर्म की प्रथम शुरुआत, उस पर्याय का वेश भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! धीरुभाई! यह तो बहुत धीरज से (समझने की वस्तु है)। आहाहा! भगवान! यह तो पूरी उसकी चीज़ क्या है और उसमें दृष्टि देने से ही सम्यग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त कोई सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कोई दूसरा उपाय है नहीं। एक सम्यग्दर्शन की जो पर्याय, उसका विषय जो ज्ञायक द्रव्यस्वभाव वस्तु सत्ता अस्तिरूप त्रिकाली एकरूप रहनेवाला, उसको विषय करनेवाली सम्यग्दर्शन पर्याय। विषय अर्थात् ध्येय। उस पर्याय का वेश भी द्रव्य में नहीं है। कठिन बात है। आहाहा! कहीं निवृत्ति नहीं मिलती। अन्दर भगवान पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु ध्रुव जिसकी धातु। अर्थात् कि जिसने ध्रुवपना धार रखा है, उसमें अध्रुव ऐसी पर्याय, वह ध्रुव में नहीं है। भाषा समझ में आती है? आहाहा! ऐसा उपदेश है। भगवान! मार्ग कोई अलौकिक है, बापू! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर की दिव्यध्वनि में आया हुआ सार, वह यह वाणी है।

कहते हैं, **ज्ञायक तत्त्व को...** ज्ञायक तत्त्व तो है। त्रिकाली जाननस्वभाव से भरपूर भगवान अनन्त गुण के ध्रुव को धारनेवाला प्रभु, परन्तु उस ध्रुव को धरनेवाला ध्येय-आधेय और आधार का भी जिसमें भेद नहीं। अनन्त गुण, वह आधेय है, रहनेवाले हैं और अनन्त गुण जिसमें रहते हैं, वह आधार है—ऐसा जो आधार और आधेय भी जिसमें सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा अन्दर, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के श्रीमुख से यह वाणी आयी थी। धर्मी स्वयं समझकर इस प्रकार से वाणी भगवान की ओर से कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वस्तु धर्म।

ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,... आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** दो बातें कीं। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु जो है, उसकी आदि नहीं; है, उसका नाश नहीं; है, उसमें ध्रुवता से भरपूर है। है, ऐसे तत्त्व को कोई वर्तमान अवस्था-हालत उसे नहीं है। **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** दूसरा बोल। धीरे से सुनना, भाई! आहाहा! यह तो जगत से निराली चीज़ है, नाथ!

भगवान अन्दर विराजता है, प्रभु! वह पूर्ण ज्ञायक तत्त्व से भरपूर तत्त्व है, ध्रुव है। उसे उसमें कोई पर्याय / अवस्था का... क्षायिक समकित, केवलज्ञान की पर्याय, वह भी ध्रुव में उस पर्याय का वेश नहीं है। आहाहा! ऐसा कब सुना है? धीरुभाई! धीरुभाई को तो पहले से प्रेम है। आहाहा! यह तो ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

अन्दर वस्तु जो, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर के ज्ञान में सर्वज्ञता में यह तत्त्व ज्ञात हुआ है, वह तत्त्व त्रिकाली है और त्रिकाली तत्त्व है, उसकी वर्तमान का वेश त्रिकाली को नहीं है। और वह वेश त्रिकाली को नहीं; वह तो ज्ञायकवेश है। वह सम्यग्दृष्टि को ध्येय में यह लेना है। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन प्रथम प्रगट करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी शुरुआत करनी हो। आहाहा! तो उसका ध्येय वह ज्ञायक त्रिकाल है। उसमें यह प्रगट की हुई पर्याय भी उसने धारण नहीं कर रखी है। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय परमार्थ से तो उसमें वेश नहीं, परन्तु कोई पर्याय अपेक्षा नहीं। किसी पर्याय की अपेक्षा चीज़ को टिकने के लिये नहीं है। त्रिकाली ज्ञायक तत्त्व जो टिकता है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे किसी पर्याय की अपेक्षा नहीं कि अमुक पर्याय होवे तो ही

वह त्रिकाली टिक सकता है और अमुक न हो तो नहीं टिक सकता, ऐसी कोई अपेक्षा ज्ञायक त्रिकाली तत्त्व में कोई बाह्य की अपेक्षा पर्याय की उसे है नहीं। बाह्य की अर्थात्? बाह्य क्यों कहा गया? कि ज्ञायकतत्त्व, वह अन्तर तत्त्व है और पर्याय है, वह बाह्य तत्त्व है।

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार की पहली गाथा, ३८ गाथा। शुद्धभाव की पहली। शान्तिभाई के घर में लिखायी है। रामजीभाई ने।... तीन गाथा लालचन्दभाई ने कही। यह ज्ञायकभाव भगवान जो है, वह बन्ध और मोक्ष को कर्ता नहीं। जैसे नेत्र / आँख है, वह पर को जानने पर कुछ कर्ता और भोक्ता नहीं है। पर को जानने पर कर्ता और भोक्ता नहीं है। आहाहा! उसी प्रकार भगवान ज्ञायक आत्मा... आहाहा! पर को तो कर्ता-भोक्ता नहीं, राग को भी कर्ता-भोक्ता नहीं, परन्तु पर्याय को भी करता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो ठेठ की बातें हैं। आहाहा! इस परीक्षा में पास होवे, उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं और उसके भव का अन्त आ जाए, भाई! आहाहा! उसे अन्तर में भव के अन्त का भनकार बजता है। भव के अन्त का भनकार बजता है। अब संसार का अन्त आया और अब हम अल्प काल में हमारे स्वदेश में पूर्णरूप से पहुँच जाएँगे। आहाहा!

विकल्प में जब तक वर्तता है, चाहे तो शुभराग दया, दान का हो परन्तु वह विभाव है। वह हमारा देश नहीं। वह हमारा स्वरूप नहीं, वह हमारा वेश नहीं, उसकी हमें अपेक्षा नहीं। आहाहा! उसकी तो नहीं... आहाहा! परन्तु निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसकी भी ध्रुव को टिकने के लिये उस पर्याय की अपेक्षा नहीं। भाषा तो सादी परन्तु, बापू! भाव तो जैसा है, (वैसा है)। पंकजभाई! एकाक्षरी नाम आये है तुम्हारे दोनों के। ऐसा याद आया है। ऐई! क्या? पंकज—तीन अक्षर। ऊपर कानोमात्रा कुछ नहीं। भरत—कानोमात्रा कुछ नहीं। यह और दोपहर का... ऐसा विचार आया था वहाँ, हों!

इसी प्रकार यह निरक्षरी वाणी भगवान की ॐ निकलती है। वह ओम ध्वनि। 'ॐ ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे,...' उसमें से आगम रची 'भविक जीव संशय निवारे।' योग्य प्राणी हों तो मिथ्यात्व को टालते हैं और आत्मा को प्राप्त करते हैं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं कि वह आत्मा को पावे, वह आत्मा है कैसा? कि जिसे कोई पर्याय तो नहीं, परन्तु

उसे किसी पर्याय की अपेक्षा नहीं। प्रभु! कान से सुनो। यह एक बात कोई है। तीन लोक के नाथ के घर की अमर की बातें हैं। यह अमर होने की बातें हैं, प्रभु! यह अमर आत्मा है। आहाहा! त्रिकाली अमर है। आहाहा! उसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है।

आत्मा मुनि है या केवलज्ञानी है, वह पर्याय है। सच्चे सन्त मुनि जो हैं, वह भी एक पर्याय है। केवलज्ञान है, वह भी एक पर्याय है। आहाहा! और सिद्ध है, वह भी एक पर्याय है। ऐसी बात तीन लोक के नाथ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती, बापू! आहाहा! प्रभु की ॐध्वनि का पुकार है। प्रभु! तू मुनि और केवलज्ञान और सिद्ध की अवस्था... आहाहा! ऐसी एक भी पर्याय की अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। आहाहा! एक १०५ पेरेग्राफ है। आहाहा! भाषा तो सादी है न, प्रभु! यह तो सबको समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये ऐसा नहीं है और यह समझनेवाले को समझाते हैं न?

एक बार दृष्टान्त दिया नहीं था? किसी वृद्ध व्यक्ति को प्यास लगी हो तो घर में पाँच हजार का घोड़ा हो या दो हजार का बैल हो, उसे ऐसा कहे कि पानी लाना? क्योंकि वह समझता है कि मैं कहूँगा, उसे यह समझ नहीं सकेगा। आठ वर्ष की लड़की हो तो (ऐसा कहे), बहिन लीली! पानी लाओ। तो वह समझेगी पानी लाने का। उसे वह कहेगा।

इसी प्रकार यहाँ आचार्य, सन्त, तीर्थंकर यह जो बात करते हैं, वह शरीर को नहीं कहते, वह राग को नहीं कहते। आहाहा! उसे जाननेवाला भगवान, उसको यह बात करते हैं। आहाहा! प्रभु! तू जाननेवाला है, ऐसी जो तुझे पर्याय प्रगट हो, उस पर्याय की भी जाननहार ज्ञायक को अपेक्षा नहीं है। ऐसा वह तत्त्व है। आहाहा! क्योंकि जो सत् है, सत् है... आहाहा!

प्रवचनसार में तो यहाँ तक लिया है। १०१ गाथा प्रवचनसार है। जो सम्यग्दर्शन आदि पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पन्न होती है, उसे ध्रुव और व्यय की अपेक्षा नहीं है। यहाँ तो ध्रुव को पर्याय की अपेक्षा नहीं है। समझ में आये उतना समझना, प्रभु! यह तो वीतराग के घर की अमृत के कमरे खुलते हैं। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तू एकबार सुन। जो अन्दर पर्याय नहीं—ऐसा जो द्रव्य, उसमें जो पर्याय होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि की पर्याय होती है, उस उत्पाद को उसके ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। उस उत्पाद को पूर्व के व्यय की

अपेक्षा नहीं है। उत्पाद को उत्पाद की अपेक्षा है; उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। अरे! ऐसा कौन माने?

यहाँ तो कहते हैं कि ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। वहाँ भी ऐसा कहा है। १०१ गाथा है। प्रवचनसार, ज्ञेय अधिकार। पहला ज्ञान अधिकार है, दूसरा ज्ञेय अधिकार है, तीसरा फिर चरणानुयोग अधिकार है। सब है न, बापू! सब देखा है न। यहाँ कहते हैं, केवलज्ञानी और मुनि और सिद्ध... आहाहा! प्रभु! ये तीनों पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है। ज्ञानगुण जो है ज्ञायक, वह त्रिकाल है। परन्तु प्रगट हो, वह पर्याय है। प्रगट हो, वह पर्याय है। ज्ञानगुण और ध्रुव, वह प्रगट नहीं होता; वह तो त्रिकाल है। और केवलज्ञान प्रगट होता है, तो वह प्रगट होता है, वह एक समय की पर्याय है। आहाहा! वह पर्याय दूसरे समय नहीं रहती। ऐसी होगी, परन्तु वह नहीं। ऐसी होगी, परन्तु वह नहीं। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। भगवान तीन लोक के नाथ महाविदेह में विराजते हैं। आहाहा! वहाँ यह बात मूसलाधार चलती है। उसका यह तो थोड़ा नमूना आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : बात एक ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु एक ही है। आहाहा! धीमे-धीमे बैठेगी। न बैठे, ऐसी नहीं है, प्रभु! अनन्त जीव ज्ञायक के आश्रय से, जिसे पर्याय की अपेक्षा नहीं, जिस पर्याय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं, ऐसे त्रिकाली ध्रुव को पर्याय की अपेक्षा नहीं। ऐसे ध्रुव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अनन्त (जीव) मोक्ष को पधारे हैं। उसमें तुझे मिलना हो तो आ! आहाहा!

ज्ञायक वस्तु जो है... तेरी नजर पर्याय के ऊपर नहीं होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रभु! नजरों में तो निधान ज्ञायक जो त्रिकाल है, वह नजर का विषय है, तथापि उस विषय में नजर नहीं है। आहाहा! जिस नजर ने निधान को देखा, उस निधान में नजर नहीं है। आहाहा! भरतभाई! सब समझना पड़ेगा, हों! थोड़ा-थोड़ा। अब थोड़ा-थोड़ा रस लगा है। अरे! भगवान! सब भगवान है न, प्रभु! आहाहा! कौन अधूरा और कौन अपूर्ण? पूर्ण ज्ञायकभाव से भरपूर प्रभु है न!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरे ध्रुव को टिकने के लिये निर्मल पर्याय की भी जिसे

अपेक्षा नहीं। राग की तो अपेक्षा नहीं, संयोगी दूसरी चीज़ को रहने के कारण से ध्रुव है, ऐसा तो नहीं परन्तु उसे निर्मल पर्याय की भी जिसे अपेक्षा नहीं, ऐसा जो भगवान ज्ञायकभाव, प्रभु, उसे यहाँ ध्रुव और सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। समझ में आया? यह तो माल है, बापू! माल तैयार करके दिया है। खावे इतनी देर है इसे। आहाहा! है? १०५।

'मुनि है'... आत्मा मुनि है ध्रुव। **या 'केवलज्ञानी है'...** ध्रुव। **या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है।** बहुत माल आ गया, बापू! समझ में आया? प्रभु! तेरा तत्त्व सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ पुकारते हैं। आहाहा! उनकी दिव्यध्वनि, दिव्य अर्थात् प्रधान देव को बतानेवाली दिव्यध्वनि, चैतन्यदेव को बतलानेवाली दिव्यध्वनि। उसमें यह आया, प्रभु! तेरे आत्मा को हमारी दिव्यध्वनि की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु दिव्यध्वनि से ज्ञात हुई तेरी ज्ञान की पर्याय, उसे भी अपेक्षा नहीं परन्तु द्रव्य के स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, उसकी भी टिकनेवाले तत्त्व को नहीं टिकनेवाले तत्त्व की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! भाषा तो सादी है, प्रभु!

हम तो सबको भगवान देखते हैं। भगवान है अन्दर। ऊपर का न देख, नाथ! तेरी चीज में तेरी चीज को पर्याय नहीं। आहाहा! तुझे देखना और जानना हो तो प्रभु! जाननेवाला तुझे ऐसा देखता है कि तेरी वस्तु में तो पर्याय भी नहीं है। आहाहा! तू तो सिद्धस्वरूपी ध्रुव है। सिद्ध तो एक पर्याय है। यहाँ तो सिद्धस्वरूपी स्वभाव है। सिद्ध भी एक पर्याय है। अरेरे!

एक बार मथुरा गये थे। सभा तो बड़ी भरती है। पण्डित थे। उसमें इतनी बात की, प्रभु! यह केवलज्ञान एक समय की पर्याय नाशवान है। शोर मचा गये। बापू! केवलज्ञान तो पर्याय है। नियमसार के शुद्धभाव अधिकार में पहली ३८ वीं गाथा में **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम'** शान्तिभाई! है तुम्हारे घर में? ऐई..! पंकजभाई! तुमने रखा है न तुम्हारे कमरे में? **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम'** यह जीव की एक समय की पर्याय, मुनिपने की पर्याय। मुनि अर्थात् सच्चे सन्त जिन्हें आनन्द का उफान आया। इस पर्याय की भी उसके द्रव्य की अपेक्षा नहीं। आहाहा! कठिन बातें हैं। **'जीवादिबहित्तच्चं'** है। पर्याय है मुनिपना, केवलज्ञान और सिद्ध, वह बहिर्तत्त्व है क्योंकि वह पर्याय में-अवस्था में है, वह बहिर्तत्त्व है और अन्तर तत्त्व है उसमें उस पर्याय का अभाव है। समझ में आया?

यह एक गाथा में है, नियमसार। **'जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पो अप्पा'**। आहाहा! थोड़ा परन्तु परमसत्य प्रभु के घर का सुन, प्रभु! अमरगढ़, ऐसा जो भगवान अमरगढ़। उसे पर्याय स्पर्श नहीं करती, ऐसा वह अमरगढ़ है। आहाहा! आहाहा! ऐसे तत्त्व की प्रभु तुझे महिमा नहीं आयी और बाहर की महिमा हटी नहीं। या तो पैसे की, या तो शरीर की और या तो विषयसुख की, या तो पाप के परिणाम की, या तो पुण्य के परिणाम की और या अन्दर क्षयोपशम किंचित् ज्ञान का-धारणा का उघड़ा, उसकी महिमा के समक्ष भगवान वह पर्याय रहित है, उसकी महिमा प्रभु! तुझे नहीं आयेगी। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं।

ऐसी एक ही पर्याय-... है? उसकी **अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है।** आहाहा! वह **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।** जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला अर्थात् जानने की दशावाला, ऐसा नहीं। जाननेवाला अर्थात् जानने की दशावाला नहीं। जाननेवाला अर्थात् ध्रुव। ज्ञायकतत्त्व जो दल पूरा जो तल। एक समय की पर्याय के पास तल पड़ा, तल। वह ध्रुव तल, वह ज्ञायक; वह ज्ञायक अर्थात् जानता है, ऐसा नहीं। जानने की तो पर्याय हो जाती है। जानने की पर्याय की भी ज्ञायक तत्त्व को अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा बैठना।

यह तो बहिन के शब्द हैं और वचनामृत बाहर आ गये हैं। यह तो थोड़ा किसी समय बोले हैं। नहीं तो बाहर प्रसिद्ध भी नहीं होते। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में अनुभव में कहीं उन्हें चैन नहीं पड़ता बाहर। उनका सम्मान २०-२० हजार के हीरों से (तो) कुछ सुहावे नहीं, सुहावे नहीं। मुर्दे की तरह खड़े रहें। उनकी इस वाणी में परमात्मा जो त्रिलोकनाथ महाविदेह में वहाँ थे, वहाँ से आये और वहाँ का मार्ग जो था, वह अन्तर में से आया, तब यह वाणी निकली है। आहाहा! विश्वास बैठना बहुत कठिन है।

यहाँ तो कहते हैं, किसी भी ऐसी मुनि की, सिद्ध की या केवलज्ञान की पर्याय वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को उसकी अपेक्षा होवे तो वह ध्रुव टिके, ऐसा नहीं है। **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।** ध्रुव... ध्रुव नित्यानन्द प्रभु। वह तो नित्यानन्द का वेश नित्यानन्द में। नित्यानन्द को अनित्य का वेश है नहीं। वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी कोई दूसरे क्रियाकाण्ड से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा तीन

काल-तीन लोक में है नहीं। समझ में आया? १०५ हुआ। इसमें माल-माल आ गया। अब कितना है?

मुमुक्षु : १३६

पूज्य गुरुदेवश्री : १३४ न?

मुमुक्षु : १३६

सम्यक्त्व से पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो, तथापि पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है॥१३६॥

१३६। अब यहाँ एकदम बात माल की कही गयी है। **सम्यक्त्व से पूर्व भी...** अब यह कहते हैं, ऐसा जो ज्ञायकभाव ध्रुव प्रभु, जिसे कोई मुनि और केवलज्ञान की अपेक्षा भी नहीं। ऐसी चीज़ को अनुभव करने पर समकित होता है। तब भी उस समकित पहले? इसमें यह आया। **सम्यक्त्व से पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है,...** समकित पहले भी ज्ञान द्वारा, विकल्प द्वारा यह वस्तु अखण्ड ज्ञायक है, जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं तो पर्याय की अपेक्षा तो नहीं। ऐसा निर्णय समकित होने से पहले विचार द्वारा निर्णय हो सकता है।

'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। अभी पक्का अर्थात् है तो विकल्प। पक्का अर्थात् जैसा है, वैसा निर्णय होता है, ऐसा; इसलिए पक्का कहा है। अभी अनुभूति नहीं। परन्तु जैसी वह वस्तु ज्ञायक है, ऐसा जिसने ज्ञान के विकल्प के विचार में रागसहित विचारधारा में, जैसा उस वस्तु का स्वरूप है वैसा, उसे निर्णय हो सकता है। यह आत्मा, ऐसा पक्का निर्णय होता है। उस प्रकार का पक्का। अर्थात् कि सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा ध्रुव, ऐसा विकल्प द्वारा भी निर्णय हो सकता है, ऐसा कहते हैं। आँगन में आया। जवाहरात की दुकान में प्रवेश करना है, उससे पहले आँगन में खड़ा, यह जवाहरात है और यह कोई महा अरबोंपति के हीरे इसमें पड़े हैं, ऐसा वह आँगन में खड़ा निर्णय कर सकता है।

इसी प्रकार इस भगवान आत्मा के अन्दर में प्रवेश से पहले अन्दर आनन्द

जवाहरात भरे हैं, उसमें प्रवेश से पहले भी रागमिश्रित विचार से भी उस प्रकार का पक्का निर्णय हो सकता है। उस प्रकार का। समझ में आया? कि जिससे मात्र उसे अन्दर में ढलना बाकी रहे। ऐसा विकल्प निर्णय हो जाए कि मात्र उसे अन्तर में ढलना बाकी रहे, इतना निर्णय हो जाता है। यहाँ ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यक्त्व से पूर्व भी... 'भी' ऐसा आया है। बाद में हो, उसकी बातें क्या करना, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन। बापू! वह तो अलौकिक चीज़ें है। आहाहा! लाखों-करोड़ों में किसी को उत्पन्न होता है, तथापि उसका निर्णय किया जा सके, ऐसा तो लाखों को है। लाखों का है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप ऐसा है। निर्णय विकल्प से निर्णय किया जा सकता है कि यह आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, ऐसा विकल्प से निर्णय किया जा सकता है और फिर विकल्प तोड़कर अनुभव किया जा सकता है। समझ में आया? आहाहा! क्या करना यह बाहर का, वह तो कहीं इसमें आता नहीं। आहाहा!

'यह आत्मा' ऐसा पक्का... यह आत्मा ज्ञायक आत्मा—ऐसी अनुभूति होने से पहले सम्यग्दर्शन होने से पहले, उसके सन्मुख में सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व में है परन्तु समकित सन्मुख। उसकी बात है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। है मिथ्यात्वी परन्तु अब समकित -सन्मुख है। उसमें अन्दर जाना चाहता है। है उसकी भूमिका में अभी विकल्प, राग परन्तु राग द्वारा भी यह आत्मा सर्वज्ञ ने कहा, परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा ने कहा, ऐसा समकित पहले भी रागमिश्रित विचार द्वारा (पक्का निर्णय हो सकता है)। १३वीं गाथा में कहा है। नय, निक्षेप और प्रमाण से उसका निर्णय हो सकता है, तथापि वह फिर अभूतार्थ है, उसे निकाल डालकर अन्दर में जा। समझ में आया? १३वीं गाथा है न?

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥१३॥

आहाहा! भले अभी अनुभूति न हुई हो। अर्थात् कि अन्तर के आत्मा के आनन्द का स्वाद न आया हो। अनुभूति अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन अर्थात् उस प्रतीति

की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन। ज्ञान की अपेक्षा से उसे अनुभूति के आनन्द का स्वाद। अन्तर में अनुभूति, अनुभूति। जैसा वह स्वरूप है, वैसी दशा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आया न हो तो भी... आहाहा! पहले विकल्पसहित का निर्णय होता अवश्य है। आहाहा! ७३ गाथा में कहा है न? ७३ में कहा है। ७३ में है, कि पहले विकल्प है अभी, एकदम अन्दर जा सका नहीं परन्तु विकल्प द्वारा '**अहमेक्को**' पर्याय के शुद्ध परिणमन के षट्कारक से भी अनुभूति ऐसा भगवान आत्मा भिन्न है, ऐसा विकल्प द्वारा तू पहले निर्णय कर, ऐसा वहाँ आया है। ७३ में आया है। आहाहा!

पश्चात् भँवर में जैसे जहाज उलझ गया हो। भँवर, भँवर, भँवर पानी के भँवर में जहाज अटक गया हो। वह भँवर छूटे तो जहाज छूट जाए; उसी प्रकार पहले विकल्प द्वारा अकेला त्रिकाली शुद्ध हूँ। एक समय की पर्याय में षट्कारक की निर्मल दशा से भी पार हूँ—ऐसा विकल्प द्वारा निर्णय, प्रभु! पहले तू कर। ऐसा वहाँ कहा है। उस भँवर में जहाज है परन्तु निर्णय कर कि विकल्प के भँवर में भी यह आत्मा है। आहाहा! पश्चात् वह भँवर छूट जाता है। यहाँ विकल्प छोड़ता है, तब निर्विकल्प अनुभूति होती है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इस मुम्बई जैसे शहर में बात तो आयी है, बापू!

भगवान! तेरी नात की जाति ऐसी है, उसका राग अर्थात् विकल्प के संग से भी निर्णय तो कर। परमात्मा का ऐसा फरमान है व्यवहार से। जैसा वह प्रभु है, वैसा विकल्प—राग के मिश्रित विचार द्वारा, राग के मिश्रित विचार द्वारा। ज्ञान तो शामिल है। निर्णय है, इसलिए ज्ञान तो शामिल है परन्तु राग के मिश्रित द्वारा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ ऐसा है, ऐसा प्रभु! पहले निर्णय हो सकता है। और पहले विकल्पसहित का निर्णय होता अवश्य है। आहाहा! अन्दर अनुभूति में जाने से पहले सम्यग्दर्शन में अन्दर में परमात्मा का साक्षात्कार होने से पहले, प्रभु का अन्दर साक्षात्कार होना, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। क्योंकि अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान डोल रहा है। पानी में जैसे समुद्र डोल रहा है अकेला, वैसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से अन्दर हिलोरें मार रहा है। आहाहा! ऐसा पूर्णानन्द का नाथ तेरा स्वरूप, एक बार विकल्प से तो निर्णय कर। आहाहा! रागमिश्रित विचार से तो निर्णय कर।

पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है। क्यों?—कि सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा और इसके अतिरिक्त दूसरे आत्मा कहते हैं, उससे यह अलग प्रकार क्या है? ऐसा विकल्प द्वारा निर्णय पहले आता अवश्य है। दूसरे सर्वज्ञ परमेश्वर आत्मा कहते हैं और इनके अतिरिक्त दूसरे आत्मा कहते हैं। बहुत प्रकार विकल्प की विपरीत लोग कहते हैं। उससे भिन्न करने के लिये रागमिश्रित विकल्प वीतराग कैसा आत्मा कहते हैं, उसके लिये यह भूमिका पहले आती तो अवश्य है। आहाहा! है? **सहित निर्णय होता तो है।** तथापि उसे छोड़कर पश्चात् जब भँवर को छोड़कर जहाज पृथक् पड़ जाता है, जब तक यह विकल्प और रागमिश्रित विचार है, तब तक आत्मा वहाँ अटका रहा हुआ है। परन्तु वह पहले आये बिना रहता नहीं।

यह दुकान जवाहरात की है और यह दुकान ज्वार की है और यह दुकान कपास की है, इस प्रकार दूसरे से भिन्न पाड़ने के लिये जवाहरात की दुकान का विकल्प अर्थात् राग द्वारा निर्णय आता है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा कहते हैं और अन्य आत्मा कहते हैं, इनका अन्तर करने से पहले रागमिश्रित विचार आत्मा का आता है। धीरुभाई! धीरुभाई ध्यान तो बराबर रखते हैं। आहाहा!

समझ में आये उतना समझना, प्रभु! तेरी वस्तु की महिमा का पार नहीं है, नाथ! तू कौन है? कितना है? कहाँ है? आहाहा! उसकी महिमा का माहात्म्य क्या है, प्रभु! वह कहीं वाणी द्वारा कहा जा सके, ऐसा नहीं है। और विकल्प द्वारा भी वह अनुभव में आ सके, ऐसा नहीं है। तथापि प्रथम, दूसरे सर्वज्ञ के अतिरिक्त आत्मा की बातें करते हैं, उससे परमात्मा ने आत्मा कहा उसे, दूसरों की अपेक्षा भिन्न पाड़ने के लिये पहले विकल्प से यह आत्मा भगवान कहते हैं, ऐसा है, ऐसा इसे निर्णय आता अवश्य है, तथापि वह पुण्य बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? पश्चात् उससे भिन्न पड़ जाए। लो, १३६। पश्चात्? १३८। है नीचे, लाइन की हुई है।

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेव ने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकार से समझाते हैं। पूज्य गुरुदेव के वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना। भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। 'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'—उसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे॥१३८॥

रुचि रखना;... क्या कहते हैं ? पूर्णानन्द के नाथ की पहले रुचि रखना। यदि रुचि होगी तो वीर्य रुचि अनुयायी काम करेगा। जिसमें जिसकी रुचि, उसमें उसका वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ काम किये बिना नहीं रहेगा। जिसे जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसकी आवश्यकता की ओर उसका वीर्य ढले बिना नहीं रहेगा। समझ में आया ? इसी प्रकार पहले रुचि रखना। आहाहा ! पर नहीं, शरीर नहीं, राग नहीं, एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई ! अन्तर की कला से आत्मा की प्राप्ति, बापू ! यह कलायें कोई अलौकिक हैं। यह इन्द्रिय से ज्ञात नहीं होता। इन्द्रिय से जान सकनेवाला नहीं, इन्द्रिय का वह प्रत्यक्ष विषय नहीं। दूसरे के अनुमान द्वारा से जाना जा सके, ऐसा नहीं। स्वयं अकेला अनुमान से जाने, ऐसा नहीं। यह पाँच बोल हैं। बीस बोल हैं, उसमें पाँच बोल कहे। है तो बीस बोल कण्ठस्थ है सब। उसमें छठा बोल यह है, प्रत्यक्ष ज्ञाता स्वभाव अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा ! बीस बोल है न ? अलिंगग्रहण। प्रवचनसार १७२ गाथा। है न सब है, भाई ! शास्त्र में तो पार नहीं होता। समुद्र है समुद्र। आहाहा !

कहते हैं, आहाहा ! **रुचि रखना;...** अर्थात् ? आत्मा पोसाये, ऐसा पहले करना। दूसरो पोसाता है, उसे छोड़ देना। बनिया भी व्यापार में पोसाता है, उसका व्यापार करते हैं। ढाई रुपये का माल हो और तीन लेते हों तो करे। परन्तु ढाई रुपये का माल लेकर सवा दो मिलते हों तो वह माल उसे पोसाता है ? इसी प्रकार आत्मा में राग और पर्याय की रुचि का पोषाण छोड़कर... आहाहा ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी रुचि का पोषाण पहले कर। वह आत्मा तुझे पोसायेगा। दूसरी बात नहीं पोसायेगी उस चीज़ में। अरे.. अरे.. ! ऐसी बातें हैं।

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। है ? आहाहा! अन्दर की वस्तु ज्ञायक जो यहाँ पर्याय की भी जिसे अपेक्षा नहीं, उसकी रुचि काम करती है। यदि पोषाण हुआ तो वहाँ काम होता है। उसके पोषाण बिना, उसकी रुचि बिना काम बिल्कुल नहीं होता। पश्चात् तो बहिन ने जरा नाम दिया है। **पूज्य गुरुदेव ने बहुत दिया है।** अन्तर की रुचि कर, प्रभु! अन्दर में झुक। अन्दर में झुक, अन्दर में ढल। आहाहा! जहाँ अनन्त आनन्द का सागर भरा है,वहाँ प्रभु ढल। आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति। अरे! आकाश के प्रदेश जो अनन्त हैं, इस लोक के बाहर भी आकाश है।

यह जगत है, वह चौदह ब्रह्माण्ड में असंख्य योजन में चौदह ब्रह्माण्ड में यह है। भगवान के ज्ञान में असंख्य योजन में ज्ञात हुआ। इसके अतिरिक्त खाली भाग, जिसमें जड़ और चैतन्य नहीं है, एक आकाश ही है, ऐसा खाली भाग दसों दिशाओं में कहीं अन्त नहीं है कि अब आकाश यहाँ हो गया। ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चारों दिशाओं में। नास्तिक को भी विचार करने पर उसे निर्णय होना चाहिए कि यह क्षेत्र तो ऐसा... ऐसा.. चला जाता है, पश्चात् कहाँ तक जाता है ? ऐसा का ऐसा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन को अनन्त... अनन्त चला जाता है तो भी कहीं पूरा नहीं होता। आहाहा! ऐसा जो आकाश का स्वभाव, उसके जो प्रदेश अपार। एक पॉइन्ट-परमाणु रोके जितने प्रदेश को, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे-ऐसे अमाप आकाश के प्रदेश अनन्त, उससे भी अनन्तगुणे प्रभु तुझमें गुण भरे हैं। आहाहा! उससे अनन्तगुणे! कद भले शरीर प्रमाण हो। आहाहा! परन्तु तेरे अन्दर कद में-दल में तो अनन्तगुणे गुण पड़े हैं। आकाश के प्रदेश की संख्या से अनन्तगुणे गुण पड़े हैं। पहले उसकी रुचि कर। आहाहा! रुचि ही काम करती है।

ऐसा **वे अनेक प्रकार से समझाते हैं।** बहिन के वचन हैं। **पूज्य गुरुदेव के वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना।** आहाहा! यह शुभ और अशुभभाव की भी रुचि छोड़ते जाना। बापू! परिणाम का तो प्रेम छोड़, प्रभु! भगवान का अप्रेम होता है, नाथ! पाप के परिणाम के प्रेम में प्रभु का अप्रेम-द्वेष होता है। तथा पुण्य के परिणाम के प्रेम में भी नाथ प्रभु का—उसका भी द्वेष होता है। आहाहा! तू आगे बढ़कर विचार का प्रयोग कर।

रुचि बढ़ाते जाने पर... **रुचि बढ़ाते रहना।** अटकना नहीं, उलझना नहीं। ऐसी अपार चीज़ को कैसे पहुँच सकेंगे? उकताना नहीं। तथा रुचि को रोक नहीं देना। अन्दर में महाप्रभु आहाहा। ऐसी रुचि को बढ़ाते जाना। है? **भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है।** जानपना चाहे जितना हो, वह काम नहीं करता। क्रियाकाण्ड तेरे दया, दान, व्रत, भक्ति के लाख और करोड़ तेरे ऐसे भाव होंगे, वह काम नहीं करेंगे, प्रभु! यह रुचि काम करती है।

भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि... यह राग जो विकल्प उत्पन्न होता है, उसकी दशा की दिशा परसन्मुख है। क्या कहा? जो कुछ राग उत्पन्न होता है, चाहे तो दया, दान या गुण-गुणी के भेद का (राग हो), उस राग की दशा की दिशा परसन्मुख है। वह राग परसन्मुख के लक्ष्य में जाता है और रागरहित दशा जो श्रद्धा है, सम्यग्दर्शन की दशा है, उस दशा की दिशा द्रव्य के ऊपर जाती है। उसकी दिशा द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कोई भी राग, परमात्मा की भक्ति का भी राग हो तो वह राग पर की दिशा की ओर जाता है, पर के ऊपर जाता है। और सम्यग्दर्शन की रुचि अथवा सम्यग्दर्शन के पहले की रुचि, वह स्व-सन्मुख जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! जगत को तो जानते हैं न, भाई! ७३ वर्ष से तो यह अन्दर है। दुकान पर भी यह शास्त्र तो अनेक पढ़े हैं। १७ वर्ष की उम्र से। यह तो ९० हुए। घर की दुकान पर वहाँ भी मैं तो शास्त्र पढ़ता था। पूर्व के संस्कार थे न। आहाहा!

यह बात... आहाहा! कहते हैं, प्रभु! तू रुचि तो बढ़ाता जा। प्रभु अन्दर विराजता है सच्चिदानन्द नाथ। आहा! ऐसी बात प्रभु के अतिरिक्त—वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त कहीं नहीं है, प्रभु! इस प्रकार भेद पाड़कर, दूसरे की अपेक्षा यह कुछ दूसरी चीज़ कहते हैं, ऐसा भेद पाड़कर रुचि बढ़ाते जा। समझ में आया? आहाहा! भेदज्ञान... है? **होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है।**

'**ज्ञायक**', '**ज्ञायक**', '**ज्ञायक**'—आहाहा! मैं तो ज्ञायक। छठवीं गाथा में आता है न? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' मेरा नाथ प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्था में है नहीं। अर्थात् कि प्रमत्त गुणस्थान जो पहले से छठवें गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से चौदहवें

तक अप्रमत्त। यह प्रमत्त-अप्रमत्त वस्तु में नहीं है। आहाहा! है न श्लोक? ऐई! भरतभाई! तुम्हारे लिखा है। '**ण वि होदि**' मुझे तो मुखाग्र है, भाई! ... नहीं। पाठ है मूल यहाँ तो। छह-सात हजार श्लोक पहले कण्ठस्थ किये हैं।

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

यह मूल पाठ है। यह भगवान प्रमादी नहीं, छठवें गुणस्थान तक की दशा, वह भी इसमें नहीं और अप्रमत्त से लेकर चौदहवें गुणस्थान दशा इसमें नहीं। यह तो ज्ञायकभाव है। आहाहा! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' यह तो ज्ञायकभाव है। वह यह कहते हैं।

'**ज्ञायक**', '**ज्ञायक**', '**ज्ञायक**'—**उसी की रुचि हो...** आहाहा! **तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे**। तो पुरुषार्थ रुचि अनुयायी वीर्य। जिसका जिसे पोषाण, वहाँ उसका वीर्य काम किये बिना नहीं रहता। आहाहा! इसलिए उसकी रुचि कर, प्रभु! अन्तर ज्ञायकभाव परमात्मा का दल पड़ा है। सिद्ध की पर्याय भी जिसके पास एक समय की अवस्था। ऐसी-ऐसी अनन्त अवस्था का दल ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसी ज्ञायक वस्तु है, प्रभु! उसकी रुचि कर। और रुचि करने से पुरुषार्थ का झुकाव तेरा बढ़ जाएगा। इस ओर बढ़ेगा तो सम्यग्दर्शन होगा और तब भव का अन्त होगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१६ चैत्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक २३-४-१९७९
वचनामृत - १३९, १४०, १५९ प्रवचन-७६९ (DVD 17)

गहराई से लगन लगाकर पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे। अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है। लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो॥१३९॥

अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द का कन्द परमात्मस्वरूप पर्याय के समीप में गहरे अर्थात् अन्तर के तल में (मौजूद है)। (राग तो) विकार है, दुःख है, संसार है। भव से मुक्त होना होवे तो, यह इसकी शर्त। वर्तमान पर्याय प्रगट की नयी; वस्तु जो गहराई में ध्रुवतत्त्व है, एक समय की पर्याय के पीछे अन्तर तल में जो ध्रुव वस्तु है, वहाँ गहराई में पर्याय को ले जा। अरेरे!

गहराई से लगन लगाकर... वहाँ लगन लगा। आहाहा! जिसमें वर्तमान एक समय की पर्याय भी ऊपर तैरती है। आहाहा! **पुरुषार्थ करे... गहराई से लगन लगाकर...** ध्रुव के धाम में लगनी लगाकर **पुरुषार्थ करे तो वस्तु प्राप्त हुए बिना न रहे**। तो आत्मा ज्ञान में आये बिना रहे नहीं। आहाहा! उसे आत्मा की प्राप्ति पर्याय में वह प्राप्ति हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसा है। बाहर का क्या करना इसमें? जो चीज़ इसमें नहीं, उससे इसे लाभ कैसे होगा? जो चीज़ इसमें नहीं... आहाहा! इसमें तो शरीरादि परद्रव्य तो नहीं, पुण्य और शुभ-अशुभभाव तो नहीं है परन्तु इसमें पर्याय भी नहीं। इसलिए पर्याय इसमें नहीं तो पर्यायदृष्टि से इसे लाभ हो, (यह कैसे बने)? सूक्ष्म बात है, प्रभु! बातें बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

वह वस्तु अन्दर गहराई में भगवान की भेंट कर अन्दर। आहाहा! अनादि से पर्याय में वीतराग परमात्मस्वरूप का तुझे विरह है। राग और बाहर की चीज़ का तुझे संयोग है परन्तु पर्याय में प्रभु का विरह है। आहाहा! भगवान! परमात्मा तीन लोक के नाथ का यह

कहना है। तेरी पर्याय में तेरे नाथ का विरह है, उस विरह को तोड़। आहाहा! उस पर्याय को गहराई में ले जा। अर्थात् कि जो पर्याय जो एक समय की पर्याय है, उसमें अन्तर्मुख पूरा तत्त्व पड़ा है। एक समय की पर्याय में अन्तर्मुख, पर्याय से अन्तर्मुख, पर्याय से बाहर नहीं, पर्याय में नहीं। आहाहा! वहाँ पर्याय को गहराई में ले जा, नाथ! तुझे वहाँ वस्तु की प्राप्ति होगी। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, उसकी तुझे अन्तर में भेंट होगी। आहाहा!

अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त इसने कहीं देखने को नजर की नहीं। उस पर्याय को देखता है या राग को देखता है, वह सब बाहरी चीज़ है। अन्तर में जहाँ पर्याय भी नहीं, जहाँ राग तो नहीं, संसार तो नहीं, एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं, उसकी **अनादि काल से लगन लगी ही नहीं है।** आहाहा! **लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो।** अन्तर चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्द ध्रुव, उसकी ओर नजर जाए तो तुझे सम्यग्ज्ञान, आनन्द के साथ ज्ञान प्रगट हुए बिना रहे नहीं। जो अनादि का राग और द्वेष का वेदन है, वह संसार है, वह दु:ख है, वह आकुलता है। उस दु:ख को मिटाना हो तो अन्दर-अन्दर में तेरी लगन लगा, जहाँ आनन्द और ज्ञान भरे हैं, जहाँ सुख का सागर हिलोरें मारता है। आहाहा!

एक समय की पर्याय की रुचि में खड़ा, ध्रुव खड़ा है, उसे वह नहीं देखता। शब्द है न बहिन के? 'जागता जीव ध्रुव है।' यह क्या कहलाता है तुम्हारे? चाकलो। रतनलालजी! यह पटिया। 'जागता जीव ध्रुव है न।' अर्थात्? आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप वह ध्रुव, खड़ा अर्थात् ध्रुव है न! जा, तुझे प्राप्ति होगी। है, उसकी प्राप्ति होगी परन्तु वह उपाय तो बापू! अन्तर्मुख होना, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। आहाहा! बाकी सब बातें यह व्रत करे और तप करे, यह सब क्लेश हैं। उस आनन्दस्वरूप भगवान को प्राप्त करने की पद्धति नहीं है। आहाहा!

लगन लगे तो ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो। प्रगट होता ही है। आहाहा! संसार में चक्रवर्ती का राज हो। भरत को चक्रवर्ती का राज था, तथापि वे आत्मज्ञान में पहुँच गये थे। अन्तरस्वरूप में अन्दर पहुँच गये थे। आहाहा! फिर जरा राग होता है, तथापि उसे जहररूप से, दु:खरूप से जानकर अन्तर्मुख के झुकाव को उस ध्येय में से नहीं

छोड़ता। सम्यग्दृष्टि जीव, अन्तर परमात्मा के ध्येय को पकड़ा है, स्व को, उस दृष्टि में ध्येय जो ध्रुव है, उसका विरह नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसे चक्रवर्ती के राज में रहा होने पर भी उसे राग का कण आवे, उसका वह स्वामी नहीं होता। तो फिर राग का स्वामी हो, यह बात है कहाँ? आहाहा!

श्रेणिक राजा, हजारों राजा उसे चँवर ढोरते थे। उसमें उसे मुनि का योग हुआ। मुनि। वह स्वयं तो बौद्ध था, बौद्ध। उसमें एक जैन मुनि थे, आनन्द में रमते थे। उसमें एक सर्प मरा हुआ उनकी गर्दन में इन्होंने—श्रेणिक ने डाला। और उनकी रानी थी, वह समकिती थी। आत्मज्ञानी चेलना समकिती। उन्होंने इससे कहा कि मैं तेरे गुरु को सर्प डालकर आया हूँ मारकर। मरे हुए को। वह उन्होंने निकाल डाला होगा। अन्नदाता! यह गुरु वे नहीं होते। वे सन्त निकाल डालें, यह नहीं होता। वे सन्त तो अन्दर गहराई में आनन्द के वेदन में स्थित होंगे। उन्हें सर्प और सर्प से हजारों चींटियाँ, उनका उन्हें लक्ष्य नहीं होता। प्रभु! चेलना समकिती, उसके पति को कहती है। समकिती है। आहाहा! यह मेरा पति है, ऐसा वह अन्दर मानती नहीं, हों! आहाहा! मेरा पति तो प्रभु, पर्याय का पति तो परमात्मस्वरूप, वह मेरा पति है। उसकी पर्याय जो सम्यग्दर्शन हुई, वह मेरी प्रजा है। आहाहा!

वह श्रेणिक से कहती है, प्रभु! राजन! तुम जो मरा हुआ नाग डालकर आये परन्तु उसे गुरु ने निकाला नहीं होगा। चल देखने। वे जाते हैं वहाँ चींटियाँ, लाखों चींटियाँ। अन्तर आनन्द के धाम में... आहाहा! अन्तर के आनन्द के धाम में रमते हैं। तब वह रानी जरा सर्प को, लाखों चींटियाँ थीं उन्हें... जरा ऊँचा किया। देखो! प्रभु देखो! मुनि तो आनन्द में हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के रस की घूँटें पीते हैं। इसकी उन्हें खबर भी नहीं है। आहाहा! ऐसे तेरे गुरु! श्रेणिक, चेलना को कहते हैं। ऐसे सन्त होते हैं! होवें कहाँ, हैं न यह तो। रानी कहती है प्रभु! है ऐसा कहाँ कहो। यह है न, होते हैं न। देखो! यह रहे। फिर उन मुनि के निकट (क्षमा माँगते हैं)। प्रभु! मेरी भूल हुई। बड़ा आयुष्य सातवें नरक का बाँधा। सातवें नरक का, हों! सर्प को डाला, उसने (ऐसा आयुष्य बँधा)। प्रभु! मेरी भूल हुई। मुझे भूल समझाओ। उपदेश दिया। उपदेश दिया और उस क्षण वह (श्रेणिक राजा) सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुआ। आहाहा! एक क्षण में गुलाँट खाने पर ऐसे पहलू बदलने पर अन्दर में भगवान को देखा। उस गहराई में प्रभु था ध्रुव में। समकित पाया। आहाहा!

भगवान के समवसरण में गये। वहाँ क्षायिक समकित हुआ। आहाहा! हजारों रानियाँ और हजारों राजा हैं। वहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधा परन्तु नरक का आयुष्य जो ३३ सागर का बँध गया था, उसे तोड़कर ८४ हजार का रह गया। लड्डू बाँधा हो, उसमें से घी निकालकर पूड़ी नहीं होती। उसका आटा निकालकर फिर बाहर पूड़ी नहीं होती, वह लड्डू तो खाना ही पड़ता है। उसी प्रकार नरक का आयुष्य बँध गया था। स्थिति तोड़ डाली। आत्मज्ञान किया, इसलिए, ३३ सागर की स्थिति की ८४ हजार (वर्ष रह गयी)। लड्डू में घी सुखा डाला और ८४ हजार वर्ष की स्थिति रही। गये नरक में। वह भी अपनी योग्यता से वे गये हैं, हों। उस जाने की योग्यता से वहाँ पर्याय की योग्यता वहाँ गये हैं। वहाँ वे अभी क्षण-क्षण में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं क्योंकि आत्मज्ञान की गहराई के तल को तल में देख लिया।

सच्चिदानन्द प्रभु आनन्द के धाम में है, ऐसे आनन्द के तल के तल में से खोजकर देख लिया। उस जीव को ऐसा विकल्प—राग आ गया, तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। आहाहा! व्रत नहीं, तप नहीं, बाह्य त्याग नहीं। अन्तर में मिथ्यात्व का त्याग और अनन्तानुबन्धी का त्याग, इसकी कीमत है। उसके त्याग में क्या चीज़ है, उसका माहात्म्य जगत को नहीं आता। बाह्य त्याग यह छोड़ा... यह छोड़ा... छोड़ा... उनकी महिमा जगत को आती है। परन्तु गहराई में जाने पर पर्याय में रागादि और एक समय की पर्याय का भी जहाँ आदर चला गया, उसका भी जहाँ दृष्टि में त्याग हुआ... आहाहा! इस त्याग की कीमत नहीं। उस त्याग की कीमत इसे लगती है ऐसी अन्दर। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। क्षायिक समकिती हैं। आहाहा! ऐसा सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। उस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय गहराई में अन्दर ले जाना आत्मा को, यह उपाय है। कहो, गोधाजी! यह बाहर का यह सब सेवा करना और यह करना और वह करना, इसमें से कुछ होगा। होगा संसार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा न; कहा न, संसार होगा। भटकना होगा।

भटकनेवाले को राग से भटकना होगा। यह वीतरागस्वरूप प्रभु, उसे पकड़ने पर इसका भटकना बन्द हो जाएगा। यह यहाँ कहते हैं।

ज्ञान और आनन्द अवश्य प्रगट हो। आहाहा! अन्तर्दृष्टि में जाए, उसे सम्यग्ज्ञान पर्याय में और सम्यक् आनन्द प्रगट होता है। यह १३९ हुआ।

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की॥१४०॥

१४० यह तो बहिन सहज बोल गयी, वह लिखा गया। आहाहा! आत्मा है प्रभु! ऐसा न देखो कि यह बालक है या यह भंगी है या यह... आत्मा भंगी भी नहीं, बालक भी नहीं, वृद्ध भी नहीं, राग भी नहीं। वह प्रभु है, वह तो एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा देह में विराजता है। वह **'है', 'है', 'है'**... है शब्द? आहाहा! **'है'**,... भूतकाल में भी है, वर्तमान में है, भविष्य में भी है। है, उसमें नहीं—ऐसा नहीं आता।

ऐसे आत्मा को **'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न?** अन्दर है कुछ ज्ञान है, जाननेवाला है, जाननेवाला है, है, है, वह ख्याल में आता है न? ऐसा कहते हैं और **'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना?** अब वह है, उसमें तो मात्र अस्तित्व सिद्ध किया। परन्तु अस्तित्व तो परमाणु में भी है। आहाहा! यहाँ तो है... है... है। जाननेवाला है... जाननेवाला है... जाननेवाला है। जाननेवाला है अर्थात्? जानने की अवस्था कार्य है, वह यहाँ बात नहीं है। जाननेवाला है अर्थात् कि पर्याय में जानता है, वह यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... आहाहा! ऐसा **है ना? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है।** जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... राग को भी जाने, शरीर को भी जाने, स्वयं जाननेवाले को जाने। वह वस्तु है न? वह है। आहाहा!

वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। अर्थात् क्या कहा ? जाननेवाला जो अन्दर ज्ञाता होता है वह वर्तमान जितनी उसकी अस्ति नहीं है। वर्तमान जितना उसका अस्तित्व, उसकी सत्ता, उसकी मौजूदगी वर्तमान मात्र नहीं है। आहाहा!

वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला। जाननेवाला अर्थात् पर्याय नहीं। ज्ञायकभाव जाननेवाला। वह जाननेवाला, वह जाननेवाला, वह तत्त्व अपने को कायम रहा हुआ त्रिकाली अस्तित्व बतला रहा है। आहाहा! परन्तु उसमें उसकी नजरें नहीं हैं। जहाँ टिकता तत्त्व है... पर्याय है, वह टिकता तत्त्व नहीं है। टिकता तत्त्व जो है, वहाँ उसकी अनादि से नजरें नहीं हैं। आहाहा! भगवान! है, ऐसा जो अनादि, वर्तमान जितना वह नहीं है। वह तव अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है। ज्ञात होता है, वह जाननेवाला त्रिकाल है, ऐसा बतला रहा है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह तो बहिन की संक्षिप्त भाषा है। बहुत संक्षिप्त है। आये नहीं हैं। डॉक्टरों ने इनकार किया है। नहीं तो उन्हें तो यहाँ आने का भाव था। उन्हें जरा खेद भी हुआ है। ऐसा कि इस जन्मजयन्ति पर आना नहीं (हुआ)। परन्तु डॉक्टरों ने इनकार किया है। बाकी वे भगवती माता हैं। आहाहा! एक स्त्री का देह आ गया और बोलने की भाषा बहुत थोड़ी। आहाहा! अन्दर में गहराई में भगवान की भेंट करके आनन्द के अनुभव में स्थित हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि '**ज्ञाता**', '**ज्ञाता**', '**ज्ञाता**'... वह वर्तमानमात्र नहीं है। जाननहार... जाननहार... जाननहार... कायम टिकता तत्त्व, ऐसा बतला रहा है। ऐसा उपदेश है, बापू! जाननहार तत्त्व वह अपना त्रिकाली अस्तित्व बतला रहा है। त्रिकाल है। है, वह त्रिकाल है। यह कहेंगे। **परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है!** जाननेवाली एक यह वर्तमान जानती है बस, इतना वह। आहाहा! पुण्य-पाप और शरीर-वाणी तो निकाल डाले। उनकी बात तो यहाँ है नहीं प्रभु! परन्तु जाननेवाले को तू वर्तमान जितना जानता है। आहाहा!

जो तत्त्व वर्तमान में है वह त्रैकालिक होता ही है। क्या सिद्धान्त है ? जो वर्तमान हो, वह त्रिकाली होता है। वर्तमान पर्याय में भले ज्ञात हो परन्तु वह पर्यायवान है, वह

त्रिकाली है। ज्ञात होता है, वह वर्तमान पर्याय में; परन्तु उसमें ज्ञात होता है, वह त्रिकाली है। आहाहा! लोगों को इस अन्तर तत्त्व के ऊपर की झुकाव दशा नहीं है। अभी का प्रगट प्रवाह बाहर में चला गया है। यह करना... यह करना... यह करना... गजरथ करना और रथ निकालना। आहाहा! बापू! मार्ग अलग है, प्रभु! भाई! आहाहा! यह दूसरा राग का विकल्प और क्रियाएँ तो कहीं पर रह गयीं परन्तु एक समय की पर्याय तुझे ज्ञात होती है, वह जाननेवाला तत्त्व त्रिकाल है। उतना ज्ञात होता है, उतने काल जितना वह नहीं है। आहाहा! है?

'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। कोई भी परमाणु आदि की पर्याय वर्तमान में दिखने पर भी वह चीज़ है, वह तो त्रिकाल है। एक समय की पर्याय जितना ही होवे तब तो वह पर्याय किसके आधार से हुई? पानी में तरंग उठी, वह पानी के दल बिना किसके आधार से तरंग उठी। आहाहा! इसी प्रकार एक समय की पर्याय उठी, वह अनन्त दल जो ध्रुव है, उसके आधार से, उससे उत्पन्न हुई है। उसके ऊपर खड़ी हुई है। भले अन्दर में हुई नहीं। आहाहा!

सम्यग्दर्शन और उसकी प्राप्ति, बापू! अलौकिक है। सम्यग्दर्शन हुआ, पाया, वह अब सिद्ध हुआ। वस्तु मुक्त है और जहाँ उसकी दृष्टि हुई, वहाँ पर्याय में भी वह राग से मुक्त हुआ, वह आंशिक मुक्ति हुई है। मुक्तस्वरूप भगवान है। आहाहा! उस त्रिकाली तत्त्व को-त्रिकाली तत्त्व को जहाँ प्रतीति में, ज्ञान में, अनुभव में लिया, तब उसकी पर्याय में भी अंशतः राग से भिन्न मुक्तदशा प्रगट हुई। मुक्तस्वरूप के अवलम्बन से मुक्तदशा प्रगट हुई। आहाहा! यह कलश में है—मुक्त। आहाहा! अब ऐसी बातें, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! उस मार्ग को पहले जानना पड़ेगा। जानकर फिर अन्तर में प्रयोग करने से अन्तर का तल ध्रुव प्राप्त करेगा। इसके बिना वह ध्रुव प्राप्त नहीं करेगा और ध्रुव को प्राप्त किये बिना संसार के परिभ्रमण के अवतार नहीं गलेंगे। स्वरूप मिले बिना भव नहीं गलेगा। और जब तक भव मिले, तब तक स्वरूप इसे नहीं मिलेगा। आहाहा! महेन्द्रभाई! ऐसी बातें हैं। सुनने को तो मिले, प्रभु! आहाहा!

विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। जो है... यह जाननहार तत्त्व है, वह वर्तमान है, वह त्रिकाल है। यह वर्तमान है, ऐसा त्रिकाल है, ऐसी दृष्टि जाने पर विचार करने पर

आगे बढ़ा जाता है। अन्दर में जाया जाता है। आहाहा! **अनन्त काल में सब कुछ किया,...** सब किया अर्थात्? शरीर, वाणी, मन और पर का कुछ नहीं किया। सब किया अर्थात् कि पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार के भाव, दया, दान, व्रत के असंख्य प्रकार के भाव और झूठ बोलने के असंख्य प्रकार के भाव, वे अनन्त बार असंख्य प्रकार के भाव अनन्त बार किये। आहाहा! क्या कहा?

अनन्त काल में सब कुछ किया,... सब किया अर्थात् यह शुभ और अशुभभाव। रजकण को तो स्पर्श भी नहीं किया। प्रभु इस शरीर को स्पर्शा भी नहीं। अज्ञान में भी स्पर्शा नहीं। अन्दर जड़कर्म हैं, उन्हें भी प्रभु आत्मा, अज्ञानी भी उन्हें स्पर्शा भी नहीं है। कर्म इसे स्पर्शा नहीं है, यह उसे स्पर्शा नहीं है। परद्रव्य और स्वद्रव्य के बीच अत्यन्त अभाव का किला पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? हीरालालजी! आहाहा! इनका हाथ कट गया है। आहाहा! परन्तु उस समय ऊंकार नहीं किया। रतनलालजी सुना है न? हीरालालजी को। ज्ञायक! ऐसा बोले थे, बस। आँख में से आँसू नहीं और शोक नहीं। इतना हाथ कट गया। यह आत्मा... बापू! आहाहा! नित्यानन्द है, उसमें उसका अवयव टूटे कब? यह तो जड़ है, मिट्टी है। इसके तो अवयव टूटनेयोग्य हों, वे टूटते हैं। ज्ञायक भगवान में अनन्त गुण है, उसमें से एक भी गुण टूटे, ऐसा है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **अनन्त काल में सब कुछ किया,...** सब किया अर्थात्? किसी की दया पालन की और किसी की हिंसा की, ऐसा नहीं। वह पर की दया पाल नहीं सकता, पर की हिंसा कर नहीं सकता, शरीर को हिला नहीं सकता, बोलने की भाषा के भाव को वह रच नहीं सकता। आहाहा! इसने रचाया और रचा हो तो शुभ और अशुभ असंख्य प्रकार के राग, इसने अनन्त बार रचे हैं। शुभ और अशुभ जो असंख्य प्रकार के राग, उन्हें अनन्त बार किया है। यह 'सब' में आता है। सब में स्त्री-पुत्र का किया, देश का किया सब, वह नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की। श्रद्धा नहीं की। आहाहा! त्रिकाली सत्य नित्यानन्द प्रभु के सन्मुख होकर। जिसके विमुख होकर अनादि काल से अनन्त भव में भाव अनन्त किये वे स्वभाव से विमुख होकर। उस स्वभाव के सन्मुख होकर और पर्याय तथा विभाव से विमुख होकर। आहाहा! एक

त्रिकाली सत् को तूने श्रद्धा नहीं है। आहाहा! तूने पहलू बदला नहीं है। वर्तमान पर्याय और पुण्य तथा पाप के भाव, उस अंश और विकार के पक्ष में चढ़कर मैंने किया, ऐसे क्षयोपशम के अभिमान में तेरा काल गया प्रभु। आहाहा! अन्दर में त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रत्यक्ष; परोक्ष नहीं परन्तु प्रत्यक्ष विराजमान है। उसने **एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की**। उसे श्रद्धा में... ऐसे श्रद्धा, ऐसा नहीं। अन्दर अनुभव में जाकर श्रद्धा, इसका नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा उसे कहते हैं... १७वीं गाथा में आता है न? कि जो चीज़ अपने ज्ञान की पर्याय में ज्ञात नहीं होती, उसकी श्रद्धा क्या? जो पर्याय में जो चीज़ ज्ञात नहीं होती, उसकी श्रद्धा क्या? यह खरगोश के सींग जैसी श्रद्धा है। खरगोश है, उसे सींग नहीं होते। उनकी श्रद्धा क्या? नहीं, उसका ज्ञान और नहीं, उसका ज्ञान नहीं और नहीं उसकी श्रद्धा। आहाहा! समझ में आया?

एक त्रिकाली सत् प्रभु है। अन्तर आनन्द का घण्टनाद बजाता है अन्दर घनघनाहट। आहाहा! उस वीणा के अन्दर... आहाहा! वीणा बजती है न वीणा? उसी प्रकार अन्तर का नाथ अनन्त ज्ञान और अनन्त के आनन्द की वीणायें वहाँ बजती हैं, प्रभु! आहाहा! उन अनन्त शक्तियों का धनी वह गुण से-गुण से खाली नहीं है। वह खाली नहीं है अर्थात् कि पूरा है। आहाहा! ऐसे परमात्मस्वरूप ऐसा ध्रुव तत्त्व, उसे-एक को तूने श्रद्धा नहीं है। बाकी सब अनन्त बार किया है। सब अर्थात् यह। शुभ-अशुभभाव। सब अर्थात् किसी स्त्री का कर दिया और पुत्र का किया और देश का किया। हराम है, पर का कुछ कर सकता होवे तो। स्वद्रव्य, परद्रव्य को स्पर्श नहीं कर सकता, नाथ!

यह बात तीसरी गाथा में कही थी। तीसरी गाथा है न समयसार की। '**एयत्ताणिच्छयगदो**' आहाहा! आत्मा अथवा प्रत्येक वस्तु अपने शाश्वत् स्वभाव और वर्तमान अवस्था को स्पर्श करती है, छूती है, चूमती है। परन्तु प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्याय को छोड़कर परद्रव्य की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। यह बात। आहाहा! समझ में आया? यह पैर जो जमीन के ऊपर चलते हैं, उन पैर के रजकणों की अवस्था और नीचे जमीन की अवस्था, दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है। वे पैर जमीन को छूकर नहीं चलते। अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? पैर चलता है, जो रजकण अनन्त गुण का

पिण्ड है, वे परमाणु उनके अनन्त गुणों को और उनकी पर्याय को चूमते हैं परन्तु उसके अतिरिक्त दूसरे परमाणु और दूसरे आत्मा को वह स्पर्शा भी नहीं। यह तो बात! आहाहा! यह कदम भरता हुआ पैर उस जमीन को स्पर्श किये बिना पग भरता है। रतनलालजी! ऐसा है।

क्यों?—कि प्रत्येक वस्तु एक वस्तु से दूसरी वस्तु में तो अत्यन्त अभाव का किला है। एक वस्तु को दूसरी वस्तु के बीच बड़ा अभाव का किला पड़ा है। इसलिए एक चीज़ दूसरे को स्पर्श करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! परन्तु उसकी विकारी पर्याय या अविकारी पर्याय को वह चूमता और स्पर्शता है। जब तक पर्यायदृष्टि है, तब तक वह विकारी पर्याय को चूमता है, स्पर्शता और वेदता है। आहाहा! परन्तु जब त्रिकाली तत्त्व एकरूप हूँ—ऐसा जहाँ अन्तरभान हो, वह त्रिकाली द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

भगवान वीतराग तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव महाविदेह में प्रभु तो विराजते हैं। आहाहा! उनका वर्तमान में (यहाँ) विरह है परन्तु उनकी वाणी का विरह नहीं। आहाहा! और वाणी में कहे हुए भाव का विरह नहीं। आहाहा! यह हाथ है, वह गाल को स्पर्श नहीं करता। प्रभु! क्या करता है यह तू? क्योंकि उसकी चीज़ का अस्तित्व, उसकी चीज़ के अस्तित्व में इस चीज़ का अत्यन्त अभाव है। प्रभु! यह बात ऐसी है। तीसरी गाथा में है। '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।**' है? आहाहा!

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

उसे राग का सम्बन्ध कहना विसंवाद है, प्रभु! आहाहा! यह तो जहर की वार्ताएँ करने की है। प्रभु तो राग को स्पर्शता नहीं। अज्ञान में पर्याय है, वह पर को स्पर्शती नहीं और द्रव्य की स्वभाव की दृष्टि से पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। यह तो (बात)। आहाहा! तथापि वह पर्याय द्रव्य का ज्ञान बराबर कर सकती है। उसे स्पर्श किये बिना, स्पर्श किये बिना वह पर्याय त्रिकाल के सत् को श्रद्धा कर सकती है। अनन्त काल से इसने श्रद्धा नहीं की है। यह अन्तर में गुलाँट खाने पर... आहाहा! एक समय की पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती, तथापि एक समय की पर्याय त्रिकाली द्रव्य को जानकर श्रद्धा में पूरा ले

सकती है। पूरा पर्याय में नहीं आता परन्तु पूरे का ज्ञान पर्याय में आता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु!

यह तो वीतराग का मार्ग है। तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा। उनके पश्चात् यह बातें रह गयीं। जगत को एकान्त लगता है। यह तो सब व्यवहार का लोप हो जाता है, ऐसा (जगत) मानता है। यह तो सत्य बात है। व्यवहार का तो लोप होता है, परन्तु एक समय की पर्यायबुद्धि का भी लोप होता है। उसकी अपनी पर्याय है, उसकी बुद्धि का लोप होता है। पर राग और दया-दान तथा विकल्प की बातें तो क्या करना, नाथ! यह तो सब विकार— जहर का प्याला पीता है। आहाहा! परन्तु आत्मा की पर्याय जो है, उसकी अवस्था, वह भी द्रव्य को स्पर्श नहीं करती, तथापि द्रव्य का वास्तविक जितना और जैसा स्वरूप है, उसकी श्रद्धा कर सकती है। आहाहा! इसमें कहीं उन जवाहरात-बवाहरात में आता न हो यह सब। यह जवाहरात है। बापू! यह है, बापू। आहाहा! प्रभु! ऐसी बात सुनना भी नाथ! महाभाग्यशाली हो, उसके कान में पड़े, ऐसी बात है। यह तो तीन लोक की अमर वाणी है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, अनन्त काल में सब किया अर्थात् विकार किया। एक त्रिकाली सत् की श्रद्धा नहीं की। यह १४० हुआ। अब?

गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है। कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। गुरु की आज्ञा में वर्तने से कर्म सहज ही दब जाते हैं और गुण प्रगट होते हैं॥१५९॥

१५९। आहाहा! यह लालभाई ने चुनकर निकाले हैं। सन्त निर्ग्रन्थ मुनि, **गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे**। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बात दिखायेंगे, उसे तुझे अब अनुभव करके मानना, ऐसा कहते हैं। दिखायेंगे, इसलिए उसके कारण तू मानेगा, ऐसा नहीं। दिखायेंगे, ऐसे निमित्त की एक उपस्थिति की है। यह ३८वीं गाथा में आता है न? ३८, समयसार। गुरु ने

बारम्बार कहा। इसके दो अर्थ हैं। गुरु ने एक बार कहने पर तो इसे पकड़ में नहीं आया परन्तु बहुत बार कहने पर पकड़ में आया, फिर इसने पकड़ा, उसे भी बारम्बार विचार में लिया। आहाहा! वह गुरु ने बारम्बार कहा, इसका अर्थ यह स्वयं बारम्बार मन्थन में अन्दर गया। आहाहा! ३८ गाथा है, समयसार की। आहाहा!

प्रभु! वहाँ तो यहाँ तक कहा है कि अप्रतिबुद्ध शिष्य था। आहाहा! अनादि का अज्ञानी था, अनादि का मिथ्यादृष्टि पंचम काल का अबुध जीव, उसे गुरु ने जब यह समझाया, प्रभु! तेरी पर्याय भी द्रव्य को स्पर्श नहीं करती तो यह तेरा द्रव्यस्वभाव राग को स्पर्श करे, यह तीन काल में नहीं बनता, ऐसा उसे कहा। था अप्रतिबुद्ध, परन्तु प्रतिबुद्ध हुआ, ऐसा कहा है। पंचम काल के सन्तों ने पंचम काल के अप्रतिबुद्ध शिष्य को समझाया। ऐसा नहीं कि चौथे काल के साधु और चौथे काल के जीव को यह समझाया। समझ में आया? आहाहा! पंचम काल के अप्रतिबुद्ध जीव को समयसार ऐसा पुकारता है कि पंचम काल के गुरु ने उसे समझाया। समझाया परन्तु वह ऐसा समझा, ऐसा वह तत्त्व को स्पर्शा, उस शिष्य का पुकार है, प्रभु! हम जो आत्मा को प्राप्त हुए, हम अब सादि-अनन्त इसमें रहनेवाले हैं। आहाहा! पंचम काल का अप्रतिबुद्ध शिष्य, उसे पंचम काल के प्रतिबुद्ध गुरु ने उससे कहा। ऐसा शिष्य वहाँ लिया है। आहाहा! वह समझा अन्तर आनन्द का नाथ मेरा प्रभु... आहाहा! १५९ है न?

गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। अर्थात् वहाँ बतलाया। **गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है।** अर्थात् क्या? आज्ञा में रहना अर्थात् क्या? आज्ञा तो पर है। **गुरु-आज्ञा में रहना...** अर्थात् गुरु की आज्ञा वीतरागता प्रगट करने की है, उसमें रहना, इसका नाम गुरु की आज्ञा में रहना। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ऐसा है। आहाहा!

उन्होंने कहा और समझा, अपने बारम्बार घोलन से समझा और उनका पुकार उन्होंने किया, मुझे जो आगमज्ञान और आत्मज्ञान से जो ज्ञान हुआ। हूँ पंचम काल का प्राणी परन्तु कोल-करार करता हूँ कि यह पाया उस भाव से केवल (ज्ञान) लेनेवाला हूँ। वह पाया हुआ मैं गिरूँ, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! ३८ गाथा में ऐसा कहते हैं। और

प्रवचनसार की ९२वीं गाथा में यह सब बोल। सब है न। शास्त्र में तो भण्डार भरे हैं। आहाहा! ९२वीं गाथा में ज्ञेय अधिकार है। ज्ञान अधिकार की अन्तिम गाथा है। उसमें यह समझा है शिष्य, यह ९२वीं गाथा में कहा है वहाँ कि समझा, वह समझा। आहाहा! राग से पृथक् करके पर्याय को अन्तर में झुकाया है, वह ध्रुव यदि फिरे तो उसकी श्रद्धा और ज्ञान फिरे, ऐसा यहाँ लिया। समझ में आया? आहाहा! इसलिए ऐसा नहीं समझना प्रभु! कि यह पंचम काल और अभी ऐसा काल है, इसलिए यह नहीं समझ में आयेगा और समझ में आये तो वापस गिर भी जाए। प्रभु! यह बात रहने देना। आहाहा! यह ३८ गाथा, समयसार की, ९२ गाथा, प्रवचनसार की। दोनों में प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है कि हम जो यह बात कहते हैं और जिसने सुनी... यह कहा न यहाँ?

गुरु तेरे गुणों के विकास की कला बतलायेंगे। गुरु-आज्ञा में रहना... अर्थात् कि वीतरागता प्रगट कराने के लिये आज्ञा की है। यह वीतरागता प्रगट करना, वह गुरु की आज्ञा है। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा। उसमें अन्तिम ऐसा सार लिया है कि चारों अनुयोग जो गुरु ने कहे—चरणानुयोग, करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, द्रव्यानुयोग, परन्तु उसका तात्पर्य क्या? कि तात्पर्य वीतरागता। वीतरागता तात्पर्य। गुरु की आज्ञा वीतरागता को प्रगट करने की है। गुरु की आज्ञा मेरे सन्मुख देखकर खड़े रहने की नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा। गुरु की आज्ञा, सर्वज्ञ की आज्ञा, त्रिलोकनाथ ने चार अनुयोग में ऐसा कहा है कि चारों अनुयोग का सार तात्पर्य वीतरागता है। उसका अर्थ? कि चारों अनुयोगों में गुरु ने और सन्तों ने यह कहा कि तेरा नाथ अन्दर है, उसका आश्रय ले। यह हमें चारों अनुयोगों में कहना है। आहाहा!

त्रिकाली जो है... यहाँ कहा न? **गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है।** अर्थात्? गुरु ने उसे वीतरागता उत्पन्न करने का कहा। वह वीतरागता, वीतरागस्वरूप जिनस्वरूप प्रभु है, उसके आश्रय से प्रगट होने पर उसे सुख प्राप्त हुआ। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वे तो ऐसा उपदेश देते हैं कि व्रत करना और यह करना, छह परबी... बापू! यह सब बातें हैं राग की क्रिया, भगवान! तेरा स्वरूप कोई भिन्न प्रकार है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, आहाहा! **गुरु-आज्ञा में रहना वह तो परम सुख है।** आहाहा! उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि आज्ञा की, उनके सामने देखकर रहना। समझ में आया?

ऐसी आज्ञा नहीं है। आहाहा! गुरु ने ऐसा कहा कि हमारे सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! हमारे प्रति भक्ति और बहुमान से भी प्रभु! तुझे राग होगा। आहाहा! यह तो वीतराग और सन्त-मुनि यह कह सकते हैं। जिन्हें दुनिया की दरकार नहीं है। दुनिया सुगठित रहेगी या नहीं, मानेगी या नहीं, जिन्हें दरकार नहीं है। ऐसे सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! हमारी आज्ञा है कि हमारे सामने और परमात्मा के सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! तेरा नाथ अन्दर विराजता है, उसके सामने तू देख। यह आज्ञा है। समझ में आया? कठिन बातें हैं। यह बहिन के शब्द बहुत संक्षिप्त हैं। संक्षिप्त में भाव-सार यह है। आहाहा!

कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। राग की उत्पत्ति चाहे तो पुण्य की हो या पाप की, शुभ-अशुभभाव, वह कर्मजनित निमित्त से उत्पन्न हुए विकारी भाव, उनमें दब गया है। यह मैं हूँ, यह मुझमें है, यह मेरे हैं, उनमें मैं हूँ, ऐसे अनादि से दब गया है। आहाहा! **कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। गुरु की आज्ञा में वर्तने से कर्म सहज ही दब जाते हैं...** क्योंकि गुरु की आज्ञा द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने की है। आहाहा! किस प्रकार का ऐसा उपदेश? यह वीतराग तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का यह सार है, दिव्यध्वनि का यह पुकार है। प्रभु! भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! क्योंकि हम तेरे द्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य हैं।

मोक्ष अधिकार (अष्टपाहुड़ / मोक्षपाहुड़ में) कहा था न सवेरे? उसमें १८वीं गाथा है। '**परदव्वादो दुग्गइ**'। प्रभु! हम तेरी अपेक्षा से परद्रव्य हैं। हमारे सामने देखेगा तो तुझे राग होगा। तेरी चैतन्यगति वहाँ रुक जाएगी। आहाहा! हमारे सामने देखेगा तो तेरी चैतन्यगति रुककर राग में आ जाएगा। आहाहा! उसे वहाँ दुर्गति कहा है। यह तो परमात्मा सन्त कहते हैं। धीरुभाई! तेरे सन्मुख देख। अन्दर तीन लोक का नाथ वीतरागमूर्ति प्रभु विराजता है। हमारे सामने देखने से तुझे राग होगा। तेरे सामने देखने से तुझे आनन्द और सुख होगा। वह यह कहा है। देखो! है?

गुरु की आज्ञा में वर्तने से कर्म सहज ही दब जाते हैं... राग दब जाता है। स्वभाव की दृष्टि में राग दब जाता है। **और गुण प्रगट होते हैं।** गुण अर्थात् पर्याय। गुण तो त्रिकाल है। परन्तु उसे वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होते हैं, उसे गुण प्रगट होते हैं, ऐसा कहने में आता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७ चैत्र कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक २४-४-१९७९
वचनामृत - १६१, १६२, १६८, ४०१, ३४९ प्रवचन-७७० (DVD 17)

संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो - ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं! वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं, वह तो सत्य ही है; मैं नहीं समझ सकता, वह मेरी समझ का दोष है ॥१६१॥

वचनामृत। १६१। १६१ बोल है। लड़कियों-बहिनों के बीच में यह बोला गया है। सहज बोला गया है। उसमें पहले तो यह शर्त करते हैं कि **संसार से भयभीत जीवों को...** यह शर्त। जिसे चार गति भटकने का डर लगा है, जिसे भवभ्रमण करने का भय लगा है। आहाहा! यह पहली शर्त। भवभ्रमण करना, वह जिसे डर, कलंक, दुःख लगता है। आहाहा! **संसार से भयभीत जीवों को...** यह शर्त। **किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो - ऐसा उपदेश गुरु देते हैं।** भगवान, गुरु या शास्त्र तीनों ही आत्मा पोसाये, ऐसा उपदेश देते हैं।

गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु को तो यह कहना है कि व्यवहार जो दया, दान, व्रत या श्रद्धा आदि हैं, उसे अस्थिरता से छोड़ना, ऐसा नहीं परन्तु पहले श्रद्धा में से छोड़ना। समझ में आया? आहाहा! अन्दर भाव दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव आते हैं, होते हैं। उनका श्रद्धा में से पहले त्याग करना चाहता है। अस्थिरता से छूटे, वह बाद में। तत्पश्चात् शुद्धोपयोग हो तब। यह शुभोपयोग है...

जब ऐसा कहने में आया, प्रभु! सवेरे कहा था न? कि भावक। कर्म जो जड़ है भावक, उसका यह पुण्य और पाप का भाव उस भावक का भाव अर्थात् भाव्य है। भावक

अर्थात् कर्म, उसका भाव अर्थात् भाव्य अर्थात् उससे होने योग्य। भाव्य अर्थात् होने योग्य ऐसा भाव। चाहे तो वह दया का, दान का, व्रत का, भक्ति, पूजा आदि का हो परन्तु वह भाव भावक का भाव है। आहाहा! यह बात श्रद्धा की अपेक्षा से कहना चाहते हैं।

कर्म जड़ है, उनके लक्ष्य से हुए पुण्य के भाव, व्यवहार के भाव वे भी कर्म के भाव का भाव्य है, उससे हुई दशा है। तेरा स्वभाव प्रभु तो ज्ञायक है। उस ज्ञायकस्वभाव का भाव्य अर्थात् भाव, वह विकार नहीं होता। प्रभु! तू ज्ञायक है न। चैतन्यरस और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से परिपूर्ण भरा है न। ऐसे ज्ञायकभाव का भाव अथवा भाव्य, वह विकार नहीं होता। भावक ऐसा जो भगवान आत्मा अर्थात् यहाँ ज्ञायक। उस ओर भावक, इस ओर ज्ञायक। आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य के आनन्द के स्वभाव के रस से परिपूर्ण भरपूर ऐसा जो ज्ञायकभाव, उसका भाव अर्थात् भाव्य अर्थात् होनेयोग्य—उस ज्ञायकभाव का होने योग्य भाव तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति, वह उसका भाव और भाव्य है। और वह सम्यग्दृष्टि को कर्म भावक... सवेरे आ गया है। यह तो बीच में जरा श्रद्धा से छोड़ने योग्य है, इतना उभारना है, सूक्ष्म बात है, भाई! भावक ऐसा जो कर्म...

यहाँ **संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार आत्मार्थ का पोषण हो...** तो राग को करे, उसमें आत्मा नहीं पोसाता। शुभराग हो, उसमें आत्मा नहीं पोसाता, उसमें तो विकार पोसाता है। आहाहा! बहिन, बहिनों-लड़कियों में बोल गयी हैं। है तो अन्तर की यथार्थ बात, परन्तु जगत को बैठना कठिन पड़ता है। आत्मार्थ पोसाये, ऐसा लिया है न? आत्मा ज्ञायकस्वरूप है। उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति हो, वह आत्मार्थ पोषक गुरु का उपदेश है। व्यवहार का उपदेश वह है परन्तु उसे भावक का भाव गिनकर उसके ज्ञान में जाननेयोग्य है। समझ में आया? **आत्मार्थ का पोषण हो - ऐसा उपदेश गुरु देते हैं।** भगवान और गुरु या ज्ञानी के उपदेश में ज्ञायकभाव में सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति वीतराग पर्याय होती है, वह आत्मार्थ पोसाये ऐसा उनका उपदेश होता है। उसे जो कर्म भावक है, उसका भाव जो राग, उसका पोषक, उसका उपदेश नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? **आत्मार्थ का पोषण हो - ऐसा उपदेश गुरु देते हैं।**

गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। आशय समझने को।

ज्ञानी, गुरु अथवा सर्वज्ञ के कहने का आशय जो व्यवहार में दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम होते हैं, वह भावक कर्म का भाव्य है। ऐसा करके उस कर्म के भावक का भाव है, उसे ज्ञायक के भाव से वह निषेध करनेयोग्य है। समझ में आया? इससे गुरु का आशय समझने को। आशय अर्थात् उनका अभिप्राय। राग कर्म का भाव है, ऐसा गुरु कहते हैं परन्तु उनका आशय क्या?—कि श्रद्धा में से उसे छोड़नेयोग्य है। आहाहा! अस्थिरता में से तो छोड़नेयोग्य तो पूर्ण शुद्धोपयोग हो, तब (छूटता है)। आहाहा!

परन्तु प्रथम सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में सर्वज्ञ और गुरु का यह आशय है कि यह राग है, वह कर्म के भावक का भाव है। जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वह सब कर्म के भावक का भाव्य है। आहाहा! तू ज्ञायकस्वरूप प्रभु है, तो ज्ञायक के भावक का भाव, वह भावक था, यह ज्ञायक है, ज्ञायक का भाव—भाव्य, यह वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह उसका भाव्य और भाव है। ज्ञायक का भाव्य और भाव वीतरागी पर्याय है। तब ज्ञायक को गुरु का आशय शिष्य समझना चाहता है, उसे कहते हैं, भावक का भाव जो पुण्य का परिणाम दया, दान, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह गुरु का आशय उसे श्रद्धा में से छुड़ाना चाहते हैं। श्रद्धा में से छुड़ाना चाहते हैं। आहाहा! अस्थिरता तो रहेगी। पूर्ण वीतराग नहीं हो, तब तक वह भाव तो आयेगा ही। परन्तु गुरु का आशय सम्यक् श्रद्धा में से उस व्यवहाररत्नत्रय का राग कर्म के भावक का भाव है, ऐसा उसका आशय है। उसे श्रद्धा में से छुड़ाने का आशय है। समझ में आया? रतनलालजी! ऐसी बातें हैं, बापू!

लोगों को व्यवहार ऐसा लगता है। सवेरे बहुत आ गया था कि जो व्यवहार है, वह सब ही व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि, भावक जो कर्म है... क्यों? कि आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण हैं, परन्तु कोई एक भी गुण भी विकार करे, इस प्रकार का कोई गुण नहीं है। समझ में आया? प्रभु! आहाहा! आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण हैं। अनन्त-अनन्त। अनन्त—अन्त नहीं, ऐसा जो आकाश। क्षेत्र बाहर जो लोक के बाहर। अन्त नहीं ऐसा जो आकाश, उसके जो प्रदेशों की संख्या, उसकी अपेक्षा एक प्रभु आत्मा में अनन्त गुण हैं। आहाहा! आकाश का अन्त है कहीं? यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह तो असंख्य योजन में है। जीव और जड़ से भरपूर। जिसे भगवान छह द्रव्य कहते हैं। वे छह

द्रव्य जिसमें रहे हैं। लोकयंते इति लोक: अर्थात् जिसमें द्रव्य लोकयंते ज्ञात होते हैं, उसे लोक कहते हैं। वे छह द्रव्य तो इस लोक में हैं परन्तु खाली में लोकयंते लोक नहीं हैं। वहाँ छह द्रव्य ज्ञात हो, ऐसी कोई चीज़ वहाँ नहीं है। वहाँ तो एक आकाश ही है और उस आकाश का कहीं अन्त दशों दिशा में है ? कहाँ आकाश हो गया ? ऊपर, ऐसे तिरछा या अधो। आकाश का भाग कहाँ अन्त आया ? अलोक का आकाश का अन्त कहाँ ? आहाहा ! उसका जो अन्तरहित दशों दिशाओं में आकाश जिसे तर्क में बैठना कठिन। परन्तु नास्तिक होवे, उसे विचार तो करना पड़ेगा न ? कि यह एक आकाश वस्तु है ऐसी की ऐसी... ऐसी... ऐसी... कहाँ तक गयी ? नास्तिक विचार करे परन्तु वह कुछ है या नहीं ऐसा का ऐसा ? तो जिसका अन्त नहीं, छोर कौन ? अन्तिम कौन ? छोर कौन, अन्तिम कौन ? अन्तिम अनन्त कौन ? अन्तिम प्रदेश कौन ? आहाहा ! उस अलोकाकाश का कोई अन्त नहीं है, प्रभु ! ऐसे जो अनन्त आकाश के प्रदेश, उसके जितने में एक परमाणु (जितनी) जगह में रुकता है, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसे प्रदेश आकाश के अन्तरहित अनन्त हैं। उससे इस भगवान आत्मा में अनन्त गुण हैं। जो उनकी संख्या है, उसकी अपेक्षा अनन्त गुण परन्तु उन अनन्त-अनन्त गुणों में कोई गुण विकार करे, ऐसा गुण नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए ज्ञायक का भाव भगवान अनंत गुण का समुद्र प्रभु है, उसका जिसे अन्दर स्वीकार हो और उसकी जिसे दृष्टि हो, तब उस ज्ञायकभाव का भाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान और वीतरागी पर्याय, वह ज्ञायकभाव का भाव-भाव्य होनेयोग्य वह है और उस काल में जो कुछ राग हो; अभी केवलज्ञानी नहीं है, इसलिए राग हो परन्तु वह राग भावक ऐसा जो कर्म जड़, उसके लक्ष्य से पर्याय में (होता है)। गुण में नहीं, द्रव्य में नहीं, तब पर्याय के अन्तिम अंश में विकार उत्पन्न होता है, वह कर्म के भावक का भाव्य गिनने में आया है। वह द्रव्य है, उसके भावक का भाव्य वह है। भगवान द्रव्य है, उसके भावक का अर्थात् ज्ञायक का भाव वह राग नहीं होता। आहाहा ! वह ज्ञायक का भाव्य अर्थात् भाव, भाव्य अर्थात् होनेयोग्य, इसलिए भाव्य ऐसा जो भाव, वह ज्ञायक का भाव वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, वह ज्ञायक का भाव्यरूपी भाव है। तब कर्म के भावकरूपी भाव्य का भाव वह शुभ और अशुभराग, चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का राग

हो... आहाहा! वह भावक का भाव्य होनेयोग्य उससे है। द्रव्यस्वभाव से होनेयोग्य नहीं है।

इस प्रकार **गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है।** गुरु को उसकी श्रद्धा छुड़ानी है। आश्रय छुड़ाना है। वह वस्तु छूट जाती है, ऐसा नहीं। छूटे तो वह तो वीतराग हो, तब छूटेगी। परन्तु प्रथम उसकी श्रद्धा में से कर्म के भावक का भाव्य ऐसा भाव, वह कर्म का है, तेरा नहीं। तू उसका पररूप से जाननेवाला, तेरे अस्तित्व में उसे जाननेवाला तू है। उसे स्पर्शकर भी जाननेवाला नहीं... आहाहा! उसमें प्रवेश कर जाननेवाला नहीं, तथा वह राग होता है, इसलिए ज्ञानी को राग है अस्तित्व, उसके कारण यहाँ राग का ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। वह तो ज्ञानगुण का उस समय का स्वपरप्रकाशकरूप उसे परिणमने की पर्याय में षट्कारकरूप परिणमने की योग्यता है, इसलिए परिणमा है। आहाहा! क्या कहा?

यह राग है, उसे भावक का भाव्य कहा। तब प्रभु ज्ञायक का भाव वीतरागदशा कही। समकित, वह वीतराग दशा है। आहाहा! उस दशा में वह राग आवे, उसे वह जानता है। यह भी एक व्यवहार है। परन्तु उस काल में उसकी ज्ञान की पर्याय स्वतन्त्र, राग है; इसलिए राग को जाननेरूप परिणमती है परतन्त्र—ऐसा नहीं है। आहाहा! वह राग का भाव है, उसकी अपेक्षा रखे बिना आत्मा ज्ञायक है, उसका भाव स्वपरप्रकाशक पर्याय हो, वह स्वपरप्रकाशक राग है, इसलिए स्वपरप्रकाशक है, ऐसा नहीं है। उसकी पर्याय का स्वरूप भी आत्मज्ञरूप से स्वपरप्रकाशकरूप से स्वयं से वह षट्कारक के परिणमन से प्रकाशित करता है।

षट्कारक का परिणमन अर्थात्? एक ज्ञान की पर्याय ज्ञानी को जो होती है, वह पर्याय स्वतन्त्र कर्ता है। उस पर्याय का कर्म / कार्य वह पर्याय है। उस पर्याय का कर्तापना राग है, इसलिए पर्याय जानती है, ऐसा नहीं है। पर्याय है, उसका करण-साधन पर्याय है। वह राग को जाने, इसलिए राग साधन है और ज्ञान साध्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें। वह ज्ञान की पर्याय ज्ञायक की भाव्य दशा जो गुण की है, वह षट्कारकरूप से स्वयंसिद्ध पर और द्रव्य-गुण की भी जिसे अपेक्षा नहीं। अपने द्रव्य-गुण की भी जिसे अपेक्षा नहीं। तथा राग हुआ है, उसकी तो अपेक्षा है ही नहीं। ऐसी समकिती को

स्वरप्रकाशक पर्याय का कर्तापना स्वतन्त्र, पर की अपेक्षा रखे बिना है और उसका साधन वह पर्याय। वह कर्ता पर्याय, कर्म अर्थात् कार्य भी वह पर्याय और साधन भी वही पर्याय। आहाहा! और पर्याय स्वयं अपने लिये रखकर परिणमी है। परिणमी है, वह स्वयं लेनेवाली और स्वयं देनेवाली स्वयं है। वह भी राग है, इसलिए उसका यहाँ ज्ञान हुआ— ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वह पर्याय कर्ता, कार्य, करण / साधन। साधन वह है। यशपालजी! ... परन्तु कहे, साधन क्या? साधन यह। जो ज्ञान की पर्याय है, वह साधन। वह पर्याय, पर्याय का साधन। आहाहा! वह पर्याय स्वयं के लिये हुई है, इसलिए सम्प्रदान। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान। वह पर्याय धर्म की वीतरागी जाननेवाले की पर्याय हुई, वह स्वयं से, स्वयं में रखने के लिये हुई है और स्वयं से हुई है। वह थी हुई अपादान है। और अपने आधार से पर्याय पर्याय के आधार से पर्याय हुई है। उस राग के आधार से तो नहीं परन्तु द्रव्य-गुण के आधार से नहीं। ऐसी बात है प्रभु! आहाहा!

वीतराग का विरह पड़ा। भाव रह गया वीतराग का था, वह रह गया। वाणी रह गयी और भाव रह गये। प्रभु का तो भरत में विरह पड़ा। आहाहा! परन्तु प्रभु का यह आशय है। वह गुरु का आशय है, वह प्रभु का आशय भी वही है। और सिद्धान्त का— शास्त्र का भी आशय वह है। आहाहा!

गुरु का आशय समझने के लिये शिष्य प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती... आहाहा! ऐसी बात करे कि उसे ज्ञान की पर्याय होती है, उसे अपने द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं, ऐसा सुनने पर भी शिष्य को शंका नहीं होती। आहाहा! ऐसा शिष्य लिया है। आहाहा! सवेरे कहा था न? ऐसा शिष्य लिया है। ३८ गाथा। पूरी की न ३८? वहाँ बिल्कुल अप्रतिबुद्ध शिष्य था, उसे गुरु ने पंचम काल के अप्रतिबुद्ध शिष्य को समझाया। पंचम काल के सन्त, गुरु, ज्ञानी ने उसे समझाया। पंचम काल के गुरु ज्ञानी। पंचम काल का अप्रतिबुद्ध (श्रोता)।

परन्तु ३८ गाथा में तो ऐसा लिया है, वह शिष्य समझा परन्तु ऐसा समझा कि प्रभु! अब मैं यह सम्यग्दर्शन मेरे स्वरूप के आश्रय से पाया, कोल-करार कहता हूँ केवलज्ञानी की साक्षी से कि मैं सम्यग्दर्शन से गिरनेवाला नहीं हूँ। यह ३८ गाथा में है। आहाहा!

समझ में आया ? यह सम्यग्दर्शन हुआ। पंचम काल का प्राणी अप्रतिबुद्ध था, पंचम काल के ज्ञानी ने मुझे समझाया। धीरुभाई! धीरज की बातें हैं, बापू! तो वह धीर शिष्य ऐसा कहता है, हम जो यह सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए, प्रभु! कोल-करार करते हैं हम सत्य से कि इस सम्यग्दर्शन से हम केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं। आहाहा! इसकी इस दर्शन की प्रतीति केवलज्ञान तक रहनेवाली है। बीच में गिरनेवाली नहीं।

सवेरे थोड़ा कहा था। धवल में पाठ है कि मति और श्रुतज्ञान जब हुआ, मति और श्रुतज्ञान हुआ—आत्मा का अनुभव हुआ। आत्मा ज्ञायक आनन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा भान हुआ, उस धवल में लेख है। परमागम है, भगवान की वाणी परम्परा जो आयी हुई है वह। चालीस पुस्तकें हैं। एक-एक पुस्तक १०-१२ रुपये की है। चालीस पुस्तकें हैं। परमागम षट्खण्डागम। सब है। सब पुस्तकें रखी हैं। सब एक-एक रखी हैं। उसमें एक शब्द मुनियों का ऐसा है। मुनि ऐसा कहते हैं कि हमें जो कुछ सम्यग्दर्शन (प्रगट हुआ है), भले हमें पंचम काल के प्राणी हैं। हम अप्रतिबुद्ध थे परन्तु हमें अब जो अन्तर में से आया और समझ में आया है, प्रभु! हम कोलकरार करते हैं, हम गिरनेवाले नहीं हैं। द्रव्य का नाश होवे तो हमारे समकित का नाश हो। आहाहा! ऐसा गुरु का आशय था, उसे शिष्य समझा-ऐसा मेरा कहना है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

मैं तो पहले वहाँ सम्प्रदाय में चौदहवाँ अध्ययन उत्तराध्ययन का है। छह जीव निकाय का। ब्राह्मण के छह पुत्र थे। उस समय कहता। (संवत्) १९८०-७९, ७८-७६। जब लकड़े माँ के निकट आज्ञा माँगते हैं। उसमें पाठ है। जननी के निकट आज्ञा माँगते हैं। जनेता! शरीर की जननी, हमारे आत्मा की नहीं, माँ! हम हमारे आत्मा की अनुभूति को अनुभवी है। हमने आत्मा क्या है, वह हमने जाना है। माता! हम हमारे स्वरूप में रमने के लिये वन में जानेवाले हैं। वन में जानेवाले हैं। यह नहीं अब। माता! एक बार रोना हो तो माँ! जननी! रो। तुम शरीर की माँ हो। परन्तु माता! कोल-करार करते हैं। यह गाथा है। तब कहते थे। ७६ में।

'अजैव धम्मं परिवज्ज्यामो'। उत्तराध्ययन का चौदहवाँ अध्ययन। यह वहाँ ६-७ हजार श्लोक कण्ठस्थ थे न तब तो सब। उसमें यह श्लोक है। माता को कहता है, माता! हमारा आनन्द ज्ञायकभाव, हमने (उसका) पता लिया है। अब हम उसमें रमने के लिये,

माता! हम वन में अकेले सिंह की भाँति जाएँगे। जहाँ बाघ और भालू और काला नाग तथा सिंह हो, वहाँ जाएँगे। परन्तु हम हमारे आत्मा को वहाँ साधेंगे। माता! कोल-करार करते हैं कि 'अजैव धम्मं परिवज्ज्यामो'। हम आज ही अन्तर के अनुभव को, चारित्र को अंगीकार करना चाहते हैं परन्तु हम कहते हैं। दूसरा पद है। 'अजैव धम्मं परिवज्ज्यामो...' माता! अब आत्मा के आनन्द में रमने के लिये वन में जाते हैं। माता! ... जो हम चारित्र अंगीकार करना चाहते हैं। ... परन्तु फिर से माता! हम यह भव करनेवाले नहीं हैं। फिर से भव करनेवाले नहीं हैं। दूसरी जननी मुझे अब है नहीं। आहाहा! उस समय कहते थे, हों! चौदहवीं गाथा। कण्ठस्थ थी न सब। 'अजैव धम्मं' आज ही धर्म को अंगीकार करूँगा, उन गुरु का आशय यह है, ऐसा कहते हैं। ... माता हम आत्मा के आनन्द में आज रमने चले जाएँगे। हम कोल-करार करते हैं। जिसे ग्रहण करने से हम पुनः भव धारण करनेवाले नहीं हैं।

हे माता! ... तीसरा पद है। इस एक गाथा के चार पद हैं 'अजैव धम्मं परिवज्जयामो'। आज ही हम धर्म को अंगीकार करेंगे। ... जिसे अंगीकार करने से, माता! हम दूसरा भव करनेवाले नहीं हैं। दूसरी जननी को रूलाते नहीं हैं। ... माता! जगत में अनन्त काल में अप्राप्त कौन सी चीज़ बाकी रही है? तीसरा पद है। ... भूतकाल में, अनन्त काल में कौन सी वस्तु प्राप्त करना बाकी रही है? अनन्त वस्तुएँ मिल गयी हैं सब शरीर, वाणी, मन। एक आत्मा नहीं मिला।

.... श्रद्धा... रागं। माता! श्रद्धा करके हमारे प्रति का ... राग को छोड़, माँ! हम अब चले जाएँगे। हमें तुम्हारी अनुमति की आज्ञा के लिये व्यवहार है तो खड़े हैं। बाकी देगी या न दे, हम तो वन में चले जाएँगे। आहाहा! हमें आज्ञा की भी आवश्यकता नहीं है। आहाहा! ... प्रभु! माता! अप्राप्त कौन सी चीज़ रह गयी है? यह वह शब्द है। तीसरा पद है। चौदहवाँ अध्ययन है। ... अप्राप्त कौन सी चीज़ है? ... श्रद्धा कर, माता! और हमारे प्रति का राग छोड़। आहाहा! हम हमारे आनन्द में-आराम में (जाते हैं)। 'निज पद रमे सो राम कहिये।' हम निजपद में रमने के लिये वन में जाएँगे। यह राग की क्रीडायें हमें अब सुहाती नहीं हैं। आहाहा! यह गुरु का आशय है। समझ में आया? आहाहा! धीरुभाई तो बराबर ऐसा ध्यान रखकर सुनते हैं, हों! बापू! ऐसी बात कहाँ है? भाई! आहाहा!

यह गुरु का उपदेश... आहाहा! समझने को शिष्य प्रयत्न करता है। ऐसा है उनका आशय, हों! **गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं!** वे यह क्या कहते हैं ऐसी बातें? पंचम काल के प्राणी के लिये ऐसी बातें?—ऐसी शिष्य को शंका नहीं होती। आहाहा! पंचम काल का प्राणी और मुझे उपदेश देनेवाले पंचम कालवाले और वे ऐसा कहें? आहाहा! प्रभु! तू एक बार यह अंगीकार कर चैतन्यद्रव्य को। फिर से वह द्रव्य गिरे तो तू गिरेगा। वह द्रव्य गिरनेवाला नहीं है, तुझे समकित भी होनेवाला, वह गिरनेवाला नहीं है। जा! आहाहा! ऐसी बात में शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं? समझ में आया? आहाहा!

वह ऐसा विचारता है कि गुरु कहते हैं, वह तो सत्य ही है;... बापू! परन्तु गुरु की आज्ञा क्या है? व्यवहार करने की आज्ञा नहीं है। वह पद्धति नहीं है। यह कहा था न, बापू! पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। पंचास्तिकाय है न यह? समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय। उसकी १७२ गाथा है। उसमें ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि यह चारों ही अनुयोगों का सार क्या? भले कथानुयोग में कथा की बात आयी हो, चरणानुयोग में व्रत, तप की व्याख्या विकल्प की आयी हो। द्रव्यानुयोग में तत्त्व के सन्मुख की आयी हो और कथानुयोग में कथा आयी हो—धर्मकथा, चरणानुयोग, करणानुयोग अर्थात् कर्म, कर्म की बात अनेक प्रकार से आयी हो और द्रव्यानुयोग की आयी हो। परन्तु प्रभु! इन चारों अनुयोगों का सार; १७२ गाथा में पाठ है (कि) चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है। वीतराग और वीतरागी सन्त वीतरागदशा प्रगट कराना चाहते हैं। आहाहा! और वह वीतरागी दशा स्व वीतराग चिदानन्दस्वरूप के अवलम्बन बिना वीतराग दशा नहीं होती इसलिए चारों अनुयोगों का सार चिदानन्द जिनस्वरूपी प्रभु का आश्रय लेना, वह उसका सार है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है, बापू! दुनिया को जानते हैं न, बापू! बहुत प्रकार हैं। और ऐसा भी कहते हैं कि यह तो व्यवहार को लोप करते हैं। बात सच्ची, बापू! व्यवहार की श्रद्धा छुड़ाते हैं। अभी व्यवहार नहीं छूटेगा। व्यवहार तो पूर्ण शुद्धोपयोग होगा, तब छूटेगा। यह ... समझ में नहीं आता। यह इसमें-बहिन में कहीं है। भाई! बहिन में इसमें कहीं है। श्रद्धा को छुड़ाते हैं, ऐसा इसमें कहीं है। यहाँ सब याद रहता है कहीं? बापू! वह तो भाव याद रहते हैं। गाथा के

भाव याद रहते हैं परन्तु गाथा-बाथा बहुत याद नहीं रहती। इतना क्षयोपशम नहीं है। आहाहा! भाव याद रहते हैं, प्रभु! परन्तु वह है। श्रद्धा छुड़ाते हैं ऐसा है। बहिन की भाषा में है। आहाहा!

बहिन की बात ही अलग है। बहिन तो कोई एक अमृतसागर पकी है। आहाहा! यह तो जरा स्त्री का देह आ गया, इसलिए मुर्दा जैसी दिखती है परन्तु अन्दर के अमृत के सागर के उछाल-ऊफान के अनुभव में-वेदन में उन्हें कहीं (बाहर में) सुहाता नहीं। आहाहा!.... लिखा है न? सवेरे पढ़ा जाता था। काले में लाल अक्षर। ४०१। ४०१ बोल है। आहाहा! यह चकला है। ४०१। है इसमें? ४०१

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर... है शुरुआत? **स्वरूप की ओर ढल रहा है।** आहाहा! **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है। 'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग आवे, विनय आवे, परन्तु वह हमारा देश नहीं है। आहाहा! यशपालजी! भाषा गुजराती है। **यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** ४०१। यह पुण्य का भाव उत्पन्न हो... यह माता जगत अम्बा ऐसा कहती है, अरेरे! हमें यह विकल्प आया, वह हमारा देश नहीं है। अरे..! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?** आहाहा! समकिती को राग आता है परन्तु परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? आहाहा! **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।** यह राग का भाव शुभ है, उसमें धर्मी को सुहाता नहीं। रुचता नहीं—श्रद्धा। अस्थिरता तो आयी है। आहाहा! **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** राग के विकल्प की असंख्य बात हो शुभ की। उसमें हमारा कोई नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह ही। ३४९। आहाहा! ४९ न? ३४९। देखो! नीचे है।

हे जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर,... चौथी लाईन। **अपने स्वयं से उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके...** है? स्थिरता (अपेक्षा से) नहीं छोड़ सके, प्रभु! अभी स्थिरता तो चारित्र हो और स्थिर हो, (तब छूटेगा)। छोड़ भले न सके **तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़!** आहाहा! है? धीरुभाई! स्थिरता अर्थात् आसक्ति न छूटे परन्तु प्रभु! एक बार श्रद्धा से तो छोड़। आहाहा! वह मेरी चीज़ नहीं, राग हमारा देश नहीं। यह व्यवहाररत्नत्रय

का विकल्प, वह हमारा देश नहीं। यह हम परदेश में आ पड़े हैं। अरर! आहाहा! है यह? **श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़!**

यहाँ यह कहते हैं। यह विभाव हमारा देश नहीं है। यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्य आदि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है। हमारे नाथ में अन्दर ज्ञान, आनन्द बसता है, वह हमारा देश है। वह द्रव्यस्वरूप वह हमारा देश है। यह पुण्य के परिणाम, वह हमारा देश नहीं। आहाहा! यहाँ अब शोर मचाते हैं कि अरर! यह दया, दान, व्रत के परिणाम, वे छोड़ने योग्य? अरे.. प्रभु! श्रद्धा से छोड़नेयोग्य है। बापू! वह तो राग है। भाई! तुझे श्रद्धा से छोड़ने योग्य नहीं बने, तब तक तुझे निर्मल नहीं होगा। आहाहा! भले स्थिरता में अस्थिरता आवे तो कहते हैं कि वह हमारा देश नहीं है। आहाहा!

जहाँ हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! हमारा नाथ चिदानन्द प्रभु वह हमें हमारे ज्ञान में ज्ञात हुआ और अनुभव में आया, वहाँ हम जा रहे हैं। **हमें शीघ्रता से...** इसमें शब्द है, भाई? **हमें शीघ्रता से हमारे मूल वतन में जाकर...** मूल वतन तो प्रभु द्रव्य-देश है। आहाहा! ज्ञायक और आनन्द का सागर ध्रुव चैतन्यमूर्ति मूल वतन वहाँ है। यह विकल्प उठे, वह हमारा वतन नहीं। आहाहा! श्रद्धा अपेक्षा से तो हमारा वतन नहीं। अस्थिरता है। आहाहा! समझ में आया? रतनलालजी! यह तो आया है तुम्हारे। अभी तो अब बहुत पुस्तकें (प्रकाशित हो गयी हैं)। लगभग लाख हो जाएँगी। बहिन की लगभग लाख पुस्तकें हो जाएँगी। चारों ओर। आहाहा! यह तो अमृत का सागर / समुद्र इसमें भरा है। आहाहा!

कहा नहीं? एक ब्राह्मण वहाँ भावनगर में है। अर्धमागधी का प्रोफेसर ब्राह्मण है। अर्धमागधी अपने में है न? वह बहुत बड़ी पाठशाला है भावनगर। उसका प्रोफेसर एक बार आया। आया तो जरा रामजीभाई कहे, इन्हें कुछ दो। तो यह पुस्तक दी। ब्राह्मण है। अर्धमागधी का प्रोफेसर है। उसे जहाँ दी और ले गया। उसमें उसका पत्र आया— महाराज! आपने यह क्या हमें दिया? इसके पेरा-पेरा में निधान भरे हैं। वह ब्राह्मण था। यहाँ तो प्रभु! आत्मा की बात है, उसमें ब्राह्मण कहाँ और बनिया कहाँ? ढेढ़ कहाँ और भंगी (कहाँ)? वह तो सब देह की दशा है। आत्मा कहाँ भंगी और बनिया है? नाथ!

आहाहा! तू तो चैतन्यमूर्ति नाथ है न! तुझे नात और जाति कैसी? तेरी जाति तो सिद्ध की जाति में तू है। तेरी नात सिद्ध की और तेरी जाति सिद्ध की है। आहाहा! यह बनिया और ब्राह्मण और स्त्री, पुत्र और आदमी... बापू! यह कोई तेरी चीज़ में है नहीं। यह कहते हैं न यहाँ?

हमारे मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,... क्यों? **जहाँ सब हमारे हैं।** आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु प्रभु! सत्य तो यह है। यह राग व्यवहार-व्यवहार करके व्यवहार से निश्चय होगा, ऐसा कर-करके जीव को मार डाला है। मिथ्यात्व का बड़ा शल्य है। वह कर्म भावक का भाव, उससे चैतन्य के भाव को लाभ हो... आहाहा! उस राग से वीतरागता आवे, उस वीतरागभाव से रागभाव भिन्न परदेश है, उससे स्वदेश में जाया जाए, (यह शल्य है)।

श्रीमद् ने ऐसा कहा है 'शेष कर्म का भोग है भोगना अवशेष रे।' हम प्रयत्न करते हैं परन्तु अभी लगता है कि एकाध भव करना पड़ेगा। अभी राग वेदन जाता नहीं है। दृष्टि में निषेध है परन्तु अस्थिरता मिटती नहीं है। 'अशेष...' बाकी 'कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे, इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...' हमारा देश स्वरूप है, वहाँ हम अब जानेवाले हैं। आहाहा! वह स्वदेश यह है, प्रभु! हम काठियावाड़ी और यह मुम्बई हमारी और यह सब कुछ नहीं, प्रभु! यह सब व्यर्थ की भ्रमणाएँ हैं। आहाहा! यह मारवाड़ी है न... समझ में आया?

यहाँ यह कहा। **गुरु कहते हैं, वह तो सत्य ही है; मैं नहीं समझ सकता, वह मेरी समझ का दोष है।** ऐसा शिष्य समझता है। एक पेरेग्राफ हुआ। अब पाव घण्टे (१५ मिनिट) हिन्दी (चलेगा)।

द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है। ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्याय में निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने—परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है॥१६२॥

द्रव्य सदा निर्लेप है। है? १६२। द्रव्य अर्थात् आत्म भगवान सदा निर्लेप है। सकल निरावरण प्रभु आत्मा त्रिकाल द्रव्य है। ३२० गाथा में ऐसा कहा है। ३२०। इसमें है? देखो उसमें है। क्या कहते हैं? कि आत्मा अपने स्वभाव का भान हुआ तो एकदेश व्यक्ति आनन्द और ज्ञान की व्यक्त दशा प्रगट हुई। फिर भी ज्ञानी ध्याता पुरुष। ३२० गाथा में है। संस्कृत है। ध्यान करनेवाला पुरुष ज्ञानी ऐसा भाता है कि मैं तो सकल निरावरण हूँ, अभी। सकल निरावरण-मेरे द्रव्य में आवरण त्रिकाल नहीं है। द्रव्य को आवरण हो तो द्रव्य का अभाव हो जाए। पर्याय में आवरण है तो पर्याय में तो निर्मलता का अभाव है। किन्तु द्रव्य जो वस्तु मेरी चीज़ है, उसमें बिल्कुल आवरण है नहीं।

सकल निरावरण अखण्ड। मैं तो अखण्ड वस्तु हूँ। पूर्णानन्द का नाथ मेरा प्रभु तो अखण्ड है अन्दर। जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं। राग तो नहीं। संस्कृत टीका है। ३२० गाथा। समयसार। जयसेनाचार्य की टीका है। मैं तो सकल निरावरण अखण्ड, पर्याय का और गुण-गुणी का भेद भी मेरी चीज में नहीं। मैं तो अखण्ड हूँ। आहाहा! एक हूँ। मैं तो एकरूप हूँ। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन चीज़ नहीं। पर्याय ऐसा कहती है, जानती है कि मैं एक हूँ। त्रिकाली ज्ञायकभाव मैं एक हूँ। यह भगवान का वचन है। आहाहा! संस्कृत जयसेनाचार्य की टीका का है। सब व्याख्यान हो गया है, वहाँ तो।

एक.. आहाहा! प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। कैसा हूँ मैं? मेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष जानने में आता है, ऐसा मैं हूँ। परोक्ष रहे, ऐसी मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ जो अन्दर आत्मज्ञान है, वह प्रत्यक्ष प्रतिभासमय (है)। प्रत्यक्ष मेरे ज्ञान में प्रतिभास-मेरी ज्ञान की पर्याय में सारा द्रव्य भास में आता है। वह चीज़ पूरी पर्याय में नहीं आती। लेकिन पर्याय में प्रतिभास-जो है, उसका प्रतिभास आता है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव अपने को ऐसे भाता है। आहाहा! प्रत्यक्ष प्रतिभासमय।

अविनश्वर। मैं तो अविनश्वर हूँ। पर्याय जो नाशवान है। केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है। केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय की अवधि है। वह भी नियमसार की शुद्ध अधिकार की पहली ३८वीं गाथा। शान्तिभाई के वहाँ लिखी हुई है। पंकज के कमरे में है। मैं... आहाहा! त्रिकाल निरावरण अक्षय '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' मेरी पर्याय

केवलज्ञान की है, वह भी बहिरतत्त्व है, बहिरतत्त्व है। मुझे हेय है। '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' यह पाठ है। ३८वीं गाथा। '**मुवादेयमप्पणो अप्पा**' यह दूसरा पद। '**जीवादिबहित्तच्चं**' जीव की एक समय की पर्याय और धर्म की-संवर-निर्जरा की पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय, भगवान ऐसा कहते हैं कि ये पर्याय '**बहित्तच्चं**' यह बहिरतत्त्व है। आहाहा! बहिरतत्त्व मेरा अन्तर तत्त्व भिन्न है। अरेरे! सुनने मिले नहीं, वह कब करे? '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' पंकजभाई! है या नहीं? कमरे में इस तरफ? सामने वह है। सामने ९वीं गाथा और यह ३२० और यहाँ यह है ३८वीं। तीन गाथा है। भरतभाई! भाई के कमरे में यह है। आहाहा!

'**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' जीव हेय-छोड़ने लायक है। कौन जीव? पर्याय। त्रिकाली द्रव्य नहीं। एक समय की जीव की पर्याय चाहे तो संवर हो, निर्जरा हो, मोक्ष हो, केवल हो। लेकिन वह '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' पर्याय है, वह बहिरतत्त्व है। '**मुवादेयमप्पणो अप्पा**' मैं त्रिकाली भगवान जो निरावरण अखण्ड एक प्रतिभासमय हूँ, वह मुझे ग्राह्य और आदरणीय है। उपादेय वह एक ही है। समझ में आया? वाणी में तो बहुत फर्क है, प्रभु! क्या करें? वर्तमान में प्रचलित प्रसार से यह बात बहुत अलग है। परन्तु तीन काल में फिरे नहीं, ऐसी बात है यह। द्रव्य फिरे तो ये भाव फिरे। ऐसा जो यह भगवान आत्मा। थोड़ा हिन्दी है न।

अविनश्वर शुद्ध परिणामिक परमभावलक्षण। मैं तो शुद्ध स्वभाव सहज स्वभाव त्रिकाल, पारिणामिक अर्थात् स्वभावभाव त्रिकाल, ऐसा जिसका लक्षण है, ऐसा निज परमात्मद्रव्य—निज परमात्मद्रव्य। भगवान का द्रव्य नहीं, तीर्थंकर का नहीं। निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। जो सकलनिरावरण है, वही मैं हूँ। जो अखण्ड है, वही मैं हूँ। जो एक है, वही मैं हूँ। जो प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है, वही मैं हूँ। जो अविनश्वर है, वही मैं हूँ। जो शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण है, वही मैं हूँ। आहाहा! उसमें है। संस्कृत में है। गुजराती बनाया है। हिन्दी में है? इसमें नहीं होगा। हिन्दी में है। एक हिन्दी है तो सही। गुजराती है। दूसरा है। परन्तु गुजराती में है। यहाँ तो सब तैयार कायदे लिखे होते हैं न। रामजीभाई लिखे न जज ने यहाँ यह कायदा कहा है। वैसे ये सब कायदे हैं। आहाहा!

मैं तो शुद्ध पारिणामिक निजपरमात्मद्रव्य; भगवान का द्रव्य भी मेरा नहीं। वह तो

परद्रव्य है। पंच परमेष्ठी का द्रव्य मेरा नहीं। वह परद्रव्य है। शान्तिभाई! अब उसमें पंकज और भरत कहाँ आये? आहाहा! निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ। मैं तो अपना निज परमात्मद्रव्य जो वस्तु है, वह मैं हूँ। ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि जीव अनुभवी ऐसी भावना करते हैं। परन्तु ऐसी भावना करता नहीं, परन्तु ऐसी भावना करता नहीं कि खण्ड-खण्ड ज्ञान मैं हूँ। केवलज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान खण्ड-खण्ड ज्ञान है। ऐसी भावना धर्मी की होती नहीं। आहाहा! अपने स्वरूप की भावना अखण्ड है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मोहरछाप पड़ी। अखण्ड त्रिकाली आवरण रहित उसकी दृष्टि और अनुभव हुआ, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। उसके बिना सब थोथा है। एक संख्या के बिना शून्य है सब। शून्य लाख लिखो तो भी संख्या गिनने में नहीं आती। परन्तु एक संख्या लिखे तो संख्या गिनी जाएगी। वैसे निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ, ऐसी समकिती की भावना होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१८) चैत्र कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक २५-४-१९७९
वचनामृत - १६२, ४०१, १६७, १७८ प्रवचन-७७१ (DVD 17)

बहिन तो अन्दर बहिनों के पास अनुभव में स्थित हैं और बात निकल गयी है। ये शब्द लिखे गये हैं। अन्तर के आनन्द के अनुभव की भूमिका में से यह वाणी आयी है। यह वाणी लड़कियों ने लिख ली है। लोगों को-मनुष्यों को कठिन पड़े। आहाहा! परन्तु वस्तु ऐसी है। देखो, १६२।

द्रव्य सदा निर्लेप है। क्या कहते हैं? यह वस्तु है भगवान आत्मा। वस्तुरूप से उसका शाश्वत् सत्ता के सम्बन्ध स्वभावरूप से वह निर्लेप है। वस्तु को लेप नहीं। वस्तु को लेप होवे तो वस्तु अवस्तु हो जाए। समझ में आया? १६२। **द्रव्य सदा निर्लेप है।** बैठना कठिन भाई! आहाहा! यह वस्तु है, वह तो महाप्रभु सहजात्म स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन द्रव्य-वस्तु; उसे लेप और आवरण कभी नहीं है। वस्तु को आवरण और लेप होवे तो वस्तु अवस्तु हो जाए। आहाहा!

वह **द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है।** वह जाननेवाला भगवान आत्मा चाहे तो दया, दान, व्रत आदि के विकल्प उठें परन्तु उनसे भिन्न, जाननेवाला भिन्न ही तैरता का तैरता अर्थात् राग से भिन्न है। विश्व के ऊपर तैरता, आया था न सवेरे? कठिन बात, भाई! प्रभु है। वह मौजूद चीज़ है। जिसकी सत्ता-अस्तित्व अनादि-अनन्त निर्लेप है।

सकल निरावरण। ३२० गाथा में कहा था। जयसेनाचार्य की टीका, समयसार। अन्तिम ऐसा कहा, प्रभु! जो सकल निरावरण अखण्ड एक, वह त्रिकाल। निर्णय किया, अनुभव किया, वह पर्याय ने। परन्तु पर्याय ऐसा कहती है, ऐसा जानती है कि मैं सदा त्रिकाल आवरणरहित अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक सहजभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आहाहा! जो जो शब्द लागू पड़े, जो यह

द्रव्य सकल निरावरण वह मैं हूँ। जो द्रव्य सकल निरावरण है, वह मैं हूँ। जो द्रव्य अखण्ड है, वह मैं हूँ। जो द्रव्य एकरूप है, वह मैं हूँ। जो है, वह हूँ यह दो शब्द है। जो शब्द में अन्तिम वह शब्द आता है। आहाहा! उसमें से यह बहिन ने बात की है।

जो प्रत्यक्ष प्रतिभासमय वस्तु है, वह मैं हूँ। जो अविनश्वर है त्रिकाली, वह मैं हूँ। जो शुद्ध स्वभाव पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसा पर्याय अनुभव करती है। ऐसे पर्याय ऐसा जानती है। आहाहा! तथापि... सूक्ष्म बात है, भाई! यह पर्याय जो है, वह द्रव्य को जो अनुभव करे और निर्णय करती है कि मैं द्रव्य हूँ, ऐसा जो पर्याय का उत्पाद, उसे द्रव्य और पर्याय के व्यय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! तथापि पर्याय ऐसा कहती है कि मैं निज परमात्म निर्लेप निज द्रव्य हूँ। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! तथापि वह उत्पाद जो है सम्यग्दर्शन का या सम्यग्ज्ञान का, उस उत्पाद को ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं है, व्यय की अपेक्षा नहीं तो निमित्त की अपेक्षा तो कहाँ रही? आहाहा!

१०१ गाथा। प्रवचनसार, १०१ गाथा की यह बात है। उत्पाद को व्यय और ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! गजब बात नाथ! जो अन्दर सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो, सम्यक् शान्ति स्वरूप की रमणता, स्वरूपाचरण उत्पन्न हो, उस पर्याय को, उस पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है परन्तु द्रव्य की उसे अपेक्षा नहीं, ऐसी वह पर्याय स्वतन्त्र है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। अब यह पर्याय की बात है। जाननेवाला त्रिकाल निर्लेप है और उसकी दृष्टि करने पर वर्तमान पर्याय में जाननेवाला भिन्न ही तैरता का तैरता है। उसकी पर्याय में रागादि का ज्ञान हो, तथापि उस राग की अपेक्षा उस ज्ञान को नहीं है और राग को जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। इसलिए वह राग से भिन्न तैरता का तैरता है। आहाहा! गुजराती तो समझते हो। समझ में आया? सेठ तो समझते हैं न। बहुत बार आते हैं।

स्वयं ज्ञाता... पोते-स्वयं। स्वयं जाननेवाला। ऐसा कहकर क्या कहा? कि उसे जो रागादि आवें, उसके कारण वह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय नहीं होती। वह तो अपने

जाननहार के स्वभाव के कारण स्वयं को जाने और राग को जाने, ऐसा कहना वह व्यवहार है। परन्तु राग को जानना और स्व को जानना, ऐसी एक समय की पर्याय स्वतन्त्र पर की अपेक्षा बिना तैरता का तैरता, भिन्न का भिन्न ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बात है। है?

जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी... निर्मल स्फटिक है, उसमें प्रतिबिम्ब दिखने पर भी **स्फटिक निर्मल है,...** स्फटिक में कुछ भी पर की अपेक्षा आयी और उसे उस स्वच्छता में जाने, इसलिए उसकी पर अपेक्षा की पराधीनता होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भगवान! **स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी...** अब तो यहाँ पर्याय में लिया। वह तो निर्लेप है, वह तो त्रिकाल है। परन्तु वह त्रिकाल निर्लेप प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि और ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञात होता है, उस पर्याय में परसन्मुख के लक्ष्यवाले थोड़े विभाव भी होते हैं, तथापि वे विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है। वह विभाव का ज्ञान करता है। विभावरूप परिणमित नहीं होता। आहाहा! विभावरूप वह परिणमता नहीं है। स्वयं स्वपरप्रकाशक के स्वभावरूप, विभाव होने पर भी उनकी अपेक्षा बिना, स्वपरप्रकाशकरूप से विभाव को जानने पर भी जीव मलिन, राग को जाना, इसलिए मलिन—ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

जैसे स्फटिक में दूसरा ज्ञात होने पर भी स्फटिक तो निर्मल है। स्फटिक देखा है। इतना स्फटिक। जामनगर में। स्फटिक रत्न देखा है। इतना बड़ा। जामनगर में (संवत्) १९९१ के वर्ष। मगसिर महीने में। वहाँ एक बड़ा छह लाख का सोलेरियम... ञ्चया कहलाता है? सोलेरियम है। वहाँ आगे थे अपने डॉक्टर प्राणभाई। यहाँ रहते, गुजर गये। तब ढाई हजार का वेतन था। ९० के वर्ष। वहाँ एक बार १००वीं गाथा चलती थी न अपनी? समयसार की १००वीं गाथा। वह सुनने आये हुए थे। सुनने तो आते थे दिवान-बिवान सब। वह कहे, मेरा यह देखो आपको उसमें दृष्टान्त में ठीक पड़ेगा। देखने गये, तब इतना स्फटिक बताया था। इतना, हों! स्फटिक। निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा स्फटिक जैसा अन्दर निर्मल है। उसे विभाव अर्थात् दया, दान, रागादि के परिणाम वह अपनी भूमिका में रहकर उन्हें जानता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है परन्तु उन्हें जानने का ज्ञान और अपना ज्ञान, वह स्व-पर अपने

अस्तित्व में अपने से हुआ है। उस ज्ञान में विभाव व्यवहार से ज्ञात होने पर भी वह पर्याय निर्लेप है। आहाहा! समझ में आया? है?

जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है— आहाहा! वह विभाव दया, दान, व्रतादि का शुभराग, उसे जानने पर भी, ऐसा कहा वह अपेक्षा से है। बाकी वास्तव में तो उस क्षण में ज्ञान की पर्याय स्व और पर को जानने की अपने स्वतन्त्र षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुई है। आहाहा! वह जानने की पर्याय षट्कारक अर्थात् कर्ता, कार्य, साधन, अपने लिये, अपने से, अपने आधार से (हुई है)। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू!

सम्यग्दर्शन चीज़ कोई अलौकिक है! आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा निर्लेप निरावरण ज्ञात होता है। क्योंकि वस्तु है, उसे लेप और आवरण नहीं है। वह तो एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध ज्ञात होता है व्यवहार। उस द्रव्यस्वभाव में लेप और आवरण नहीं है, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसे जाननेवाला जो समकिती। आहाहा! पहले धर्म की पहली सीढ़ीवाला, वह द्रव्य को निर्लेप देखता है और वह निर्लेप देखने में वर्तमान पर्याय में उसे दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम आते हैं। परन्तु उन्हें जानते होने पर भी धर्मी की पर्याय और उसका द्रव्य लेप को प्राप्त नहीं होता। अर..र..! ऐसी बातें हैं। है?

जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है। आहाहा! किसे? वस्तु तो त्रिकाली है परन्तु है, उसका भान हुआ है उसे। वस्तु तो निर्लेप त्रिकाली है। परन्तु वह है कारणपरमात्मा प्रभु निर्लेप निरावरण है। परन्तु है, उसका जिसे ज्ञान हुआ है सम्यग्ज्ञान में, उसे वह स्व को जानते हुए विभाव के परिणाम दया, दान, व्रत के आते हैं, तथापि उससे वह पर्याय मलिन नहीं होती, निर्मल रहती है। आहाहा! है? **विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है।** आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, प्रभु! आहाहा! अनन्त काल से इसने सम्यग्दर्शन क्या चीज़ और कैसे प्राप्त हो? इसकी दरकार नहीं की। ऐसा का ऐसा समाज में बाहर में हो.. हा.. हो.. हा.. करके सब जिन्दगी चली गयी। आहाहा! अन्तर में तत्त्व प्रभु सदा निर्लेप है। और वह विभाव को जानने पर भी वह भगवान स्वयं मलिन नहीं होता। पर्याय में मलिन नहीं होता। वस्तु तो निर्मल है।

सम्यग्दृष्टि की पर्याय त्रिकाल निर्लेप और अनुभव को जानती है, तथापि उसकी दशा में पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत के, काम-क्रोध के आते हैं, तथापि वह धर्मी-समकिती जीव विभाव को जानने पर भी वह लेपपने को प्राप्त नहीं होता। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वस्तुस्थिति... अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ। एक सेकेण्ड भी वह चीज़ क्या है, उसे प्राप्त करने के लिये इसने प्रयत्न किया ही नहीं। बाहर का थोथा कर-करके इसकी अनन्त जिन्दगी निकल गयी। आहाहा! यह कहते हैं।

जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है— आहाहा! वह **ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्याय में निर्लेपता होती है।** अब कहते हैं, वह निर्लेप त्रिकाली तो है। वस्तु जो है, वह तो निर्लेप निरावरण अन्दर भगवान आत्मा है। परन्तु उसे जाननेवाला समकिती जीव उसकी पर्याय में... आहाहा! **ज्ञायकरूप परिणमित होने पर...** जाननेवाले के आश्रय से होती वर्तमान पर्याय में उसे निर्मलता प्रगट होती है। यह तो चौथे गुणस्थान (की) अभी बात है, हों! पाँचवाँ और छठवाँ वह तो बापू, कहीं आगे है। आहाहा! पर्याय में निर्लेपता होती है। आहाहा! क्योंकि जहाँ राग से भिन्न पड़कर, विकल्प से भिन्न पड़कर प्रभु पूर्णानन्द के नाथ को जहाँ अनुभव किया और पकड़ा, उसे विभाव होने पर भी वह निर्लेपता को पाता है। उस विभाव से उसकी पर्याय मलिन नहीं होती। द्रव्य तो निर्लेप ही है। परन्तु उसकी पर्याय में भी विभाव ज्ञात होने पर भी पर्याय विभावरूप, मलिनरूप नहीं होती। ऐसी वस्तु की सम्यग्दृष्टि के जीव की ऐसी स्थिति है। आहाहा! और ऐसी दृष्टि हुए बिना तो इसके अनन्त भव का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहाहा!

'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं... आहाहा! जो अन्दर में रागादि ज्ञात होते हैं, वे परज्ञेय हैं, मेरा स्वज्ञेय नहीं। मैं जो जाननेवाला-देखनेवाला भगवान निर्लेप वह यह राग, वह मैं नहीं। आहाहा! वह तो ज्ञेय है-परज्ञेय है। जितना व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प और राग उठता है, उसका भी मैं परज्ञेयरूप से जाननेवाला हूँ। ऐसी धर्मी की पहली सीढ़ी, पहली दृष्टि के पहली श्रेणी में ऐसा होता है। आहाहा!

'मैं तो ज्ञायक हूँ।' रागादि हो, वह विभाव है, वह पर है। वह मेरी द्रव्य-गुण

शक्ति में तो नहीं परन्तु मेरी पर्याय में भी वह परज्ञेय नहीं है। परज्ञेय का ज्ञान, वह भी मुझसे हुआ है। वह राग है, इसलिए राग को जानने का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह परज्ञेय है। '**मैं तो ज्ञायक हूँ।**' सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो बहिन के वचन हैं। अनुभव में से आये हुए हैं। बहिन तो आये नहीं। शरीर को जरा (ठीक नहीं था)। अन्तर के आनन्द के अनुभव में से बोलने पर ऐसा बोला गया है और लोगों ने लिख लिया।

अतीन्द्रिय आनन्द का उफान, पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष समकिती को दूसरा कुछ सुहाता नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को... पहले कहा था ४०१ में। ४०१ बोल में नहीं? धर्मी जीव को... आहाहा! जिसे अन्दर आत्मा ज्ञायकस्वभाव का अनुभव होकर सम्यग्दर्शन हुआ, उसे यह विभाव का विकल्प आवे, भक्ति का, दान का, भगवान के स्मरण का (विकल्प आवे), तथापि धर्मी को ऐसा लगे, अरेरे! हम इस परदेश में कहाँ आ पड़े? हमारा देश तो आनन्द और ज्ञान की शान्ति से भरपूर स्वदेश है। इस राग में हम आ पड़े, वह हम विभाव में-परदेश में आ पड़े। आहाहा! ४०१ में है। सवेरे कहा था न? आहाहा!

हमारा स्वदेश तो अन्दर आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान, वह हमारा स्वदेश है। इस विभाव में आना, वह मैं नहीं। विभाव को जानना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! विभाव मैं तो नहीं; दया, दान का विकल्प, वह मैं तो नहीं परन्तु उस दया, दान के विकल्प का यहाँ ज्ञान होता है, वह राग की अस्ति है; इसलिए उसका यहाँ ज्ञान होता है—ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो स्वयं स्वपरप्रकाशक के सामर्थ्य से अपने को-ज्ञायक को जानते हुए राग का विकल्प विभाव आया, उसे स्पर्श किये बिना; और उसकी अस्ति के कारण उसका यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। '**जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने**—सम्यग्दृष्टि। अभी तो इसे खबर भी नहीं होती कि यह सम्यग्दर्शन क्या है उसका विषय। अरेरे...! जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! '**मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने—परिणमन करे...** राग और पुण्य का परिणमन न करे। राग और पुण्य के काल

में भी ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि होने से वह स्व को और राग को जानना वह अपने से स्वतन्त्र जानने का काम वह करता है। और वह जानने की पर्याय जिसे राग की भी अपेक्षा नहीं और जानने की पर्याय को जिसे द्रव्य और गुण की अपेक्षा नहीं, ऐसी षट्कारकरूप से ज्ञान की पर्याय धर्मी को परिणमती है। अरेरे! आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार मैं तो ज्ञायक (रूप) परिणमन करूँ। ज्ञानस्वरूप से जानूँ, उसका परिणमन करूँ। वह परिणमन भी स्वतन्त्र षट्कारक से परिणमन होता है। षट्कारक अर्थात्? आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को जो ज्ञान का निर्लेप तत्त्व का अनुभव हुआ और उस काल में जब उसे ज्ञायक का परिणमन होता है, पर्याय होती है, उस परिणमन को राग की अपेक्षा नहीं है। उस परिणमन को द्रव्य और गुण की भी अपेक्षा नहीं है, ऐसा **परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।** यह क्या कहा? वस्तु तो निर्लेप है परन्तु ऐसा परिणमन करे तो पर्याय में निर्लेपता प्रगटरूप से-व्यक्तरूप से होती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का कोई मार्ग अभी फेरफार हो गया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है, उसका यहाँ अनुभव में से बहिन बोले, वह लिख लिया है।

वह **परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।** अर्थात्? वस्तु है त्रिकाली, वह तो निर्लेप ही है। द्रव्य जो है—पदार्थ—ज्ञायक है—उसे तो आवरण और लेप नहीं है। परन्तु उसकी दृष्टि करने से उस ओर के झुकाव से परिणति अर्थात् पर्याय में भी निर्लेपता प्रगट-प्रगट होती है। उसे धर्म कहा जाता है। समझ में आया? है? **परिणमन करे तो प्रगट...** पहले ऊपर ऐसा कहा था न? **द्रव्य सदा निर्लेप है।** तब यहाँ कहा **परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।** आहाहा! ऐसी कथा है।

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु त्रिकाली ज्ञायकभाव से आनन्द से-अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है। आहाहा! जिसके ज्ञान और आनन्द की अपरीमितता, जिसकी मर्यादा नहीं, ऐसा जिसका स्वभाव है, उस स्वभाव से परिपूर्ण से प्रभु लबालब भरा है। वह वस्तु निर्लेप है और उस निर्लेप की दृष्टि और परिणमन करने से पर्याय में-अवस्था में निर्लेपता आती है। यह धर्म। ऐसा धर्म। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह धर्म नहीं है। वह तो राग है। यशपालजी! आहाहा! कठिन काम है, बापू! आहाहा!

वस्तु निर्लेप है। परसन्मुख के झुकाव से छूटकर, वस्तु निर्लेप है, अन्दर स्वसन्मुख झुकाव करे; झुकाव अर्थात् उसके सन्मुख होवे तो उसकी पर्याय में भी निर्लेपता प्रगट होती है अर्थात् कि धर्मी ऐसा भगवान तो पूर्ण धर्म से भरपूर है, परन्तु उसके सन्मुख और उससे... आहाहा! उस सन्मुख झुकने से पर्याय में भी जैसी वस्तु निर्लेप है, वैसी पर्याय भी निर्लेप—रागरहित वीतरागी पर्याय हो, वह आत्मा की पर्याय कहने में आती है। आहाहा! रतनलालजी! ऐसी बातें हैं। यह १६२ हुआ। पश्चात् कौन सा? १६७।

वाणी और विभावों से भिन्न, तथापि कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो सके, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व उसकी अगाधता, अपूर्वता, अचिंत्यता गुरु बतलाते हैं। शुभाशुभभावों से दूर चैतन्यतत्त्व अपने में निवास करता है—ऐसा भेदज्ञान गुरुवचनों द्वारा करके जो शुद्धदृष्टिवान हो, उसे यथार्थ दृष्टि होती है, लीनता के अंश बढ़ते हैं, मुनिदशा में अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्तिपर्याय प्राप्त होती है॥१६७॥

१६७। **वाणी और विभावों से भिन्न तथापि...** भगवान आत्मा...! वाणी तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। उससे प्रभु भिन्न है और विभाव—पुण्य और पाप के विकल्प जो विभाव, जो विकार हैं उनसे तो भिन्न **तथापि कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो सके,...** निमित्त से कथन है क्योंकि गुरु का वचन ऐसा होता है, उसे गुरु कहते हैं, उसे ज्ञानी कहते हैं कि जो वीतरागता की उत्पत्ति की बात करे और वीतरागता की उत्पत्ति स्वद्रव्य के आश्रय से होती है अर्थात् गुरु का वाक्य स्वद्रव्य का आश्रय करने का है। अरे..! चारों ही अनुयोगों का कथन, तीन लोक के नाथ ने कहे हुए चारों ही अनुयोग—कथानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग का तात्पर्य वीतरागता उत्पन्न करना वह है। और वह वीतरागता, वह धर्म है परन्तु वह वीतरागता होती कैसे है?—कि जिनस्वरूपी आत्मा है। 'घट घट अन्तर जिन बसे अरु घट घट अन्तर जैन।' अन्दर में जिनस्वरूपी प्रभु है, उसका आश्रय लेने से, उसके सन्मुख होने पर उसकी ओर झुकने से राग और निमित्त और पर्याय की ओर का झुकाव छोड़कर... झुकाव समझते हो? अन्तर के शुद्ध स्वभाव में झुकाव करने से। आहाहा! है?

वह कथंचित् गुरु ऐसा कहते हैं। कथंचित् क्यों कहा ? कि गुरु को सुनता है, वह अभी विकल्प है। सुनता है तो वह अभी विकल्प है। परद्रव्य की ओर लक्ष्य है, इसलिए **कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो सके,...** निमित्त से कथन कहा। गुरु ने ऐसा कहा कि प्रभु! तेरा अन्दर निर्लेप आत्मा पड़ा है। भगवान! तू परमात्मस्वरूप है, जिनस्वरूप है। उस ओर झुकाव कर, उसके सन्मुख हो। संयोग, राग और एक समय की पर्याय से विमुख हो और त्रिकाली स्वभाव से सन्मुख हो, ऐसा गुरु का वचन था। इसके अतिरिक्त वचन कहे कि राग से लाभ होता है, वे गुरु नहीं, वे ज्ञानी नहीं, वह वीतरागमार्ग का सेवक नहीं। वह राग का सेवक है। आहाहा! है ?

वाणी और विभावों से भिन्न, तथापि कथंचित् गुरु-वचनों से ज्ञात हो सके, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व... ऐसा जो चैतन्यतत्त्व अगाध है। आहाहा! जिसकी हद नहीं। अगाध अन्दर गहरे... गहरे... गहरे... गहरे... उसके ज्ञान और आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ, उनकी वर्तमान एक समय की पर्याय के साथ गहरे अगाध तल में जाए, भोंयरे में जाए तो वह अगाध तत्त्व है। अरे... अरे... ! अर्थात् क्या ? कि वर्तमान जो पर्याय है, उसे राग से तो भिन्न करे परन्तु उस पर्याय के पास प्रभु विराजता है सत्ता चैतन्य, उसके समीप में अन्दर जाए, भोंयरे में जाए। यह पर्याय ऊपर तैरती है और पर्याय के अन्दर इस ओर अन्तर्मुख में जो ध्रुव तत्त्व है। आहाहा! उस ध्रुव तत्त्व में जाने पर **अगाधता,...** है। आहाहा!

बनारसीदास के एक स्तवन में यह शब्द है। बनारसीदास का है न एक स्तवन ? बनारसी विलास। अगाधता। यह आत्मा अगाध है। जिसके स्वभाव की मर्यादा हदरहित बेहद स्वभाव है। तेरी नजर में आता नहीं; इसलिए तुझे एक समय की वर्तमान पर्याय प्रगट वहाँ तेरी क्रीड़ा है। उस क्रीड़ा के कारण पर्याय के समीप में स्वयं प्रभु विराजता है, वहाँ तेरी नजरें नहीं जातीं। जहाँ नजर को डालना चाहिए, वहाँ नजर नहीं करता और जिसमें से नजर को उठाना है, वहाँ से उठाता नहीं। यह दया, दान, व्रतादि के परिणाम और उन्हें जाननेवाली पर्याय, उसमें से दृष्टि को उठाना है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान **अगाधता, अपूर्वता,...** अनन्त काल में कभी... अपूर्व। जो कुछ अनादि से करता आता है, करता है, वह कोई अपूर्व नहीं है। आहाहा! उसकी दया, दान, व्रत, मुनिपना अनन्त बार लिया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' परन्तु वह

पंच महाव्रत और विकार की क्रिया है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! महाव्रत के परिणाम आस्रव है, दुःख है। उससे भिन्न भगवान समीप में-पर्याय के समीप में स्थित है ऐसा जो अपूर्व; पूर्व में कभी देखा नहीं, कभी जाना नहीं, कभी अनुभव किया नहीं, इससे उसे अपूर्व कहने में आता है। पूर्व में जो किया था, वह तो अनन्त काल से करता है, उस प्रकार का किया करे। अशुभ करे और अशुभ छोड़कर शुभ करे तथा शुभ छोड़कर अशुभ करे। इस प्रकार शुभ और अशुभ के भाव अनन्त बार... अनन्त बार (किये)। निगोद के जीव में भी प्रभु का ऐसा स्वीकार है, लहसुन और प्याज में अनन्त जीव हैं। प्रभु ऐसा कहते हैं, वहाँ उसे शुभभाव होता है। अब उसमें से अनन्त काल में से कोई लट भी हुए नहीं, चींटी हुए नहीं ऐसे अनन्त निगोद के जीव हैं परन्तु प्रभु कहते हैं, उन्हें क्षण में शुभ और क्षण में अशुभ ऐसी कर्मधारा तो उन्हें हुआ करती है, वह कोई नयी चीज़ नहीं है। समझ में आया? शुभभाव उस निगोद के जीव को भी अनन्त बार हुआ और अभी वहाँ के वहाँ पड़े हैं कितने ही तो। अभी चींटी, लट हुए नहीं। यहाँ तो छहढाला में तो ऐसा कहते हैं कि निगोद में से निकलकर जो त्रस हो, लट हो तो मानो चिन्तामणि रत्न मिला, ऐसा छहढाला में है। है? छहढाला में।

मुमुक्षु : दुर्लभ लहि ज्यौं चिन्तामणि, त्यौं पर्याय लही त्रस तणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह।

अनन्त काल में निगोद में लहसुन, प्याज में पड़ा है। उसमें से लट हो, दो इन्द्रिय हो, छहढाला में (कहते हैं) कि वह चिन्तामणि को पाया। दूसरी इन्द्रिय मिली उसे। आहाहा! अब उसके बदले यहाँ पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना (मिला)। पंचेन्द्रिय तो पशु भी होते हैं। पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, आर्यकुल और आर्यवचन कान में पड़ें, वहाँ तक अनन्त बार आया। आहाहा! परन्तु अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ जो राग से तो पार है परन्तु पर्याय से भी पार है। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार) ७३ गाथा में कहा है न? पण्डितजी! ७३ गाथा। पर्याय में जो पर्याय है जानने की, उसमें षट्कारकरूप निर्मल परिणमन है। राग की तो बात भी नहीं। एक समय की पर्याय में निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय षट्कारकरूप परिणमे कर्ता-कर्म

होकर पर्याय, उससे भगवान अनुभूति तत्त्व उससे भिन्न है। आहाहा! एक समय की निर्मल पर्याय से भी प्रभु अन्दर अनुभूति (भिन्न है)। अनुभूति अर्थात् वस्तु, अनुभूति अर्थात् वहाँ पर्याय नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! धर्म, वह कोई साधारण नहीं है। अभी तो साधारण कर डाला है। यहाँ तो भक्ति करे, व्रत लिये और तप किया वहाँ हो गया धर्म। आहाहा! बापू! यह तो नौवें ग्रैवेयक गया, तब तेरे जो व्रत-तप के परिणाम शुक्ललेश्या के थे, इतने परिणाम तो अभी नहीं हैं। उसमें तू धर्म मानकर चैतन्य को मुश्किल से मिला उसे तू खो बैठता है। आहाहा! अन्दर भगवान चैतन्यस्वरूप, उसे कहते हैं। आहाहा! वह अपूर्व है।

अचिंत्यता गुरु बतलाते हैं। ज्ञानी, सिद्धान्त और ज्ञानी और केवली अगाध, अपूर्व अचिन्त्य ऐसा जो अन्दर तत्त्व भगवान आत्मा है, जो एक समय की पर्याय से भी पार अन्दर है, भिन्न है। उसे गुरु बतलाते हैं। है? आहाहा! **शुभाशुभभावों से दूर...** आहाहा! शुभ जो दया, दान, व्रत, तप, अपवास आदि का भाव, वह शुभ। हिंसा, झूठ आदि अशुभ—प्रभु तो अन्दर इन शुभाशुभभावों से दूर वर्तता है। आहाहा! ऐसा कठिन लगता है। पहले तो यह चीज़ सुनने में मुश्किल पड़ती है। आहाहा! है? **शुभाशुभभावों से दूर चैतन्यतत्त्व अपने में निवास करता है...** यह शुभ-अशुभभाव की विकल्प की वृत्तियाँ जो विभाव, उनसे (भिन्न) भगवान चैतन्यतत्त्व अन्दर बसता है। आहाहा!

ऐसा भेदज्ञान... ऐसे राग से और पर्याय से भी भिन्न ज्ञान **गुरुवचनों द्वारा करके...** गुरु की वाणी ऐसी होती है कि जो राग और पर्याय से भिन्न आत्मा को बताती है, वह सिद्धान्त और आगम की वाणी। उसमें कुछ भी फेरफार करके गड़बड़ करे, वह मिथ्यादृष्टि की वाणी है। आहाहा! ऐसा है। **ऐसा भेदज्ञान...** कैसा भेदज्ञान? कि जो अपूर्व, अगाध और अचिंत्य है, वह बताते हैं। और वह शुभाशुभभाव से दूर भिन्न बताते हैं। सिद्धान्त, आगम और गुरु तथा ज्ञानी और केवली (बताते हैं कि) इन शुभाशुभभावों से भिन्न प्रभु अन्दर है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसे गुरु बताते हैं। आहाहा! है?

गुरुवचनों द्वारा करके जो शुद्धदृष्टिवान हो,... उन्होंने कहा हुआ चिदानन्द भगवान निर्लेप और शुद्ध द्रव्य है, उसकी दृष्टि करे तो वह **शुद्धदृष्टिवान हो, उसे यथार्थ**

दृष्टि होती है,... उसे यथार्थ सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। **लीनता के अंश बढ़ते हैं,...** अन्तर आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है। उसकी जहाँ अनुभव और दृष्टि हुई, तब से वह उसकी पर्याय में शुद्धता क्षण-क्षण में बढ़ती है। है? **लीनता के अंश बढ़ते हैं, मुनिदशा में अधिक लीनता होती है...** आहाहा! मुनि की दशा तो अलौकिक होती है सच्चे सन्त की। भावलिंगी, उन्हें तो अन्दर आनन्द का उफान (आता है)। अतीन्द्रिय आनन्द के... समुद्र के किनारे जैसे पानी का ज्वार आता है, उसी प्रकार मुनि को अपनी पर्याय के किनारे द्रव्य में से अतीन्द्रिय आनन्द का ऊफान, प्रचुर स्वसंवेदन आता है। उन्हें समकिती की अपेक्षा उनके आनन्द का वेदन बढ़ गया होता है। समझ में आया?

मुनिदशा में अधिक लीनता होती है और केवलज्ञान प्रगट होकर... आहाहा! **परिपूर्ण मुक्तिपर्याय प्राप्त होती है।** परन्तु उस स्वद्रव्य को पहिचानकर अन्तर में ध्यान में जाए तो। अन्तर स्वरूप जो पूर्ण, उसका ध्यान करने से विकल्प की वृत्तियों को छेदकर अन्तर में लीनता में ध्यान करने पर उसे निर्लेपता, शुद्धता आंशिक बढ़े, मुनि हो तो सच्चे सन्त की दशा अतीन्द्रिय आनन्द बढ़ जाए और उससे आगे जाए तो केवलज्ञान हो जाए। आहाहा! है? **केवलज्ञान प्रगट होकर परिपूर्ण मुक्तिपर्याय प्राप्त होती है।** आहाहा! १६७ (हुआ)। अब? १७८? १७८।

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है कि—मैं इन शरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ; अन्तर में जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ; ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ॥१७८॥

अब हिन्दी। पाव घण्टा हिन्दी। १७८। हिन्दी आया है अब, हों।

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। क्या कहते हैं? आत्मा का ध्यान करने जाए परन्तु सच्चा ज्ञान नहीं है, सम्यग्दर्शन है नहीं। सम्यग्दर्शन है नहीं, सम्यग्ज्ञान है नहीं और अन्दर में ध्यान करना (है)। किसका ध्यान करे? **पहले ध्यान सच्चा नहीं होता।** हिन्दी। हमारे

यशपालजी, भरत चक्रवर्ती। उन लोगों के लिये यह पाव घण्टा हिन्दी (चलेगा)। मद्रास से आये हैं। आहाहा! प्रभु!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाव घण्टा। कितने लोग हैं! पूरा पण्डाल गुजराती से भरा है। हिन्दी तो कोई थोड़े-थोड़े हैं।

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। क्या कहते हैं? कि आत्मा का ध्यान करो। पर क्या ध्यान करे? वह चीज़ ही जहाँ नजर में आयी नहीं, अनुभव में आयी नहीं। अन्तर में... १७वीं गाथा में कहते हैं कि प्रथम आत्मा कैसा है पूर्णानन्द का नाथ, ऐसा नजर में आया नहीं तो उसमें लीनता का ध्यान कहाँ से होगा? जो चीज है, वह दृष्टि में आयी नहीं। अपने ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान हुआ नहीं। और उसमें ध्यान करो। क्या करे? आहाहा!

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है... ज्ञान सच्चा होता है। क्या? कि मैं द्रव्यस्वभाव निर्लेप हूँ। पर्याय मेरी वर्तमान निर्मल थोड़ी है और रागादि है, उतनी मलिनता भी है। तो मलिनता भी पर से नहीं हुई। मेरी कमजोरी से हुई है और राग का जाननेवाला मैं, मेरी पर्याय में राग से भिन्न (हूँ), ऐसा ज्ञान सच्चा होना चाहिए। ज्ञान में जो भूल रहे तो सत् की ओर उसका झुकाव नहीं होता। सच्चिदानन्द प्रभु, यदि ज्ञान में कोई भूल है कि शुभभाव से धर्म होगा, निमित्त से कुछ मेरे में होगा, पर्याय के लक्ष्य से मुझे कुछ लाभ होगा—ऐसा जहाँ ज्ञान, वहाँ सच्चा ध्यान हो सकता नहीं। आहाहा! अपने गुजराती तो समझ सकते हैं। आहाहा!

पहले ज्ञान सच्चा होता है... द्रव्य क्या है, गुण क्या है, पर्याय क्या है, राग क्या है, निमित्त क्या है? उस पृथक्-पृथक् का पहले सच्चा ज्ञान होना चाहिए। आहाहा! **यह शरीर,...** सच्चे ज्ञान का क्या अर्थ है? **यह शरीर,...** यह शरीर, मिट्टी जड़ धूल **वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ;...** मैं तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, भाषा, कर्म, शरीर उससे मैं भिन्न हूँ। ध्यान हुए पहले ऐसा बोध-सच्चा ज्ञान होना चाहिए। सच्चे ज्ञान बिना ध्यान हो सकता नहीं।

तो कहते हैं कि मैं तो **शरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ;...** सबसे

मैं पृथक् हूँ। आहाहा! एक ओर राम और एक तरफ गाँव। 'निजपद रमे सो राम कहिये।' आत्मा आनन्द में रमे, उसको राम (कहें) और राग और पुण्य में रमे, वह हरामी हराम कहने में आता है। यहाँ हमको किसी की पड़ी नहीं है। वीतराग को कोई समाज की पड़ी नहीं। सन्त नग्न बादशाह से दूर दिगम्बर सन्त, उनको किसी की पड़ी नहीं है कि समाज का क्या होगा? समाज समतौल रहेगा या नहीं? नग्न बादशाह से दूर।

कहते हैं... आहाहा! मेरी चीज़ में पुण्य और पाप, दया और दान, वह भाव मेरे में नहीं। आहाहा! अरे..! मैं तो शरीर को कभी छुआ ही नहीं। मैं यह नहीं, उसका अर्थ क्या? कि यह शरीर को आत्मा कभी छुआ ही नहीं। शरीर तो भिन्न जड़ है, आत्मा प्रभु अरूपी है। और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श जो शरीर का है, उसको आत्मा कभी छुआ ही नहीं। समझ में आया? वह कहते हैं कि उससे मैं पृथक् हूँ।

तीसरी गाथा में कहा था न? तीसरी गाथा, समयसार। सर्व पदार्थ ऐसा है.. तीसरी गाथा है, समयसार। सर्व पदार्थ ऐसा है... लेना है? समयसार है यहाँ? हिन्दी नहीं है, हिन्दी? यह तो गुजराती है। आहाहा! तीसरी गाथा है। कैसे सर्व पदार्थ? मेरे आत्मा सिवा शरीर, वाणी, कर्म आदि कैसे हैं? कि अपने-अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले, अपना आत्मा या परमाणु जो है, वह उसके गुण और पर्याय में अन्तर्मग्न रहनेवाले... आहाहा! **अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं।** प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न अपनी शक्ति-गुण और पर्याय को चूमते हैं। चूमते अर्थात छूते हैं। है?

तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते,... फिर भी एक दूसरे को चूमते नहीं। आहाहा! ऐसी बात कौन माने? इस होंठ को आत्मा छुआ नहीं। इस होंठ को अंगुली छुई नहीं। कोई पदार्थ कोई दूसरे पदार्थ को कभी चुम्बन करते ही नहीं। अपने गुण और पर्याय की शक्ति जो अन्दर है, उसको वह चीज़ स्पर्श करती है। पर को कभी चूमता नहीं। प्रभु! यह बात.. आहाहा! है?

ऐसा अपने में गुण और पर्याय आत्मा को आत्मा और परमाणु अपने गुण और पर्याय को चूमते हैं। **तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** दूसरे पदार्थ को आत्मा छूता-स्पर्शता नहीं। आत्मा कभी कर्म को छुआ नहीं। कभी आत्मा शरीर को छुआ

नहीं। कभी शरीर कर्म को छुआ नहीं। कभी कर्म, शरीर को छुआ नहीं। कभी शरीर, आत्मा को छुआ नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह कहते हैं यहाँ।

पृथक् हूँ;... आहाहा! **अंतर में जो विभाव होता है, वह मैं नहीं हूँ;...** अन्दर में विकल्प उठते हैं दया, दान, व्रत, भक्ति, वह भी मैं नहीं। आहाहा! वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला ऐसा जानता है कि मैं राग को छूता ही नहीं। राग को करता तो नहीं (परन्तु छूता भी नहीं)। सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या करें? दुनिया को जानते हैं न। ये तो ९० वर्ष हुए शरीर को। शरीर को न? ९०। ६६ वर्ष तो दुकान छोड़े उसको हुए। पालेज में दुकान है। भरुच और बड़ोदरा के बीच। यह तो सारा अभ्यास दुकान में से था। अन्दर में से वस्तु आयी... आहाहा! ॐ की ध्वनि आयी अन्दर से। जो वहाँ सुनी थी, वह अन्दर से आयी। आहाहा! पूरा पलट गया एकदम। आहाहा! बड़े भाई हैं। बड़ी दीक्षा दिलवाई थी। बड़ी दीक्षा घर पर। ६६ वर्ष पहले दो हजार खर्च करके। अभी तो तीस गुना (बढ़ गया)। भाई! यह मार्ग नहीं है। मैंने दीक्षा ली, वह साधु नहीं। भाई! मैं तो छोड़ दूँगा। बड़े भाई को प्रेम था तो ऐसा कहा, महाराज! धीरे-धीरे छोड़ना। एकदम छोड़ोगे तो खलबली मच जाएगी।

यहाँ कहते हैं, सुन तो सही प्रभु! एक बार। आहाहा! यह वीतराग का सन्देश है। महाविदेह में त्रिलोकनाथ परमात्मा विराजते हैं, उनका सन्देश है। आहा..! भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन गये थे। आठ दिन रहे थे। आहाहा! वहाँ बहिन की उपस्थिति थी। आठ दिन बहिन भी वहाँ समवसरण में जाते थे। उनकी यह वाणी है। अन्तर में विभाव होता है, वह मैं नहीं। मैं शरीर को छूता तो नहीं, परन्तु विभाव है, उसको मैं छूता नहीं। मैं तो स्वभाव चैतन्य हूँ। आहाहा! कठिन काम है। पैर रखते हैं न, पैर। जमीन पर पैर रखते हैं न? प्रभु ऐसा कहते हैं कि पैर है, वह जमीन को छूता नहीं और चलते हैं। अरेरे! यह कैसे बैठे? तीसरी गाथा में ऐसा कहा। पैर जो चलते हैं, वह जमीन को छूते ही नहीं और चलते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान तो ऊपर चलते हैं तो उसकी प्रकृति पुण्य की हो गयी।

परन्तु यहाँ तो उसका स्वभाव ऐसा है। आहाहा! क्यों? कि पैर के परमाणु के अस्तित्व में और जमीन के अस्तित्व, दोनों में अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात है। भरतजी! आहाहा! ये भगवान आत्मा... कहते हैं कि शरीर को तो चला सकता नहीं, परन्तु शरीर जमीन को छूता नहीं। अरेरे! यह बात कैसे बैठे? वह यहाँ कहा।

मैं **स्पर्शादि सबसे पृथक् हूँ;...** शरीरादि के स्पर्श से और जमीन के स्पर्श से मैं तो पृथक् हूँ। आहाहा! **अंतर में जो विभाव होता है, वह मैं नहीं हूँ; ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ;...** क्या कहते हैं? धर्मी-सम्यग्दृष्टि ऐसा जानते हैं। ऊँचे से ऊँचे जो भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव मैं नहीं। क्योंकि वह भाव तो राग है। आहाहा! जिससे बन्धन हो, वह भाव धर्म नहीं। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है षोडशकारण भावना, वह राग है। आहाहा! भगवान! शुभभाव ऊँचे से ऊँचा शुभभाव। आहाहा! वह मैं नहीं।

मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ। आहाहा! धर्मी उसको कहते हैं। मैं तो सबसे निराला ज्ञायक जानन-देखन स्वभाव से लबालब भरा हुआ, वह मैं हूँ। मैं कभी जमीन को छुआ नहीं। आहार जो होता है, उसको मैं कभी छुआ ही नहीं। मेरी जीभ है, वह मैसूरपाक जो खाते हैं मैसूरपाक और रसगुल्ला, उसको जीभ कभी छूई नहीं। आहाहा! यशपालजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! वीतराग की बात पचना कठिन, प्रभु! सर्वज्ञ के बिना यह बात कहीं होती नहीं। आहाहा! **ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव, वह मैं नहीं हूँ; मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।** मात्र जानन-देखन मेरी चीज़, वह मैं हूँ। ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में मेरा ज्ञायकभाव ही हूँ—ऐसा आता है। पर्याय भी नहीं, राग भी नहीं, वह मेरी चीज़ नहीं। उसका नाम धर्म सम्यग्दर्शन का कहने में आता है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१९) चैत्र कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक २६-४-१९७९
वचनामृत - १८०, १८२, १९३ प्रवचन-७७२ (DVD 17)

उपयोग अन्तर में जाये, वहाँ समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं; आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आता है। जिस प्रकार गुफा में जाना हो तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है, फिर अपने अकेले को अन्दर जाना पड़ता है, उसी प्रकार चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है, भेदवाद सब छूट जाते हैं। पहिचानने के लिये यह सब आता है कि 'चेतन कैसा है', 'यह ज्ञान है', 'यह दर्शन है', 'यह विभाव है', 'यह कर्म है', 'यह नय है', परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे, वहाँ सब छूट जाते हैं। एक-एक विकल्प छोड़ने जाये तो कुछ नहीं छूटता, अन्दर जाने पर सब छूट जाता है॥१८०॥

वचनामृत, १८०। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! **उपयोग अन्तर में जाये...** क्रमबद्ध में भी उसका सार अन्तर में जाना, वह है। क्रमबद्ध में पुरुषार्थ उड़ जाता है, ऐसा कोई कहता है। प्रभु! ऐसा नहीं है। जिस समय में जिसकी पर्याय होती है, वह होती है। उसमें पर का बदलना तो नहीं परन्तु अपनी पर्याय का भी बदलना नहीं। आहाहा! अन्तर में गहराई में जहाँ उपयोग जाता है... आहाहा! **वहाँ समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं;...** क्रमबद्ध है पर्याय और अक्रमबद्ध है गुण। गुण अक्रमबद्ध है। वह भी पक्ष वहाँ छूट जाता है। आहाहा! क्योंकि वस्तु जिस प्रकार से है, उस प्रकार से जहाँ उसका निर्णय करने जाता है, तब उसका उपयोग स्वभाव-सन्मुख होता है।

क्रमबद्ध में पुरुषार्थ उड़ जाता है, ऐसा बहुत से कहते हैं। ऐसा नहीं है, प्रभु! क्रमबद्ध में तो पुरुषार्थ है। समझ में आया? उपयोग गहराई में जाता है उसमें। क्रमबद्ध के निर्णय में उपयोग गहराई में जाता है। आहाहा! बड़ी चर्चा चली थी (संवत्) १९७२ में। कहा था न? ७२ में सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चली। फिर वे लोग ऐसा ही कहते थे कि

केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा, हम क्या पुरुषार्थ कर सकते हैं ? आहाहा ! ७२ की बात है। कितने वर्ष हुए ? ६३। ६३ वर्ष पहले। वे लोग बारम्बार ऐसा कहते थे कि भगवान ने देखा, (वैसा) होगा। हम क्या करें ? दो वर्ष तो सुना। नवदीक्षितरूप से था न ? अन्दर में यह बात बैठी नहीं। आहाहा ! ७२ के फाल्गुन महीने में यह बात बाहर प्रसिद्ध की। नहीं तो मैं बोलता भी नहीं। मैं तो पढ़ता था।

प्रभु ! तुम यह क्या कहते हो ? भगवान ने देखा, (वैसा) होगा, अपन क्या पुरुषार्थ करें ? उसमें अपना पुरुषार्थ चलता नहीं। परन्तु प्रभु ! जगत में केवलज्ञान की एक समय की ज्ञानगुण की एक पर्याय (है), जिसका तीन काल-तीन लोक और द्रव्य-गुण वास्तव में तो उस एक ही पर्याय में सब आ जाता है। एक समय की पर्याय जो द्रव्य-गुण को जाने, त्रिकाली द्रव्य-गुण को जाने, अपने को जाने, छह द्रव्यों को जाने, लोकालोक को जाने। उसे देखने पर एक ही पर्याय में सब आ जाता है। आहाहा ! एक ही पर्याय ऐसा जहाँ निर्णय करने जाता है, प्रभु ! वहाँ उस ज्ञायकस्वरूप पर नजर जाती है, उसका नाम पुरुषार्थ है। मैंने तो वहाँ उस समय दूसरा कहा था। वे लोग कहे, भगवान ने देखे, उतने भव होंगे, हम क्या करें ? प्रभु ! मुझे यह बात बैठती नहीं।

मुझे तो सर्वज्ञ परमात्मा... यह तो ६३ वर्ष पहले की बात है। आहाहा ! भगवान का विरह पड़ा परन्तु भगवान का ज्ञान एक समय का, भाई ! यह बातें करने की नहीं। एक समय का ज्ञान जो एक ही पर्याय सब है। लोकालोक को जाने, द्रव्य-गुण को जाने और एक पर्याय पर्याय को जाने। एक पर्याय मानो जगत में है। आहाहा ! भगवान ! तेरी एक समय की पर्याय की इतनी सामर्थ्य केवली की, ऐसा जगत में है। प्रभु ! उसका निर्णय करने जाए, वहाँ उसकी नजर कहाँ जाएगी ? भाई ! आहाहा ! उसकी नजरें ज्ञान में जाएगी—ज्ञायकभाव (के ऊपर जाएगी)। वह केवल (ज्ञान) की एक समय की पर्याय देखे, वैसा होगा परन्तु उस पर्याय का स्वीकार कब आवे प्रभु ? आहाहा !

यहाँ उपयोग गहराई में जाए, उसकी व्याख्या चलती है। आहाहा ! वह ज्ञान की पर्याय अन्दर में जाती है, तब उस ज्ञायक का अनुभव होता है। तब तो ऐसा कहा था, प्रभु ने अब उसके भव नहीं देखे। लालचन्दभाई ! यह बात तो अन्दर से आयी थी। प्रभु का विरह पड़ा। वहाँ थे परन्तु यहाँ आ गये। परन्तु अन्दर से बात आयी। आहाहा ! जिसे एक

समय की केवलज्ञान की पर्याय की अस्ति, सत्ता, मौजूदगी है—ऐसा जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है, वहाँ उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। द्रव्य के ऊपर, उस समय शब्द नहीं था। उस समय ज्ञान के ऊपर जाता है, ऐसा था। अभी तो ७२ का वर्ष (था)। ज्ञान जो है त्रिकाली ज्ञान, उसके ऊपर उसकी नजर जाती है, ऐसा उस दिन (कहा) था। द्रव्य (शब्द नहीं कहा था)। दो वर्ष की (दीक्षा थी)। आहाहा! तब २५ वर्ष की उम्र थी। यह तो ९० हुए। कहा, जिसे यह अन्दर केवलज्ञान प्रभु! आहाहा! '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**'। वह तो फिर ७८ में हाथ आया, ७८ में। यह बात अन्दर से आयी थी। यही बात आयी थी। आहाहा! तीन लोक के नाथ के निकट सुना था। वह बात अन्दर से आयी कि भगवान केवलज्ञान की पर्याय, ऐसा जहाँ निर्णय करने जाए, प्रभु! वह पर्याय के आश्रय से पर्याय का निर्णय नहीं होता। जरा समझने की बात है, प्रभु! उस पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता। उस पर्याय का निर्णय ज्ञानस्वभाव के आश्रय से होगा और जहाँ ज्ञानस्वभाव इस गहराई में उपयोग गया... आहाहा! उस ज्ञानस्वभाव को जहाँ पकड़ा, प्रभु! मैं ऐसा कहता हूँ कि भगवान ने उसके अब भव नहीं देखे। भगवान ने देखा, वैसा होगा, यह बात सत्य है। परन्तु ऐसा जिसे जँचा, उसके भगवान ने भव देखे नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान के ज्ञान में उसके भव हैं, ऐसा देखा नहीं। आहाहा! बापू! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

क्रमबद्ध का तो फिर विशेष स्पष्ट तो (संवत्) २०१३ के वर्ष में किया। २०१३ में। कितने? २२ वर्ष। उसके पहले २००० में कहा था। परन्तु फिर १३ में बाहर प्रसिद्ध किया। काशी में गये थे न। फूलचन्दजी साथ में थे, कैलाशचन्दजी साथ में थे और बनारस में एक झवेरी है, वहाँ आहार करने जाते। भगवान की प्रतिमा थी, नहीं? कोई चोरी हो गयी थी। वहाँ दर्शन किये। वहाँ जाते हुए रास्ते में फूलचन्दजी को मैंने कहा, भाई! वस्तु का स्वभाव क्रमबद्ध है और क्रमबद्ध है, वही जैनधर्म है। और क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ वीतरागभाव होता है। वह वीतरागभाव है, वह जैनधर्म है। आहाहा! तो ऐसा बोले... फूलचन्दजी बुद्धिवाले व्यक्ति। भाई साथ में थे कैलाशचन्दजी। वे नहीं बोले। परन्तु ये तो ऐसा बोले, क्रमबद्ध न होवे तो वैशेषिक मत हो जाता है-ऐसा बोले। यह तो १३ के वर्ष की बात है। आहाहा! भाई! थोड़ा भी सत्य हाथ आना चाहिए।

यहाँ कहते हैं कि... बहिन भी यही यहाँ कहना चाहती हैं। **उपयोग अन्तर में जाये...** आहाहा! इस केवलज्ञान की पर्याय का निर्णय करने जाए या क्रमबद्ध का निर्णय करने जाए, वहाँ अन्दर उपयोग जाता है। आहाहा! **वहाँ समस्त नयपक्ष छूट जाते हैं;...** फिर मैं शुद्ध हूँ या अखण्ड हूँ और अभेद हूँ, ऐसा भी नय के पक्ष का विकल्प नहीं रहता। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ का यह पंथ है। यह कोई वाड़ा नहीं तथा कोई पंथ-पक्ष नहीं। वस्तु का स्वरूप पिताजी ने जैसा था, वैसा पिता ने कहा। धर्मपिता सर्वज्ञदेव (ने) जैसा वस्तु का स्वरूप था, वैसा कहा। वह कोई पक्ष और पथ और वाड़ा नहीं है, प्रभु! आहाहा! क्या कहें? परन्तु इतने सब पहुँचना जगत को कठिन पड़ता है। इसलिए कुछ न कुछ दूसरा रास्ता ले लेता है।

यहाँ तो कहते हैं कि अन्दर में गहराई में उपयोग जाए। आहाहा! तब क्रमबद्ध में मेरी पर्याय होती है, ऐसा भी वहाँ लक्ष्य नहीं रहता। समझ में आया? तथा मैं अबद्ध हूँ, अस्पृष्ट हूँ, पूर्णानन्द हूँ—ऐसा एक नय का अर्थात् ज्ञान के अंश का रागवाला एक पक्ष है, वह पक्ष भी गहराई में जाने पर नहीं रहता। आहाहा! यह वस्तु है। **नयपक्ष छूट जाते हैं;...** यह कहा था। १४२ गाथा अन्दर शुरुआत। १४२ है न? कि आत्मा अबद्ध है, शुद्ध है, एकरूप है, यहाँ तक विकल्प अर्थात् राग के पक्ष में आया। प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य-अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं, सन्त जगत के आड़तिया भगवान के। आहाहा! ऐसा पुकारते हैं कि उससे क्या? किम्? यहाँ तक आया, उससे क्या? आहाहा!

व्यवहार का पक्ष तो हम छुड़ाते आये हैं। वहाँ लेख है। वहाँ लेख है। व्यवहार अर्थात् राग और पुण्य और निमित्त तथा उसका पक्ष तो हम छुड़ाते आये हैं, परन्तु यह पक्ष जो आत्मा अखण्ड आनन्द का धाम पर्याय के तल में पर्याय के ध्रुव में... आहाहा! एक समय की पर्याय जो ऊपर है, उसके नीचे... आहाहा! भोंयरा, जैसे भोंयरा में भगवान होते हैं, वैसे एक समय की पर्याय के तल में जाए वहाँ भगवान के दर्शन होते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **नयपक्ष छूट जाते हैं; आत्मा जैसा है, वैसा अनुभव में आता है।** आहाहा! तब उसे अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, जिसकी अस्ति / मौजूदगी सत्... सत् तो तीनों हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों सत् हैं और सत् है, उसे कोई पर की अपेक्षा है

नहीं। तथापि कहते हैं कि पर की अपेक्षा नहीं, ऐसा जहाँ विचार करने जाता है, तब अन्दर नयपक्ष छूटकर **जैसा है, वैसा...** अखण्डानन्द का नाथ प्रभु... आहाहा! समकित दर्शन में उसके साथ सम्यग्ज्ञान में ऐसा भगवान जितना, जैसा, जितनी सामर्थ्यवाला है, उसकी एक समय की पर्याय में उसका ज्ञान होता है। आहाहा! वह **जैसा है, वैसा अनुभव में आता है**। अनुभवना अर्थात् वस्तु के स्वरूप को अनुसरकर होना। राग और पुण्य की अनुसरकर होना, वह तो दोष और विकार है। परन्तु भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ निर्मलानन्द प्रभु, अखण्ड परमात्म जिनस्वरूप है... आहाहा! वैसा ही पर्याय में ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया?

जैसा है, वैसा... जैसा है, वैसा **अनुभव में आता है**। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! चारित्र तो अलग, प्रभु! आहाहा! इस अनुभव के बिना तो चारित्र होता नहीं। इस अनुभव के बिना आगे की कोई दशा नहीं होती। आहाहा! यह **अनुभव में आता है। जिस प्रकार गुफा में जाना हो...** दृष्टान्त देते हैं। **तो वाहन प्रवेशद्वार तक आता है,...** गुफा के प्रवेश द्वार तक मोटर या जो हो वह वाहन वहाँ आता है। फिर प्रवेश करने पर वह वाहन अन्दर नहीं जाता। आहाहा! गुफा में प्रवेश करने पर वह वाहन वहाँ नहीं जाता, प्रभु! यह दृष्टान्त है। आहाहा!

फिर अपने अकेले को अन्दर जाना पड़ता है,... वाहन छोड़कर चलकर अन्दर जाना पड़ता है। गुफा में जाना होवे तो। आहाहा! **उसी प्रकार...** यह दृष्टान्त हुआ। जैसे था न? जैसे, वैसे। जैसे गुफा तक वाहन को ले जाया जाता है, गुफा में वाहन नहीं ले जाया जाता, वहाँ अकेले चलकर जाना पड़ता है। आहाहा! **उसी प्रकार चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है,...** आहाहा! यह विकल्पों की सब वृत्तियाँ तो बाहर खड़े, वाहन जैसे खड़ा रहे, वैसे पड़ा रहे। आहाहा! अरे..! शास्त्र का जानपना भी... आहाहा! वहाँ बाहर पड़ा रहे। ऐसा है। महँगा पड़े परन्तु प्रभु! यह करना पड़ेगा। भाई! चौरासी के अवतार, जन्म-जरा-मरण के अवतार करके, बापू! अनन्त काल गया। उस अनन्त के नाथ को सम्हाला नहीं, इसलिए अनन्त काल गया। आहाहा! ऐसे अनन्त के नाथ को सम्हालने से **चैतन्य की गुफा में जीव स्वयं अकेला अन्दर जाता है,...** आहाहा! चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु जहाँ अकेला है, उस गुफा में जहाँ आत्मा जाता है। आहाहा!

भेदवाद सब छूट जाते हैं। यहाँ तक बात ली थी। विकल्प तो छूट जाते हैं, परन्तु यह आत्मा है और उसका यह ज्ञानगुण है—ऐसा भेदवाद भी वहाँ छूट जाता है। अन्तिम में अन्तिम शब्द लिया है। वहाँ निमित्त नहीं रहते। तीन लोक के नाथ हों तो भी बाहर रहते हैं। उनकी वाणी हो तो भी बाहर रहती है। उनकी वाणी की ओर का किंचित् ज्ञान अपने को उपादान से हुआ, वह भी बाहर रह जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अन्तिम शब्द लिया है।

अभेद अन्तर में जाए, वहाँ भेदवाद छूट जाता है, प्रभु! आहाहा! और भेद छूटे बिना अभेद में नहीं जा सकता और अभेद में जानेवाले को भेद नहीं दिखता। आहाहा! अन्तर में एकरूप स्वरूप है... आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में भगवान का एक स्वरूप है, उसमें प्रवेश करने पर भेदवाद छूट जाता है, प्रभु! आहाहा! बहिन की भाषा तो देखो! राग छूट जाता है या निमित्त जाता है, उसकी तो बात ही क्या करना? आहाहा! परन्तु मैं एक आनन्दस्वरूप हूँ, आनन्दवाला हूँ; वह आनन्दवाला हूँ, यह भी भेद है। आनन्दस्वरूप ही है, ऐसी अभेददृष्टि होने पर भेदवाद छूट जाता है। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! अरे..! दुनिया के साथ मेल नहीं खाता। आत्मा के साथ मेल खाये ऐसा है। क्योंकि आत्मा उस प्रकार का ही आत्मा है। आहाहा!

भेदवाद... एक वचन नहीं। **भेदवाद...** आहाहा! मैं ज्ञानवाला हूँ, दर्शनवाला हूँ, आनन्दवाला हूँ—ऐसा भेद वहाँ छूट जाता है। प्रभु! आहाहा! **पहिचानने के लिये...** हाँ, उसे पहिचानने के लिये '**चेतन कैसा है**',... चेतन अन्दर कैसा है? अनन्त गुण का सागर है। '**यह ज्ञान है**',... ऐसे भेद के विकल्प आते हैं। प्रवेश करने से पहले। (गुफा) तक वाहन आता है। आहाहा! परन्तु गुफा में वह वाहन नहीं जाता। इससे पहले ऐसे विकल्पों की लगनी आँगन में खड़े, अन्दर में प्रवेश करने से पहले ऐसे भाव-विकल्प आते हैं।

'**यह ज्ञान है**',... यह जानता है, वह ज्ञान है। देखता है, वह '**दर्शन है**',... और यह रागादि है, दया, दान वह तो विभाव है। '**यह कर्म है**',... साथ में, निमित्तरूप जड़। '**यह नय है**', राग को अपना जानना, वह व्यवहार है और राग को अपना न जानना, वह निश्चय है। '**यह नय है**', **यह सब आता है, परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं**। आहाहा! ऐसा मार्ग है। फिर कोई कहे, परन्तु इसमें से कोई दूसरा हल्का

रास्ता ? परन्तु हल्का प्रभु ! जैसा है, वैसा होना चाहिए न ? आहाहा ! करोड़ रुपये को हल्का कहकर चार आनेवाला कहना, वह हल्का कहलायेगा ? आहाहा ! इसी प्रकार भगवान जब अन्तर में जाए तब उसे भेदवाद छूट जाता है। उसे ऐसा कहना कि राग से लाभ होता है, ऐसा हल्का कहना, वह उसकी कीमत होती है ? आहाहा !

यह सब आता है, परन्तु जहाँ अन्दर प्रवेश करे वहाँ सब छूट जाते हैं। एक-एक विकल्प छोड़ने जाये... यह क्या कहते हैं ? कि यह दया का राग है, यह भेद का राग है, यह नय का राग है ऐसा एक-एक विषय छोड़ने जाए (तो) नहीं छूटेगा। तो कुछ छूटेगा नहीं। वहाँ की वहाँ नजर रहेगी। छोड़ने जाए वहाँ नजर रहेगी। आहाहा ! ... नजर वहाँ रहेगी। राग के ऊपर नजर रहेगी, भेद के ऊपर नजर रहेगी। वहाँ प्रभु नहीं ज्ञात होगा। आहाहा ! यह कहते हैं कि **वहाँ सब छूट जाते हैं। एक-एक विकल्प छोड़ने जाये तो कुछ नहीं छूटता,...** आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? धीरे-धीरे एक-एक विकल्प (जाए) तो (विकल्प तो) असंख्य प्रकार के हैं। आहाहा ! उन्हें एक-एक को छोड़ने जाए तो असंख्य समय जाते हैं और फिर भी वापस छोड़ने जाए तो असंख्य समय जाते हैं। पार नहीं आता ऐसा, प्रभु ! आहाहा !

अन्दर जाने पर सब छूट जाता है। ऐसा मार्ग परन्तु लोगों को... आहाहा ! बाहर से कुछ व्यवहार से होता है। पूजा, भक्ति, दान और दया, यह लोगों को ठीक पड़ते हैं। ऐसा कि बाहर से उन्हें देखने में आता है। यह दिखाव में नहीं आता। आहाहा !

परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा का यह हुक्म है। प्रभु ! तू एक-एक विकल्प छोड़ने जाएगा तो नहीं छूटेगा। वहाँ लाईन लगी ही रहेगी। जैसे एक पुणी एक फूटे वहाँ दूसरी पुणी सांध लेगा। यह पुणी रुई की, डोरा पूरी हो वहाँ दूसरी पूरी हो वहाँ तीसरी। ऐसे अन्दर विकल्प छोड़ने जाए तो प्रभु ! विकल्प की लाईन रहा ही करेगी। आहाहा ! ऐसा सुनना कठिन पड़े। प्रभु ! तू है तो अन्दर ऐसा, हों !

अन्दर जाने पर सब छूट जाता है। उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता। वास्तव में तो परद्रव्य के त्यागग्रहणशून्य वस्तु आत्मा है। क्या कहा ? यह भगवान आत्मा परद्रव्य के उपादान और त्याग, ग्रहण-त्यागरहित है। इसने रजकण को ग्रहण किया नहीं तो रजकण को छोड़ना इसमें नहीं है। यह तो परद्रव्य के ग्रहण-त्याग से शून्य है। एक बात। अब इसमें

विकल्प रहे, वह इसकी पर्याय में है। वे परद्रव्य तो भिन्न ही है; इसलिए छोड़ना नहीं। परद्रव्य ग्रहण करना या छोड़ना या इसने इतना छोड़ा और इसका यह छोड़ा, ऐसा स्वरूप में नहीं है, प्रभु! आहाहा! इसमें परद्रव्य के त्यागोपादान नाम का एक गुण है। त्यागोपादानशून्यत्व। पर को ग्रहण करना और छोड़ना, इससे प्रभु खाली है। आहाहा! मात्र उसमें विकल्प जो आते हैं... आहाहा! वह सब छूट जाए अन्दर जाए वहाँ। वह छोड़ना नहीं पड़ता।

आत्मा अन्तर आनन्दस्वरूप के अनुभव में जाए, वहाँ वे विकल्प तो उत्पन्न नहीं होते। उत्पन्न नहीं होते, उन्हें वह छोड़ता है—ऐसा नाम कथन है। नाम कथन। है न ३४ गाथा? समयसार ३४। राग के त्याग का कर्ता भी नाममात्र है। ३४ गाथा। प्रत्याख्यान की। समयसार। आहाहा! भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने जगत के समक्ष अमृत बहाया है। उसमें बहिन ने अन्दर से थोड़ा.. थोड़ा.. थोड़ा.. बोला परन्तु केवल अमृत बहाया है। आहाहा! भाई आये नहीं? सौभागचन्दभाई। सवेरे थे यहाँ। आहाहा! यह बहिन की पुस्तक बाँटना है न कल उनकी ओर से? आहाहा!

छोड़ना-छोड़ना यह इसमें है ही नहीं। यह तो अपने अस्तित्व की पूर्णता के अनुभव में आया, इसलिए जो इसमें नहीं, वह उत्पन्न नहीं होता। वह उत्पन्न नहीं होता, उसका इसने नाश किया, ऐसा नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा को लागू नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया? राग का त्याग भी परमार्थ से (आत्मा को नहीं है)। आहाहा! ऐसी चीज़ है। १८०। पश्चात्?

'विकल्प छोड़ दूँ', 'विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते। मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व हूँ—इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे तो उसके बल से निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जायें॥१८२॥

१८२। **'विकल्प छोड़ दूँ', 'विकल्प छोड़ दूँ'—ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते।** यह विकल्प छोड़ूँ, वहाँ तो दृष्टि पर्याय के ऊपर और राग के ऊपर जाती है। राग के ऊपर दृष्टि जाने से विकल्प नहीं छूटता। जिसमें विकल्प नहीं है, ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द निर्विकल्प उदासीन शुद्ध-बुद्ध (है), उसका अनुभव करने से विकल्प

उत्पन्न नहीं होते। परन्तु विकल्प छोड़ूँ, ऐसा करने से विकल्प नहीं छूटते।

मैं यह ज्ञायक हूँ,... आहाहा! यह तो समझाते हैं, हों! **मैं यह ज्ञायक हूँ,...** यह भी अभी विकल्प है। परन्तु समझाने में क्या कहना? बापू! यह १४२ में कहा है कि मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प आया तो उससे क्या हुआ? प्रभु! उसमें तुझे लाभ क्या है? जहाँ जाना है, वहाँ तू गया नहीं और इसलिए विकल्प में अटककर खड़ा है, यह तो अनादि की चाल है। अनादि की चाल और अनादि की गति है। उसमें तूने नया क्या किया? आहाहा!

मैं यह ज्ञायक हूँ,... समझाना है न? इसलिए **मैं यह ज्ञायक हूँ,...** छठवीं गाथा। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' प्रमत्त-अप्रमत्त दशा भी मुझमें नहीं है। आहाहा! है न छठवीं? शान्तिभाई ने लिखी है, तुम्हारे पंकजभाई के कमरे में है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' छठवीं। महा जैनदर्शन का प्राण है छठवीं और ग्यारहवीं (गाथा)। छठवीं और ग्यारहवीं दोनों जैनदर्शन का प्राण। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वह वस्तु स्वरूप है। आहाहा! वह वस्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वीतराग मूर्ति है। वह विकल्प छोड़ूँ... छोड़ूँ... छोड़ूँ... उसमें वह नहीं छूटती। आहाहा! परन्तु मैं ज्ञायक हूँ, अस्ति ली है। छोड़ूँ, यह नास्ति से कहा। अब अस्ति से ऐसी बात ली है—मैं ज्ञायक हूँ। समझाना है, इसलिए क्या समझावे?

मैं ज्ञायक हूँ,... प्रभु! समझ में आये ऐसी बात है, हों! भाषा तो सादी है। कठिन लगे ऐसी नहीं। प्रभु! तू एक अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) लेने की ताकतवाला नाथ तू और तू पामरता बतावे, यह प्रभु को नहीं शोभता। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेकर... आहाहा! अनन्त आनन्द को वेदे, ऐसी ताकतवाला, नाथ! तुझे यह नहीं शोभता कि मुझे नहीं समझ में आता। प्रभु! यह कलंक है। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान ले सके, ऐसी ताकतवाला, उसे तू ऐसा कहे, हमें यह समझ में नहीं आता। प्रभु! यह कलंक है, हों! आहाहा! यह अकेला समझन का नाथ है। न समझ में आये, ऐसी बात इसकी बात में नहीं है। इसकी बात में तो नहीं, इसके भाव में नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश!

मैं यह... मैं यह दो बताते हैं। मैं—अस्ति। यह—प्रत्यक्ष। यह। यह लोग नहीं कहते? यह आया। इसी तरह यह—इसका पूरा तत्त्व है, वह यह। **मैं यह ज्ञायक हूँ, अनन्त विभूति से भरपूर तत्त्व हूँ**- आहाहा! जितनी विभूति कहलाती है, उस विभूति से भरपूर

मैं हूँ। आहाहा! आता है न? दर्शन-ज्ञान आदि अनन्त गुण से भरपूर मैं। उस स्तवन में आता है। आहाहा! मैं पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण गुण से भरपूर।

कहै विचच्छण पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससो भर्यो आपनी टेक हौं,
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है।

यह राग वह भ्रम का कुँआ है। आहाहा! '**मोहकर्म मम नांहि नांहि...**' दो बार है।

मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है।
शुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है।
मोहकर्म रागकर्म मम नाहिं, नाहिं भ्रमकूप है।
शुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है। ३३ (जीवद्वार)

यह भी एक विकल्प करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह तो एक समझाते हैं। समझ में आया? ऐसी बात। प्रभु तो प्रभु के घर की बातें हैं, बापू! और प्रभुपने को पहुँचने की यह बात है। आहाहा!

कितने ही क्रमबद्ध का बहुत विरोध करते हैं। क्योंकि यह क्रमबद्ध! जिस समय में जो होता है, वह होगा? परन्तु प्रभु! तेरे असंख्य प्रदेश जो हैं, वे प्रदेश जिस स्थान में हैं, वे वहाँ हैं। इसी प्रकार उसकी पर्याय भी जिस काल में है, उस काल में है। वह प्रदेश क्षेत्र से है, यह (पर्याय) काल है। आहाहा! उसमें गहराई में जाने पर इस बात का निर्णय हो सकता है। आहाहा!

यह तो बहिन के वचन उन्हें अनुभव में से आये हुए हैं। तुम देख सको तो उनमें कुछ नहीं लगता। मुर्दे जैसे लगें ऐसे। हिले तो मुर्दा। उन्हें बाहर किस प्रकार प्रसिद्ध करना? आहाहा! बहुत वर्षों से ऐसा विकल्प रहता था कि ऐसी बहिन पकी, स्त्रीपने में ऐसा आत्मा भरतक्षेत्र में पका। आहाहा! प्रभु के विरह में। बाहर किस प्रकार प्रसिद्ध करना? कुछ सूझ नहीं पड़ती। यह शब्द आये... आहाहा! और जहाँ नजर से देखा। नहीं तो अपने सोनगढ़ से २२ लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कभी यह पुस्तक छपाओ या यह करो, हमने कुछ कहा नहीं। परन्तु यह जहाँ देखा, तब रामजीभाई को मैंने कहा, भाई! यह

लाख पुस्तक छपाओ। यह लाख छपाओ, ऐसा कहा, हों! और बस हो गया। बढ़ जाएगी। आहाहा! लोगों को प्रेम है न। आहाहा! प्रभु! प्रेम है। यह तो तुझे तेरे घर का प्रेम है न! आहाहा!

कहते हैं, यह **अनन्त विभूति से भरपूर...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य अपनी पर्याय की विभूति से बात करते हैं कि मैं निज वैभव से समयसार कहूँगा। यह निज वैभव, वह तो पर्याय की बात है और यह निज वैभव, वह त्रिकाली की बात है। समझ में आया? पाँचवीं गाथा में आता है न? मैं मेरे निज वैभव से। मेरा निज वैभव वह अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उसका समकित, उसका ज्ञान और उसमें रमणता तथा उसका आनन्द, वह मेरा निज वैभव है। यह पैसा-बैसा और यह धूल का वैभव वह मेरा नहीं है। यह शिष्य मेरे नहीं है। अरर्र! आहाहा! शिष्य मेरे नहीं, मैं उनका गुरु नहीं। आहाहा! मैं तो मेरे निज वैभव आनन्द का सागर मुझे उछला है। मेरी पर्याय में। जैसे समुद्र के किनारे पानी का ज्वार आता है... आहाहा! उसी प्रकार यह उछला है, इसलिए मैं मेरे निज वैभव से बात करूँगा। है न?

इस प्रकार अन्तर से भेदज्ञान करे तो उसके बल से निर्विकल्पता हो, विकल्प छूट जायें। आहाहा! अब? १९३।

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है; मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है॥१९३॥

१९३। **सम्यग्दृष्टि...** यह न? यह हिन्दी थोड़ा चलेगा, पाव घण्टे।

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा... आहाहा! **सम्यग्दृष्टि...** जीव चौथे गुणस्थान में अभी धर्म की पहली भूमिका में भी अपने को **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,...** आहाहा! मैं तो ज्ञायक हूँ। जानन-देखन हूँ। जानने-देखनेवाला हूँ, ऐसी बात ज्ञायक में धर्मी धारण कर रखता है। आहाहा! **टिकाए रखता है,...** मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा टिकाये रखता है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा ही अपने में धारण कर रखता है,... आहाहा! राग और विकल्प से और सुनने से धारण कर रखता है, ऐसा नहीं। आहाहा! अपने को **ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा...** ज्ञायक को ज्ञायक द्वारा। अलिंगग्रहण में आता है न? अलिंगग्रहण के बीस बोल में छठवाँ बोल आता है। अपने स्वभाव से जानने में आता है, ऐसा मैं आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता हूँ। अपने स्वभाव से जानने में आता हूँ, ऐसा मैं प्रत्यक्ष ज्ञाता हूँ। बीस बोल में छठवाँ बोल है। अलिंग्रहण। वह बात है यहाँ। आहाहा! अपने को ज्ञायक द्वारा अपने में धारण कर रखता है, टिकाये रखता है। कोई दया, दान और राग रहे, राग हो तो यह आत्मा टिका रहे, ऐसा नहीं। आहाहा!

स्थिर रखता है,... सम्यग्दृष्टि अपने में अपने से स्वभाव से स्थिर रखता है। स्वभाव की दृष्टि करके अपने में अपने को ज्ञायक टिकता है और स्थिर रखता है। **ऐसी सहज दशा होती है।** कृत्रिम नहीं। सहज दशा। आहाहा! क्यों? आत्मा में एक भाव नाम का एक गुण है। आत्मा में भाव नाम का एक गुण है। जैसा ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, ऐसा भाव नाम का गुण है। तो भावगुण का कार्य क्या? कि अनन्त गुण की अवस्था होती है, उसको करनी पड़ती नहीं। राग तो नहीं परन्तु अपनी पर्याय करनी पड़ती नहीं। होती है। आहाहा! भावगुण है ४७ में। भावगुण की व्याख्या ऐसी की है कि... भाव तो एक गुण है परन्तु एक गुण का अनन्त गुण में रूप है। तो अनन्त गुण है, उसकी वर्तमान पर्याय होती... होती... होती ही है। करूँ तो होती है, ऐसा नहीं। गजब बात है!

राग तो करना नहीं, पर को तो करना नहीं परन्तु पर्याय को करूँ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! होती है। अरे..! आहाहा! होती है, उसको जानूँ, वह भी जानने की पर्याय के

काल में जानने की पर्याय होती ही है। समझ में आया? मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा जानूँ। मेरे अनन्त गुण हैं, मेरे में वह जानूँ। पर्याय मेरे में हुई, उसको जानूँ। तो जानूँ, वह पर्याय भी उस समय होनेवाली है ही। भावगुण के कारण जाननेवाली पर्याय उस समय अस्ति धराती है। जो जानूँ यह पर्याय भी मुझे करना, ऐसा नहीं। आहाहा! पाटनीजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

राग करूँ, वह तो नहीं; पर का कुछ करूँ, ऐसा तो नहीं। परन्तु मेरी पर्याय निर्मल करूँ, ऐसा भी नहीं। क्योंकि गुण और गुण का धरनेवाला भगवान, उसको आश्रय और दृष्टि में लिया तो उसमें भाव नाम का एक गुण है, उस गुण के कारण अपनी पर्याय में पर्याय की अस्ति सहज होती है। मैं करूँ तो पर्याय हो, ऐसा भी नहीं। आहाहा! है? **ऐसी सहज दशा होती है।** है? सहज दशा होती है। आहाहा! मैं करूँ, इसको जानूँ तो जानने की पर्याय मैं करूँ, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा की एक समय की जो पर्याय एक गुण की है, वह षट्गुण षट्कारक से परिणति होती ही है। होती है, उसमें करूँ—ऐसा कहाँ रहा? और मैं जानता हूँ—ऐसी पर्याय भी वहाँ होती है। मैं जाननेवाला हूँ—ऐसी पर्याय होती है। वह पर्याय भी षट्गुण के कारण से परिणति होती ही है। होती है, उसे करूँ कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

ऐसी सहज दशा होती है। स्वाभाविक वस्तु सहजात्मस्वरूप प्रभु, जहाँ निर्विकल्प दृष्टि में आया तो उसमें गुण ऐसा है कि अनन्त गुण की पर्याय विद्यमान होती है। होती है उसको करूँ—ऐसा भी उसमें नहीं। आहाहा! निर्मल, हों! राग की तो बात ही नहीं है, प्रभु! आहाहा! निर्मल दशा करूँ, ऐसा भी उसमें नहीं। निर्मल दशा भावगुण के कारण अनन्त गुण की विद्यमान अवस्था होती है। होती है, उसको करूँ, ऐसा कहाँ रहा? समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की परिणति तो चलती ही रहती है। यह क्या कहते हैं? राग आता है, तो भी राग के काल में राग से भिन्न ज्ञानधारा तो सहज चलती है। आहाहा! ऐसी बात है। **सम्यग्दृष्टि जीव को तथा मुनि को भेदज्ञान की**

परिणति... पर्याय-दशा **चलती ही रहती है।** होती ही है। आहाहा! **सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता है...** सम्यग्दृष्टि जीव है, गृहस्थाश्रम में हो, छह खण्ड का राज चक्रवर्ती में हो। आहाहा! या नरक में—सातवीं नरक में सम्यग्दृष्टि हो। आहाहा! छह खण्ड के राज में चक्रवर्ती हो, उस दशा के अनुसार उपयोग अन्तर में जाता ही है। करना पड़ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहले यथार्थ क्या चीज़ है, ऐसा ज्ञान में उसका निर्धार-निर्णय तो करे। यह ऐसी चीज़ है। ऐसी चीज़ से विरुद्ध निर्णय हो तो कभी अन्तर में जा सके नहीं। सत् ऐसा है नहीं। सत् प्रभु ऐसा, उसमें विपरीत धारणा यदि ज्ञान की हो तो वह अन्तर में जा सके नहीं। आहाहा! उस कारण जैसा सत् है और उसकी पर्याय भी उस काल में होनेवाली सहज है। ऐसा है, ऐसा जाने। समझ में आया? तो अन्तर में जा सके। क्योंकि सत्य बात ख्याल में आयी, सत् ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अन्तर्मुख होगा। आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को उसकी दशा के अनुसार... चौथे की दशा, पाँचवें की दशा। **उपयोग अन्तर में जाता है और बाहर आता है;...** देखो! विकल्प आता है। **मुनिराज को तो उपयोग अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है।** मुनि तो बापू! वह अन्तर के आनन्द में झूलते हुए, क्षण में विकल्प आवे छठवाँ गुणस्थान। दूसरे क्षण छठवें गुणस्थान की स्थिति से आधी स्थिति में अन्तर में चले जाते हैं। सप्तम में अन्दर में चले जाते हैं और उससे डबल में छठवें गुणस्थान में विकल्प उठता है। परन्तु सहज अन्तर में जाते हैं। ध्यान करने से जाते हैं, ऐसा भी कहने में आता है। परन्तु सहज ही। छठवें से सातवाँ सहज हो जाता है। आहाहा!

मुनि को तो प्रथम छठवाँ गुणस्थान नहीं आता है। आहाहा! प्रथम तो अप्रमत्त दशा आती है। सप्तम गुणस्थान आता है। वहाँ से नीचे विकल्प आता है, वह छठवाँ गुणस्थान हो जाता है। परन्तु हो जाता है, ऐसा होने पर भी में अन्तर्मुहूर्त में सप्तम में चला जाते हैं। ऐसे मोक्ष के आखिरी अन्तर्मुहूर्त में.. धवल में पाठ है कि हजारों बार छठवाँ-सातवाँ उसको आता है। आहाहा! अरे! भाई! मुनिदशा बहुत अलौकिक बातें हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की दशा भी जहाँ अलौकिक है वहाँ मुनिदशा की तो बात क्या करना?

अति शीघ्रता से बारम्बार अन्तर में उतर जाता है। भेदज्ञान की परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनों के चलती ही रहती है। दोनों नाम गृहस्थ और मुनि। दोनों को राग से भिन्न जो अन्तर में स्थित हैं, वह भेदज्ञान की धारा करनी पड़ती नहीं। धारा चलती ही है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में हो या पाँचवें में हो या छठवें गुणस्थान में हो। वह भेदज्ञान की धारा भूमिका के प्रमाण में, दशा के प्रमाण में सदा चलती ही रहती है, करनी पड़ती नहीं। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ, तब से कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। क्या कहते हैं? गृहस्थ में हो या मुनिपना में। राग से भेदज्ञान (करके) भिन्न हुआ, तब से कोई समय स्वभाव तरफ का पुरुषार्थ न हो, ऐसा कोई समय होता नहीं। स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ कायम चलता ही है। बाहर में दिखे कि रागादि आता है। परन्तु अन्तर में तो स्वभाव सन्मुख का पुरुषार्थ चलता ही है। चाहे तो गृहस्थाश्रम में हो, चाहे तो मुनि हो। धीरुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! कम्पनी-बम्पनी में ऐसा सुनने मिले नहीं। कम्पनी में क्या यहाँ बाहर में सम्प्रदाय में सुनने नहीं मिलता। अरेरेरे! क्या हो?

अविरत सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान के अनुसार... देखा! अविरत सम्यग्दृष्टि। अभी विरती नहीं है, त्याग नहीं है अन्दर राग का। राग का त्याग, हों! **चौथे गुणस्थान के अनुसार और मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान के अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है।** अर्थात् स्वभाव सन्मुख की धारा राग से भिन्न होकर भेदज्ञान धारा चलती ही है। राग चले, वह कर्मधारा है। राग से भिन्न पड़ा, वह ज्ञानधारा है। दो धारा चलती है। फिर भी दूसरी धारा का वह स्वामी नहीं। सम्यग्दृष्टि को राग की धारा चलती है परन्तु उसका स्वामी नहीं। वह मेरी चीज़ है, ऐसा मानते नहीं। वह दु:खदशा है। मेरे ज्ञान में परज्ञेय रूप से जानने लायक है। ऐसी धारा **पुरुषार्थ के बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है,...** क्या कहते हैं? पुरुषार्थ भी अन्दर चलता है और सहज भी ऐसा होता है। **पुरुषार्थ भी है।** सहज भी है, पुरुषार्थ भी है। ऐसी चीज़ अनुभवी को, सम्यग्दृष्टि को, राग होते हुए भी राग से भिन्न धारा चलती है। उसका नाम मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२०

चैत्र शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक २७-४-१९७९
वचनामृत - १९७, प्रवचन-७७३ (DVD 17)

प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे नहीं भासता। विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;—जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार।

प्रश्न :—सोना तो चमकता है, इसलिए पत्थर और सोना—दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं, परन्तु यह कैसे भिन्न ज्ञात हों ?

उत्तर :—यह ज्ञान भी चमकता ही है न ? विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—ज्ञात होता है। ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है। ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी ?

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों तो मोती का पारखी उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं; जो देखनेवाला है, सो मैं—इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है। व्रत, तप या त्यागादि भले हों, परन्तु वे साधन नहीं होते, साधन तो प्रज्ञा ही है।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है। ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे॥१९७॥

वचनामृत, १९७ बोल। **प्रज्ञाछैनी को शुभाशुभभाव और ज्ञान की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में पटकना।** प्रज्ञाछैनी। श्लोक आता है न, उसमें से है। क्या कहते हैं ? कि यह शुभ और अशुभभाव और ज्ञान अर्थात् आत्मा—स्वभाव, दोनों के बीच सन्धि है, दो के बीच सन्धि है। दोनों एक हुए नहीं। इसमें (एक) माना है। आहाहा! भगवान आत्मा निर्मल शुद्धस्वभाव और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम दो के बीच सन्धि है। जैसे पर्वत में बारीक रग होती है और उसके कारण वे दोनों पत्थर भिन्न पड़ जाते हैं। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शुद्ध स्वभाव का पिण्ड, उसमें दया, दान, व्रत (यह शुभभाव), काम, क्रोध के परिणाम, वह अशुभभाव, अशुभ की तो बात क्या करना ? वह शुभ और अशुभभाव तथा भगवान ज्ञानस्वभाव में सूक्ष्म अन्तःसन्धि। सूक्ष्म अन्तःसन्धि अर्थात् दो के बीच सांध है। दो के बीच दरार है। आहाहा! उसमें प्रज्ञाछैनी-यह साधन। साधन कहते हैं न ? साधन क्या ? सूक्ष्म बात है, प्रभु! उसे प्रज्ञाछैनी का साधन पटकना। राग और स्वभाव दोनों भिन्न हैं, ऐसा जानकर राग और स्वभाव में बीच अन्तःसन्धि है, वहाँ ज्ञान की एकाग्रता से राग से भिन्न पड़ना। आहाहा!

उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके... अन्तर में काम नहीं होता, इसका अर्थ कि उपयोग वह स्थूल है। जिस उपयोग में राग और पुण्य-पाप का जिसका लक्ष्य है, उसका उपयोग स्थूल है। वह स्थूल उपयोग अन्दर काम नहीं कर सकता। आहाहा! शुभभाव का तो उपयोग जो है, वह स्थूल है। क्यों ? कि शुभभाव के पुण्य-पाप के अधिकार में अति स्थूल परिणाम कहा है। अति स्थूल। आहाहा! परिणाम को, हों! शुभ। पुण्य-पाप अधिकार। आहाहा! जितना शुभभाव है, अशुभ की तो बात की है वहाँ। अत्यन्त स्थूल अशुभभाव है, वह तो है, वह तो ठीक परन्तु शुभभाव जो है, वह भी अति स्थूल है क्योंकि उससे भगवान पकड़ में नहीं आता। उससे तो विकार पकड़ में आता है और विकार से परिभ्रमण होता

है। आहाहा! इसलिए शुभभाव को अति स्थूल कहकर, अन्दर से भिन्न सूक्ष्म उपयोग करके उस स्थूलपने से लक्ष्य को छोड़कर अन्तर्मुख स्वभाव में सूक्ष्म उपयोग को लेकर, **सूक्ष्म करके उन दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना।** आहाहा! ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन प्राप्ति का यह उपाय है। बाकी कोई उपाय नहीं। जो राग शुभ भले हो, उस ओर के उपयोग को स्थूल कहते हैं। तब उसकी ओर से हटकर सूक्ष्म उपयोग जिसके द्वारा राग से ज्ञान स्वभाव को भिन्न में एकता टूटे और स्वभाव की एकता हो, उसे यहाँ सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहाहा! ऐसा काम है।

दोनों की सन्धि में सावधान होकर उसका प्रहार करना। इसमें सार सार वचन तो बहिन के हैं। आहाहा! सौभागचन्दभाई नहीं आये? सौभागचन्दभाई कहते थे सवेरे। यह पढ़ा न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उनकी ओर से है। कहते थे कि यह तो पढ़े, उसे भव के अभाव की बातें इसमें तो है। वह स्वयं (कहता था)। भव के अभाव की बात है, बापू! अकेला माल-मक्खन भरा है। आहाहा! केवलज्ञानी का पेट (अभिप्राय) खोला है परन्तु जगत को अपने आग्रह के कारण नहीं बैठता। वह स्वतन्त्र है। अनादि की बात है। नहीं बैठी। कहीं न कहीं उसे अटकने का शल्य तो रह गया है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सूक्ष्म उपयोग करके अर्थात् शुभभाव के ओर के भी झुकाव को छोड़कर। (समयसार गाथा) १४४ में कहा है न? १४४ गाथा। मति-श्रुत को मर्यादा में लाकर.. आहाहा! संस्कृत तो ... है। इसलिए अपने हिम्मतभाई ने उसका अर्थ मति-श्रुत जो है परसन्मुख के झुकाववाले, उन्हें मर्यादा में अर्थात् अपना क्षेत्र है, भाव है वहाँ लाना। मर्यादा। भाई ने ऐसा अर्थ किया है, फूलचन्दजी ने। मति-श्रुत को जानना। अवधारी, ऐसा शब्द है। परन्तु उसका अर्थ यह है कि उस ओर-परसन्मुख जो ढला हुआ है, उसे इस ओर ढालना। और आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु है, उसमें उपयोग को सन्मुख करना। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की प्रथम रीति और कला यह है। बाकी सब बातें-व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

सावधान होकर उसका प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात्... अब उसकी व्याख्या। **बराबर सूक्ष्म उपयोग करके,...** यह उपयोग जो चलता है, मति और श्रुत का उपयोग जो पर्याय में चलता है, चलता है उसे सूक्ष्म, धीर-धीर होकर, धीर होकर ध्येय को पकड़ना। आहाहा! ध्रुव को ध्येय में लेकर सूक्ष्म उपयोग करके धीरज से उस धुनी को धकाना। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य विराजता है, उसकी ओर वर्तमान की सूक्ष्म पर्याय को धीरज से वह पूरी चीज़ जो ध्येय में आवे, दृष्टि में आवे, वर्तमान पर्याय में पूरा ज्ञेयरूप से आवे ... पर्याय को धीरज से ध्येय में ले जाना। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। क्या करे परन्तु दूसरा उपाय? यही मार्ग है। लोगों ने तो किसी न किसी रूप से कल्पना करके वीतराग के मार्ग से सब विरुद्ध चलाया है। अत्यन्त विरुद्ध है, हों! मिथ्यादर्शन। शुभ से ऐसा होता है और शुभ से ऐसा होता है। पहले शुभ होता है तो अन्दर ऐसे मदद करे। आहाहा! यह सब मिथ्यात्व के शल्य की बातें पुष्ट की हैं। आहाहा! यहाँ तो बहिन स्पष्ट रखती हैं। जगत को बैठे या न बैठे।

बराबर... **सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, बराबर लक्षण द्वारा पहिचानकर।** राग का लक्षण बन्ध है अथवा बन्ध का लक्षण राग है और चैतन्य का लक्षण ज्ञान है, यह सर्वविशुद्ध अधिकार में आता है। इन दोनों के लक्षणों को बराबर जानकर अन्तर्मुख में उपयोग को झुकाकर... आहाहा! पहिचानकर वहाँ एकाग्र होना। ऐसी बात है। उसका अभी ज्ञान का भी ठिकाना नहीं—व्यवहार ज्ञान का। इससे होता है और शुभ से होता है और अमुक से होता है, उसका तो व्यवहार से ज्ञान मिथ्या है। आहाहा!

यहाँ तो जिसके ज्ञान में पहले ऐसी बात आती है कि इस ज्ञान को सूक्ष्म उपयोग करके अन्तर में झुकाना, तब उसे अन्तर आत्मा साक्षात्कार होता है। अर्थात् कि आत्मा में आनन्द के प्रत्यक्ष वेदन में आवे, उसे समकित कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रवाह चलता हो, उससे यह प्रवाह अलग प्रकार है।

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं,... अभ्रक, उसके पतले पर्त होते हैं। **किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है,...** तो पड़े, नहीं तो चूरा हो जाए। अभ्रक के पर्त पतले होते हैं। पर्त समझ में आता है? अभ्रक-अभ्रक। पतले पर्त होते हैं। पर्त को

हिन्दी में क्या कहते हैं ? बहुत पतले पर्त होते हैं। उन्हें यदि ध्यान रखे तो एक-एक पर्त भिन्न पड़े। ध्यान न रखे तो पर्त भिन्न न पड़कर पर्त टूट जाए। आहाहा! बहिन ने दृष्टान्त दिया है। आहाहा!

अभ्रक के पर्त कितने पतले होते हैं, किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है,... ध्यान रखकर पूरा का पूरा पर्त भिन्न करे। कोई पर्त में पौने सोलह आने न हो। आहाहा! पर्त को भिन्न करते हुए पर्त में पौने सोलह आना न हो। पूरा पर्त पतला भिन्न पड़े। आहाहा! पर्त को क्या कहा ? पूनमचन्दजी! तुम्हारी हिन्दी भाषा में क्या कहते हैं ? पर्त। आहाहा! **किन्तु उन्हें बराबर सावधानीपूर्वक अलग किया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म उपयोग करके...** यह उसकी पद्धति है। यह उसकी मार्ग की पद्धति है। महँगी पड़े परन्तु मार्ग यह है। शीरा-हलुवा करते हुए घी पहले आटा पी जाता है। शीरा-शीरा—यह हलुवा। पहले घी है, उसे आटा पी जाता है और फिर गुड़ का और शक्कर का पानी डाले। परन्तु कोई ऐसी चतुर की पुत्री निकले कि यह तो घी पी जाता है। इसलिए पहले आटे को गुड़ के पानी में सेंककर फिर घी डालना। आहाहा! तो वह हलुवा सस्ता पड़ेगा। आहाहा! सस्ता नहीं पड़ेगा, प्रभु! वह तो... आहाहा! पोटिश भी नहीं होगी। पोटिश समझते हो ? फोड़े पर जो पोटिश करते हैं न, तो उसमें स्त्रियाँ बोलती हो, हमने तो सब सुना है, यहाँ कुछ किया नहीं। महिलाएँ एक-दूसरे को ऐसा कहती हैं। पोटिश कर बहिन। थोड़ा सा घी डालना ऐसा कहे। ऐसा बोले, यह सुना हुआ है। हमने कुछ किया नहीं है। थोड़ा सा घी डालना अर्थात् ? कि पोटिश में घी थोड़ा न पड़े, ऐसा भी नहीं और बहुत पड़े, ऐसा भी नहीं। उसके प्रमाण में जरा छूना चाहिए। यदि अधिक पड़ेगा तो पोटिश नहीं होगी और बिल्कुल नहीं पड़ेगा तो भी पोटिश नहीं होगी। यह लोग—महिलाएँ कहती हैं। पोटिश करते हैं न फोड़े पर ?

इसी प्रकार... आहाहा! यहाँ आत्मा में महँगा पड़े। आटे में घी पी जाए, पश्चात् गुड़ का पानी डाले एक सेर। इसलिए पहले आटा गुड़ के पानी में सेंकना और पश्चात् घी डालना। प्रभु! ऐसा नहीं होता। इसी तरह पहले शुभभाव व्रत, तप और भक्ति करो, पश्चात् आत्मा का ज्ञान होगा। आहाहा! वे आटे को घी में न सेंककर पानी के आटे में घी को सेंकना... आहाहा! ऐसी वह बात है। न बैठे, बापू! कठिन बातें, बापू! प्रभु!

वीतराग तीन लोक के नाथ का पुकार जगत के समक्ष ढिंढ़ोरा पीटा है। ढिंढ़ोरा पीटा है। प्रभु! तुझे यह हलुवा महँगा पड़े परन्तु बाद में घी डालना, ऐसा नहीं होता। घी तो पहले डालना पड़ेगा। इसी प्रकार आत्मा में सम्यग्दर्शन करने के लिये सूक्ष्म उपयोग पहले करना पड़ेगा। पहले व्रत और तप, भक्ति और पूजा करके फिर यह करेंगे... आहाहा! ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। यह वस्तु की पद्धति और रीति नहीं है। आहाहा! यह यहाँ बहिन कहती हैं।

सावधान होकर वहाँ **सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच...** जैसे उस पतले पर्त को धीरे से भिन्न करते हैं, उसी प्रकार राग विकल्प चाहे तो शुभ हो, दया, व्रत, भक्ति और गुण-गुणी का भेदविकल्प हो, वह स्थूल है और उससे भिन्न भगवान आत्मा को पकड़ने का उपयोग सूक्ष्म, वह **स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर।** आहाहा! त्रिकाली स्वभाव भगवान और कृत्रिम क्षणिक विकार दु:खरूप दोनों को सावधानी से भिन्न कर। यह पद्धति है। आहाहा!

जिस क्षण विभावभाव वर्तता है,... क्या व्याख्या है? **जिस क्षण विभाव...** अर्थात् राग वर्तता है, **उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले।** उसी समय में। आहाहा! जिस समय में विभावधारा वर्तती है... आहाहा! उसी समय में ज्ञाताधारा द्वारा। सूक्ष्म है, भाई! मूल पद्धति है न।

बहिन की तो भाषा सहज निकल गयी है। वे तो बहुत कम बोलती हैं। परन्तु तब यह कुछ न कुछ बोल गये और बहिनों-लड़कियों ने लिख लिया, इसलिए यह बाहर आया। आहाहा! लोक का भाग्य! आहाहा! ऐसी चीज़ बाहर आयी, प्रभु! बहिन का शरीर नहीं देखना, उनकी वाणी और चाल को देखोगे तो मुर्दा जैसा लगेगा। उनके अन्तर का आत्मा वह अनुभव के वेदन में काम करते-करते बोला गया है। आहाहा! परन्तु लोगों को कैसे बैठे। स्त्री है। बोलते नहीं, चले तो मुर्दे जैसे। धारावाही आवे और किसी को समझाना आवे, भले गप्प मारता हो। आहाहा! पाँच-पचास हजार, दस हजार लोग इकट्ठे हों, उससे क्या? आहाहा! धीरुभाई! यहाँ तो माता...! हम तो माता कहें तो भी वह है, बहिन कहें तो वह है, पुत्री कहें तो वह है, साधर्मी बहिन कहें तो वह है। आहाहा!

यह कहते हैं कि भाई! **सूक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभाव के बीच प्रज्ञा द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है, उसी समय ज्ञातृत्वधारा द्वारा स्वभाव को भिन्न जान ले। भिन्न ही है...** भिन्न जान ले, ऐसा कहा है। भिन्न ही है। आहाहा! उस सोने को जंग नहीं होती। बहिन की वाणी में पहले आया है। स्वर्ण को जंग नहीं होती, अग्नि में दीमक नहीं होती।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है। आहाहा! यह बहिन के शब्द हैं। सोना को जंग नहीं होती, प्रभु! उस अग्नि में दीमक नहीं होती, इसी प्रकार प्रभु को आवरण नहीं होता। आहाहा! वह तो निरावरण स्वभाव अन्दर चैतन्य नाथ भिन्न पड़ा है। परमात्मस्वरूप विराजमान है, भाई! तुझे पामर को माप करना नहीं आता, प्रभु! आहाहा!

रविवार का कहा था न एक बार? रविवार का दिन हो और उसका पिता पचास हाथ का कपड़ा ले आया आलपाक कोट बनाने के लिये। वह (लड़का) फुरसत में था तो नापा तो सौ हाथ हुआ। बालक के हाथ से सौ हाथ हुआ। बापूजी! यह तो तुम पचास हाथ कहते हो, यह तो सौ हाथ है। बापूजी कहे, लड़के! हमारे माप में काम में तुम्हारा हाथ माप काम नहीं करता। इसी प्रकार वीतराग कहते हैं कि कुतर्कियों को कि तेरे कुतर्क हमारे स्वभाव के माप में काम नहीं करते। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है और वैसा है, व्यवहार साधन कहा है, निश्चय साध्य कहा है, व्यवहार पहले होता है, निश्चय बाद में होता है। यह सब कहा है न? ऐसे कुतर्की अज्ञानी ऐसे कुतर्क करके उसका माप करने जाते हैं। नहीं होता, भाई! आहाहा! उसके माप करने के मापक अलग हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **भिन्न ही है...** भिन्न ज्ञात होता है। क्योंकि भिन्न है तो भिन्न ज्ञात होता है। न्याय, लॉजिक से न्याय समझना पड़ेगा न। भगवान आत्मा... शरीर, वाणी यह तो ... तो जड़ धूल है। माँस और हड्डियाँ। यह मिट्टी का पुतला पानी में गल जाए, वैसे यह तो काल आयेगा तो गल जाएगा, बापू! आहाहा! मिट्टी का पुतला पानी में डालने से वह गल जाता है, भाई! वहाँ मिट्टी का कण-कण भिन्न पड़ जाता है। इसी प्रकार यह काल आयेगा तो यह कण-कण भिन्न पड़ जाएगा, बापू! यह कहीं तेरी चीज़ नहीं है। यह तो तेरी नहीं

परन्तु यहाँ तो अन्दर में राग, कहते हैं वह तू नहीं है और वह तुझमें नहीं है। और तू राग से एक हुआ नहीं है। आहाहा! यदि राग से एक हुआ होता तो भिन्न नहीं किया जा सकता। भिन्न हो, उसे भिन्न किया जा सकता है। आहाहा! रमणीकभाई! यह ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! ऐसे शहर में भी इतने लोग सुनते हैं। सुनते हैं, बापू! मार्ग यह है। पागल कहो, गहल कहो चाहे जो कहो परन्तु मार्ग तो यह है। सूक्ष्म पड़े, महँगा पड़े और ऐसा कहीं सुनने को न मिले, इसलिए कुछ यह दूसरा उल्टा प्रकार है, ऐसा रहने देना, प्रभु! आहाहा! यह जाति ही भगवान के घर की है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिस समय में विभाव वर्तता है, उसी समय में स्वभाव भिन्न जान ले। भिन्न ही है परन्तु तुझे भासित नहीं होता क्योंकि वहाँ तेरी नजरें नहीं हैं। तेरी नजरें एक समय की वर्तमान पर्याय-अवस्था, उस पर तेरी नजर है। वह नजर लम्बावे तो राग में जाए। वह नजर लम्बावे तो अन्तर में न जाए। समझ में आया? तेरी पर्याय एक समय की अवस्था के ऊपर अनादि से दृष्टि है। मुनि हुआ, अट्ठाईस मूलगुण महाव्रतादि पालन किये, परन्तु उसकी एक समय की पर्याय के ऊपर दृष्टि है। और वह दृष्टि लम्बावे तो राग के ऊपर जाती है। वह दृष्टि लम्बावे तो अन्तर में जाए, ऐसी उस पर्याय की ताकत नहीं है। आहाहा!

इसलिए कहते हैं कि अन्दर में जाना होवे तो वह पर्याय भले वहाँ रही, परन्तु बाद की पर्याय को सूक्ष्म करके और भिन्न है, उसे जान ले। परन्तु भिन्न भी तुझे भासित नहीं होता। **विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;...** आहाहा! कंकड़ और दाने दोनों भिन्न चीज़ है। दाने और कंकड़ बीनकर निकालते हैं, इसका अर्थ कि दाने भिन्न ही हैं। दाने और कंकड़ एक हुए नहीं। एक हुए होवे तो भिन्न नहीं किये जा सकते। आहाहा! उस दाने में कंकड़ी भी भिन्न और दाना भी भिन्न। उसी प्रकार प्रभु! उस विभाव का विकल्प शुभ है, वह कंकड़ अलग और तेरा स्वभाव अलग। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा!

विभाव और ज्ञायक हैं तो भिन्न-भिन्न ही;... अन्दर में अत्यन्त भिन्न हैं। कंकड़ और दाना कभी एक हुए नहीं। आहाहा! इसलिए उन्हें बीन लिया जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा और राग एक हुए नहीं, इसलिए उन्हें निकालकर स्वभाव के ऊपर जाया

जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। एक बार कहा था। है न, क्या कहलाता है वह? पद्मनन्दिपंचविंशति। पद्मनन्दिपंचविंशति में... वे तो मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे, अन्दर से वीतराग का पुकार था। उन्होंने ब्रह्मचर्य की बातें कीं। उसका नाम पंचविंशति है—पद्मनन्दिपंचविंशति परन्तु छब्बीस है—अध्याय छब्बीस है। छब्बीसवें अध्याय में ब्रह्मचर्य की बात की। भगवान! तू काया द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-बालब्रह्मचारी पाले तो वह ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! तब ब्रह्मचर्य किसे कहना? कि मन, वचन और काया के विकल्प से ब्रह्मचर्य पालना, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ, उसमें रमना। आहाहा! ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा ब्रह्म आत्मस्वरूप, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप, ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसमें चरना-रमना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है।

पश्चात् मुनिराज कहते हैं, हे युवाओं! यह बात तुमको कठिन लगे और न रुचे... तुम्हारा शरीर युवा, तीन-तीन चूरमे के लड्डू चढ़ा जाते हों, घर में स्त्री पच्चीस-पच्चीस वर्ष की जवान और उसमें तुम्हारा विषय का रस और उसमें यह बात करते हैं। भाई! तुम्हें न रुचे तो, मुनिराज कहते हैं कि माफ करना। हमसे दूसरी क्या आशा रखोगे? ऐई! मुनिराज छब्बीसवें अध्याय में कहते हैं कि हमसे दूसरी क्या आशा रखोगे? प्रभु! हम तो ब्रह्म आनन्द में रमनेवाले और ब्रह्मचर्य की यह बातें करेंगे। हमारी युवा अवस्था और पाँच-पच्चीस लाख धूल के संयोग में अभिमान अन्दर में हो और यह हमारी ब्रह्मचर्य की बातें तुझे न सुहावे, माफ करना। हम मुनि हैं। आचार्य महाराज कहते हैं अथवा बहिन कहती हैं। यह बात तुम्हें न रुचे तो माफ करना परन्तु बात तो यह है। आहाहा! यह पद्मनन्दी का पाठ है। पद्मनन्दिपंचविंशति में २६वाँ अधिकार है न? उसमें ऐसा पाठ है। आहाहा!

राग से भिन्न। ज्ञायक और चैतन्य दोनों भिन्न। **जैसे पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही हैं तदनुसार**। खान में पत्थर निकालो तो पत्थर और सोना मानो दो दिखते हैं। इकट्ठे हैं नहीं। सोना-सोना भिन्न है, पत्थर भिन्न है। वह पाषाण और सोना इकट्ठे दिखते हैं परन्तु... परन्तु अर्थात् इकट्ठे दिखते हैं परन्तु भिन्न ही हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा और राग का पत्थर भगवान स्वर्णस्वरूप आत्मा, जिसे सोने का कटक जिसे जंग नहीं लगती, उसी प्रकार भगवान आत्मा को राग नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे स्वर्ण समान जानकर, भिन्न जानकर **पाषाण और सोना एकमेक दिखने पर भी भिन्न ही**

हैं... ऐसे विभावरूपी पाषाण के पत्थर... आहाहा! यह पुण्य-पाप, दया, दान विकल्प का भाव पाषाण पत्थर और तेरा स्वरूप अन्दर भिन्न आनन्द का नाथ—स्वर्ण, दोनों इकट्ठे दिखते होने पर भी दोनों भिन्न हैं। आहाहा!

तीन लोक के नाथ की बात है, बापू! बहिन तो महाविदेह में से आयी हैं। लोगों को विश्वास करना कठिन पड़ता है। प्रभु के पास जाते थे। हम भी साथ में थे परन्तु बहिन की बात होती है। समझ में आया? आहाहा! बहिन भगवान के पास जाती थीं। कुन्दकुन्दाचार्य जब संवत् ४९ में गये, बापू! विश्वास करना कठिन पड़े ऐसा है। यह भरतक्षेत्र, गरीब क्षेत्र गरीब काल। उसमें भगवान के पास गये और वहाँ से आये हैं, यह बात बैठना कठिन। परन्तु बात तो तीन काल में सत्य यह है। आहाहा! समवसरण में जाकर साक्षात् तीर्थंकर की वाणी सीधी सुनकर अनुभव की थी परन्तु बाद में माया का जरा दोष आ गया। स्त्री हो गये। आहाहा!

यहाँ अब कहते हैं... आहाहा! यह पाषाण और सोना दोनों एक नहीं है। इसी प्रकार दया, दान का विकल्प का पत्थर और तेरा आनन्द का स्वभाव दोनों एक नहीं है। अरर! ऐसी बात बैठना...

प्रश्न :—.... अब शिष्य का प्रश्न है। महेन्द्रभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! यहाँ तो परमात्मा के घर की, परमात्मा होने की बात है। आहाहा! सौभागभाई कहते, मुझे तो मुम्बई की ... विशेषता सौभागचन्दभाई के कारण होती है। सौभागचन्दभाई वहाँ राजकोट में दो हजार घरों में मुख्य। आहाहा! स्थानकवासी में। तथापि उन्होंने यह वितरण की। बहिन की पुस्तक। यहाँ आये। आकर कहे, महाराज! यह वस्तु तो घर-घर में जाए तो उसके भव के अभाव की बात है। आहाहा! आहाहा! इस बार की मुम्बई की विशेषता में सौभागचन्दभाई की विशेषता आयी। उन्होंने पूरी लाईन बदलकर उसमें ऐसा बोले, हों! आहाहा! और किसी को मुख से तो ऐसा कहा कि बारह अंग का सार इसमें भरा है। आहाहा! इसमें बारह अंग का सार है, बापू! स्त्री का शरीर और भाषा बहुत न हो, इसलिए उनकी कीमत नहीं करना, ऐसा नहीं है। और बहुत भाषा आती हो और हजारों लोगों में पचास हजार में बोलना आवे, इसलिए उसकी कीमत करना, ऐसी चीज़ यहाँ नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। **प्रश्न :—सोना तो चमकता है,...** तुम माता! दोनों इकट्ठे कैसे कहते हो? सोना और पत्थर दोनों इकट्ठे, ऐसा कैसे कहते हो? सोना चमकता है, इसलिए पत्थर और वे दोनों भिन्न ज्ञात होते हैं। परन्तु यह किसी प्रकार भिन्न ज्ञात हो? आहाहा! क्या प्रश्न है? सोना और पत्थर को प्रभु, आप भिन्न कहते हो परन्तु सोना तो चलकता है और पत्थर तो चलकता नहीं। इसी प्रकार तो भिन्न ज्ञात होता है। इसमें भिन्न किस प्रकार आप कहते हो?

कहते हैं, **यह ज्ञान भी चमकता ही है न?** भाई! आहाहा! भगवान ज्ञान की चलक, वह सदा चलकती है। तेरी नजरें नहीं हैं। आहाहा! जैसे सोना चलकता है, उसी प्रकार पत्थर से भिन्न चलक से किया जा सकता है। उसे तुम यहाँ आत्मा में कैसे लगा देते हो? कहते हैं। कहते हैं, **यह ज्ञान भी चमकता ही है...** यह चैतन्य अन्दर चमकता चन्द्र, चमकता सूर्य है। आहाहा! भगवान चैतन्य अन्दर... यह लोगस्स में आता है। वहाँ एक बार कहा था। अपने दिगम्बर में लोगस्स में आता है। परन्तु अभी वह प्रथा नहीं करते और श्वेताम्बर में वह लोगस्स की प्रथा है। लोगस्स... उसमें आता है न उसमें?

'चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहियं पयासयरा, सागरवरगंभीरा,...' आहाहा! यह 'चंदेसु निम्मलयरा,...' चन्द्र के निर्मलपने से भी प्रभु की निर्मलता अरूपी चलक भिन्न है। चन्द्र की चलक निर्मल और इसकी चलक कोई निर्मल भिन्न है। 'आईच्चेसु अहियं' आदित्य अर्थात् सूर्य। 'आईच्चेसु अहियं पयासयरा,...' आदित्य के-सूर्य के प्रकाश से प्रभु! तेरा चैतन्य प्रकाश अन्दर झलकता है परन्तु तेरी नजरें वहाँ नहीं हैं। आहाहा! आठ बजे हों, एक कमरे में मनुष्य, एक दरवाजा हो और सो रहा हो और आँख बन्द करके आँख का कीचड़ लगा हुआ। उसे आठ बजे कोई मनुष्य कहे, ऐ उठ, सोना का नलिया हुआ (सूर्योदय हुआ)। ऐसा अपने कहते हैं। सोना का नलिया अर्थात्? वे नलिया उज्ज्वल हुए, सूर्य उगे न? उजले हुए। नहीं? अपने कहावत है। परन्तु कमरा बन्द और आँखें बन्द में आँख का कीचड़ लगा हुआ। उसे नलिया दिखे किस प्रकार? उसे सूर्य का प्रकाश दिखे किस प्रकार? भले वह कहे कि नलिया उजला हुआ देख स्वर्ण का। स्वर्ण का अर्थात् उजला हुआ। अब तो उठ।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरे अन्दर चन्द्र चलकता है अन्दर। आहाहा! परन्तु तुझे

मिथ्यात्व के पर्त लगे हैं। आहाहा! आँख का कीचड़ लगा हुआ। आँख तो बन्द है और उसमें आँख का कीचड़ लगा हुआ।—तुझे मिथ्याश्रद्धा का जोर हुआ है। आहाहा! उसके कारण यह चैतन्य की चमकार अन्दर पड़ी होने पर भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! है?

ज्ञान भी चमकता ही है न? विभावभाव नहीं चमकते... यह क्या कहते हैं? देखा! जैसे पत्थर चलकता नहीं, उसी प्रकार यह दया, दान, पुण्य-पाप के भाव चलकते नहीं। आहाहा! थोड़े में थोड़ा लिखा बहुत करके जानना। ऐसी यह बात है। आहाहा! विवाह होवे, तब बुलाते हैं न? पुत्री और दामाद को बुलाना हो और दामाद जरा कड़क-कठोर हो, तो झट नहीं आता, ऐसा होवे तो उसे लिखते हैं। दामाद-दामाद ऐसा होवे न? दो-चार-पाँच उसमें कोई कठोर हो, तो उसे कहते हैं भाई! हमारे अवसर है और पुत्री को लेकर पहले आना तो इस मण्डप की शोभा बढ़ेगी। लिखते हैं। परन्तु वह कठोर-कड़क होवे तो मानता नहीं। तुम्हारे आने से शोभा है, ऐसा लिखे। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, प्रभु! विभाव के पत्थर जो चलकते नहीं। वहाँ से यहाँ जा तो उसमें तेरी शोभा है। उस मण्डप में जा। मण्डप में अन्दर आ। आहाहा! है?

विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है— उस विभाव को भी विभाव है—ऐसा किस भूमिका में, किस सत्ता में ज्ञात हुआ? यह शुभराग है, वह किस सत्ता में ज्ञात हुआ? इस शुभराग के अस्तित्व में शुभराग ज्ञात हुआ? या शुभराग शुद्धता के ज्ञान के चमक में ज्ञात हुआ कि यह शुभराग है? अरे! मैं मुझे नहीं समझता, ऐसा जो तूने कहा, प्रभु कहते हैं मैं मुझे नहीं समझता—यह किस भूमिका में तुमने यह जाना? मैं मुझे नहीं समझता, यह किसमें जाना? यह तूने जाना, वह तू आत्मा है। आहाहा! मैं मुझे नहीं दिखता, इसका अर्थ कि मैं दिखता नहीं, इसका निर्णय करनेवाला मैं हूँ। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

बापू! धर्म की बातें वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की बातें बहुत सूक्ष्म है। यह तो बहिन की भाषा सादी गुजराती में आया। भाई—सौभागभाई सवेरे ऐसा कहते थे। यहाँ आये न! सादी गुजराती भाषा में ऐसा!! आहाहा! लोगों को घर-घर में पहुँचे तो भव का अन्त लावे, ऐसी बात है। आहाहा! परन्तु अपनी महत्ता के समक्ष मान के मारे दूसरे की महिमा उसे दिखती नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—** प्रभु! यह विभाव है, यह पत्थर है, वह नहीं चलकते। अन्ध है-अचेतन है, अजीव है। उसे चलकता चैतन्य जानता है। उस चैतन्य की अस्ति की चमक में विभाव भिन्न है, ऐसा ज्ञात होता है। वह चैतन्य की चमक है। आहाहा! **विभावभाव नहीं चमकते किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—सर्वत्र ज्ञात होता है।** आहाहा! ऊर्ध्व स्वभाव लिया है न? श्रीमद् ने। समयसार नाटक के शब्द हैं। 'समता रमता ऊर्ध्वता ज्ञायकता सुखभास।' यह ऊर्ध्वता की व्याख्या श्रीमद् ने की है। अपनी-जाननेवाले की अस्ति न हो तो 'यह है'—ऐसा जाना किसने? जिसकी सत्ता की मौजूदगी पहले न हो तो यह राग है, यह शरीर है, यह देश है—यह जाना किसने? इसलिए सब जाननेवाले की चीज़ में जाननेवाला सामने है, ऊर्ध्व है। आहाहा! भरतभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! मेहनत करते हैं थोड़ी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **सर्वत्र ज्ञान ही चमकता है—** आहाहा! **ज्ञान की चमक चारों ओर फैल रही है।** आहाहा! चारों ओर जहाँ देखूँ वहाँ। वास्तव में तो उस शरीर को, राग को नहीं जानता। जाननेवाला जाननेवाले की पर्याय को जानता है। राग को नहीं जानता, शरीर को नहीं जानता, केवलज्ञानी की पर्याय लोकालोक को नहीं जानती। उसकी पर्याय को जानती है। आहाहा! यह चलकता आत्मा किसी भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के सम्बन्ध के संयोग में स्वयं ही अपने को ज्ञान के अन्दर चमकता है। आहाहा! परन्तु उस चमक की महिमा की महिमा इसे नहीं आती। क्योंकि नजरें बदली नहीं है। अन्दर में नजर जानी चाहिए, वह नजरें... परमात्मा त्रिलोकनाथ का पुकार है, वही यह वाणी है। आहाहा!

ज्ञान की चमक बिना सोने की चमक काहे में ज्ञात होगी? तू कहता है कि सोने की चमक है न? परन्तु वह चमक ज्ञान के बिना किसमें ज्ञात हो? सोने में चमक है, वह चमक, चमक को जानती है? वह तो अचेतन है। वह सोने की चमक सोने का ज्ञान जानता है। आहाहा! समझ में आया? पाव घण्टा है। यह हिन्दी-हिन्दी। पाव घण्टा।

जैसे सच्चे मोती और खोटे मोती इकट्ठे हों... मोती-मोती। सच्चे मोती और खोटे मोती एकसाथ हों। **तो मोती का पारखी...** मोती को परखनेवाला **उसमें से सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है,...** सच्चे मोती को अलग कर देता है, झूठे मोती को अलग कर देता

है। आहाहा! कौन? मोती का पारखी। सच्चा और खोटा मोती इकट्ठे होने पर भी, सच्चे मोती का पारखी ऐसा है कि सच्चे मोतियों को अलग कर देता है।

उसी प्रकार... वह तो दृष्टान्त हुआ। **आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'।** वह सच्चा मोती है प्रभु अन्दर। आहाहा! ज्ञान की प्रज्ञा द्वारा उसको ग्रहण करना। राग को छोड़ देना ज्ञान में से। आहाहा! **आत्मा को 'प्रज्ञा से ग्रहण करना'। जो जाननेवाला है, सो मैं;...** हूँ। अन्दर जाननेवाला जिसकी अस्तित्वता सत्ता, मौजूदगी जानने में मौजूदगी देखती है, वह मैं हूँ। मेरी सत्ता जो जानने की जो सत्ता है, वह मेरी सत्ता है। राग और पुण्य मेरी सत्ता नहीं। आहाहा! है?

इस प्रकार उपयोग सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। अन्तर में मति और श्रुतज्ञान का उपयोग पर ओर का झुकाववाला है, उस मति और श्रुतज्ञान को स्व-ओर झुकाव करना। आहाहा! झुकाव समझते हैं न? सनमुख करना। आहाहा! जो मति और (श्रुतज्ञान) परसन्मुख है... आहाहा! वह मतिज्ञान जिसकी पर्याय है, जिसकी वह पर्याय है, उसका पिता परमात्मा स्वयं है। आहाहा! **सूक्ष्म करके आत्मा को और विभाव को पृथक् किया जा सकता है। यह पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से ही होता है।** राग और आत्मा को पृथक् करने का कार्य प्रज्ञा से होता है, राग से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

राग जो है विकल्प शुभ, उससे वह पृथक् नहीं हो सकता। प्रज्ञा से ही। 'ही' कहा है। आहाहा! व्रत, तप, त्यागादि विकल्प भले हो। है? वह सब तो राग है। वह कोई चीज़ नहीं। व्रत, तप विकल्प है। पुण्य-पाप अधिकार में कहा न? व्रत, तप, शील, नियम वह सब पुण्यकार्य है। पुण्यकार्य है। जड़ कार्य है, चैतन्य नहीं। आहाहा! चैतन्य भगवान तो उससे बिल्कुल भिन्न है। भले हो रागादि वहाँ। **परन्तु वे साधन नहीं होते,...** आहाहा! व्रत और तप और बाह्य त्याग... लोगों की दृष्टि बाह्य त्याग पर है। प्रभु कहते हैं कि बाह्य त्याग और ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं। और ज्ञानी की दृष्टि मिथ्यात्व के त्याग पर (है), वह नास्ति से। मिथ्यात्व का त्याग, उस त्याग की तो लोगों को कीमत नहीं। बाहर का त्याग करके बैठे, नग्न होकर बैठे। कपड़े बदले यह थोड़ा खाया। पाँच रस ही खपता है और पाँच फलाना खपता है। उसमें क्या हित हुआ तेरा? समझ में आया?

व्रत, तप या त्यागादि भले हों,... वह विकल्प है। **परन्तु वे साधन नहीं होते,...** आहाहा! साधन कहने में आया है न? वह तो प्रज्ञा से भिन्न होकर साधन हुआ तो राग को व्यवहार साधन का उपचार किया। इसलिए जो है नहीं, उसको साधन कहने में आया। साधन है नहीं। आहाहा! बड़ा कठिन काम। व्रत, तप करे, वर्षीतप करे। एक दिन खाये, एक दिन आहार न करे। और बारह महीने के बाद वर्षीतप मनाये। गृहस्थाश्रम के प्रमाण में पाँच-पच्चीस हजार का खर्च करे। बड़े गृहस्थ हो तो लाखों रुपये खर्च करे।

मंगलभाई थे न? मंगल उजमशी। अहमदाबाद। वह तो करोड़पति थे। मंगलभाई की बहू ने जब वर्षीतप पारणा किया, तब पौने लाख का खर्च किया। ऐई.. चिमनभाई! वहाँ लेकर आये थे पालीताणा। पूरी रेल। उससे क्या हुआ? वह क्या चीज़ है? दुनिया जाने कि आहाहा! एक दिन खाया और एक दिन तपस्या करी। कहाँ गये हमारे बलुभाई! बलुभाई ने वर्षीतप किया था। बहुत साल पहले। पारणा में हम गये थे। लंघन है कहा, ये सब लंघन है। बड़ा था न, मुम्बई में बड़ा कारखाना ७० लाख का बड़ा। बाद में दे दिया न। ... आहाहा! वह तो लंघन है। प्रभु! वह तो अपवास है। अपवास अर्थात् अपने आत्मा से बुरी दशा में वास है-राग में।

उपवास तो इसको प्रभु कहें कि आनन्द का नाथ प्रभु ज्ञान सागर में उप अर्थात् समीप। राग से भिन्न होकर अपने आनन्द में रमे, उप अर्थात् समीप में रमे, वास करे, उसको तीन लोक के नाथ उपवास कहते हैं। बाकी सब तो अपवास। अप अर्थात् बुरा वास। दुर्गति में जाने की वह सब क्रिया है। आहाहा! कठिन बात है, बापू! बहिनें बहुत वर्षीतप करती हैं। फिर मनाये। पति कुछ पैसेवाला हो तो कुछ दो-चार-पाँच हजार का खर्च करे। फिर अट्ठम करे और फिर ढोंग करे कुछ। बहुत होवे तो सोंठ लगाये। अट्ठम किया तो कठिन पड़ा होगा। सब ढोंग है, सुन न।

यहाँ तो भले हो मुनि, समकिती को भी भले कदाचित् राग मन्द हो, परन्तु वह साधन नहीं। **साधन तो प्रज्ञा ही है।** आहाहा! साधन तो प्रज्ञा ही है। दूसरा कोई साधन है नहीं। आहाहा! **स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है।** धर्म की दृष्टिवन्त को स्वभाव की महिमा से अपना भगवान चैतन्य प्रभु की महिमा से

परपदार्थ के प्रति राग और पर में सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहाहा! रस उड़ जाता है। रस-सुखबुद्धि उड़ जाती है। भले राग आता है परन्तु उसमें सुखबुद्धि उड़ जाती है। क्योंकि राग है, वह दुःख है। चाहे तो अपवास और तप का विकल्प है, वह भी दुःख है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन लगे।

स्वभाव की महिमा से परपदार्थों के प्रति रसबुद्धि—सुखबुद्धि टूट जाती है। स्वभाव में ही रस आता है,... आहाहा! धर्मी जीव को, समकिती को स्वभाव आनन्द में रस आता है। उसका रस राग और परपदार्थ में रसबुद्धि उड़ जाती है। चाहे तो इन्द्र का इन्द्रासन हो, करोड़ों अप्सरायें हों। ये सब तो अनाज के पुतले हैं, स्त्रियाँ तो। दो दिन न खाये तो चेहरा ऐसे हो जाए। वह तो अनाज के बिना अमृत का झरना कण्ठ में झरे ऐसी इन्द्राणियाँ। उसके भोग भी समकिती को सड़े हुए कुत्ते जैसा लगे। आहाहा! कुत्ते और बिल्ली जैसे सड़े हुए हैं, वैसे इन्द्र के भोग... आहाहा! ऐसा लगे। रसबुद्धि उड़ जाती है। **स्वभाव में ही रस आता है, दूसरा सब नीरस लगता है। तभी अन्तर की सूक्ष्म सन्धि ज्ञात होती है।** तब अन्दर में सूक्ष्म ज्ञान, आनन्द का ख्याल और अनुभव आता है।

ऐसा नहीं होता कि पर में तीव्र रुचि हो... राग में रुचि हो, पर में सुखबुद्धि हो **और उपयोग अन्तर में प्रज्ञाछैनी का कार्य करे।** ऐसा कभी बनता नहीं। एक म्यान में दो तलवार रह सकती नहीं। पर में रस हो और आत्मा का अनुभव हो; और आत्मा का अनुभव है और राग का रस भी रहे ऐसा हो सकता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२१) चैत्र शुक्ल २, शनिवार, दिनांक २८-४-१९७९
वचनामृत - १९८, २००, प्रवचन-७७४ (DVD 17)

ज्ञातापने के अभ्यास से ज्ञातापना प्रगट होने पर कर्तापना छूटता है। विभाव अपना स्वभाव नहीं है इसलिए कहीं आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता, द्रव्य तो शुद्ध रहता है; मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ, रागादि मेरा स्वरूप हैं, मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ' इत्यादि भ्रमणा हो रही है। यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो तो कर्तापना छूटता है॥१९८॥

१९८। वचनामृत १९८। **ज्ञातापने के अभ्यास से...** आहाहा! कोई राग के अभ्यास से या निमित्त के अभ्यास से या भेद के अभ्यास से यह भगवान प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। इसलिए अस्ति से बात की है। नास्ति से नहीं कहकर अस्ति से की है। **ज्ञातापने के अभ्यास से...** आत्मा ज्ञाता है, दृष्टा है, ज्ञायकस्वभाव त्रिकाल है, उसके अभ्यास से। **ज्ञातापना प्रगट होने पर...** ज्ञातापने के अभ्यास से। अन्तर्मुख ज्ञातापने सन्मुख होने से, ज्ञातापना प्रगट होता है। अर्थात् वस्तु ज्ञाता है, उसका पर्याय में उसका अभ्यास करने से पर्याय में ज्ञातापना प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से या इससे या देव-गुरु-शास्त्र से या कृपा से आत्मा मिल जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक ज्ञातापने का त्रिकाली स्वभाव, उसका जो स्वसन्मुख का अभ्यास, वह उसकी पर्याय में ज्ञातादृष्टापना होने का कारण है। भाषा बहुत संक्षिप्त। आहाहा!

कर्तापना छूटता है। अर्थात् ज्ञातापने का त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसके सन्मुखपने से वर्तमान पर्याय में जाननेवाला-देखनेवाला हूँ, ऐसी पर्याय प्रगट होती है। इसलिए उस पर्याय में उसे राग का कर्तापना छूट जाता है। व्यवहाररत्नत्रय का जो राग, उससे आत्मा को कुछ लाभ होता है, यह तो मिथ्यादर्शन और मिथ्याशल्य है। आहाहा! परन्तु ऐसे

ज्ञातापने के अस्तित्व की पूर्णता के स्वसन्मुख के अभ्यास से उसकी पर्याय में, जैसा ज्ञातापना शक्तिरूप से-स्वभावरूप से-सहजभाव से अस्तिरूप है, वैसा ही उसकी पर्याय में ज्ञातापना -दृष्टापना सहजरूप से प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी बात है। इसलिए ज्ञातापना—जाननेवाला-देखनेवाला मैं हूँ। आहाहा!

यद्यपि जानने-देखनेवाली पर्याय जो है, वह भी ज्ञातापने के दृष्टि के जोर के कारण ज्ञातापना पर्याय में उपजता है, वह उपजने के योग्य है, उसे उपजाता हूँ-ज्ञान को उपजाता हूँ, ऐसा भी जहाँ नहीं है। आहाहा! उपजता है। आहाहा! भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु ध्रुव, उसका ध्येय ध्यान में आने पर, ध्येय को ध्यान में लेने से जो ध्येय है, वैसी पर्याय वर्तमान प्रगट में प्रगट होती है। उसका कर्तापना छूटता है। उसकी व्याख्या बहुत लम्बी। पर का कर्तापना तो छूटता है। व्यवहाररत्नत्रय के राग का कर्तापना तो छूटता, परन्तु यह पर्याय करूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि भी छूटती है क्योंकि इसमें भाव नाम का एक शुद्ध गुण है। आहाहा! उस गुण के कारण अनन्त गुण में उसका रूप है, इसलिए वह पर्याय ज्ञाता के ऊपर दृष्टि देने से उसका स्वीकार और सत्कार होने पर, पर्याय में प्रत्येक गुण की पर्याय उत्पन्न होती है। उसे उत्पन्न करूँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

विभाव अपना स्वभाव नहीं है... चाहे तो दया, दान आदि शुभराग, वह चैतन्य का निज स्वभाव नहीं है। अर्थात् कि वह विभावभाव स्वभाव में नहीं है। है ? **विभाव अपना स्वभाव नहीं है, इसलिए कहीं आत्मद्रव्य...** जरा सूक्ष्म कहते हैं। **विभाव अपना स्वभाव नहीं है, इसलिए...** इसलिए, इस कारण से। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो शुभविकल्प है, वह भी अपना स्वभाव नहीं है इसलिए, स्वभाव नहीं है, इस कारण से **आत्मद्रव्य स्वयं उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता,...** आहाहा! जरा सूक्ष्म बात की है। आत्मद्रव्य का विभाव, स्वभाव नहीं होने से स्वयं आत्मद्रव्य कहीं स्वयं उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता। क्योंकि उस आत्मद्रव्य का विभाव, स्वभाव नहीं है; इसलिए आत्मद्रव्य उछलकर विभाव में परिणमे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। यह भाषा तो अनुभव में से सहज आयी है, निकल गयी है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव भगवान, उसमें विभाव का स्वभाव नहीं है; इसलिए वह द्रव्यस्वभाव उछलकर विभावरूप परिणमे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा!

द्रव्य तो शुद्ध रहता है;... है ? **विभाव में एकमेक नहीं हो जाता,...** विभाव होता है परन्तु द्रव्य उछलकर विभाव के साथ एकमेक होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! बात तो यह सिद्ध की है कि वस्तु भगवान आत्मा आनन्द, ज्ञान, दर्शन, स्वच्छता और प्रभुता तथा उसमें एक ऐसा गुण है कि अकार्यकारण नाम का उसमें एक गुण है। अकार्यकारण नाम का प्रभु में गुण है। प्रत्येक आत्मा में जैसे ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, स्वच्छता गुण है, प्रभुता गुण है—ऐसे अनन्त गुण हैं, उनमें का एक अकार्यकारण नाम का गुण है कि जिससे स्वभावभाव विभाव का कारण हो और विभाव का कार्य हो, ऐसा उसमें नहीं है। आहाहा!

फिर से। भगवान आत्मा में ऐसा एक गुण भगवान ने कहा और भगवान में है। भगवान अर्थात् आत्मा। अकार्यकारण नाम का एक गुण है। सैंतालीस शक्तियाँ हैं न ? उनमें चौदहवाँ गुण है। चौदहवाँ। अर्थात् क्या ? कि वह विकार को करे, ऐसा उसमें गुण नहीं है। विकार का कारण हो और विकार कार्य हो, ऐसा उसमें गुण नहीं है। तथा विकार कारण हो और स्वभाव की पर्याय कार्य हो, ऐसा कोई गुण नहीं है। आहाहा! क्या कहा ? फिर से।

यह तो गहन बातें हैं, बापू! आहाहा! अनुभवियों की अनुभव वाणी अलौकिक होती है। उसे समझने के लिये तो कितनी तैयारी मध्यस्थ से चाहिए। आहाहा! अकेले इस शास्त्र पठन से भी वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि उस आत्मस्वभाव में एक अकार्यकारण नाम का स्वभाव है, जिससे वह द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव दया, दान, व्रत के शुभभाव को कारण हो, ऐसा उसमें गुण नहीं है। तथा वह शुभभाव का कार्य करे अथवा शुभभाव से स्वभाव की पर्याय का कार्य हो और शुभभाव कारण हो, ऐसा गुण नहीं है। यशपालजी! समझ में आया ?

भगवान आत्मा में ज्ञाता-दृष्टा जैसे स्वभाव है, वैसा आनन्द अतीन्द्रिय स्वभाव है, ऐसा ही एक अकार्यकारण नाम का स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव है कि जिस स्वभाव के कारण यह दया, दान आदि शुभभाव का स्वभाव कारण हो, ऐसा गुण नहीं है। तथा विभाव का कार्य... विभाव कारण हो, शुभभाव कारण हो और ज्ञाता-दृष्टापने की पर्याय कार्य हो, ऐसा गुण नहीं है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, द्रव्य उछलकर... द्रव्य में एक

अकार्यकारण नाम का गुण है। इसलिए वह द्रव्य उछलकर। उछलकर। उछले कहाँ से? उसमें वहाँ स्वभाव ही नहीं है। समझ में आया? प्रियकंरजी!

द्रव्य का स्वभाव ही अकार्यकारण नाम का त्रिकाली गुण है। उस गुण का धारक गुणी ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। वह अकार्यकारणगुणस्वरूप ही है। आहाहा! जरा सूक्ष्म है। यह अकार्यकारण नाम का, जैसे आनन्द अतीन्द्रिय गुण है, जैसे अतीन्द्रिय ज्ञानगुण है, उसी प्रकार अकार्यकारण नाम का अतीन्द्रिय अनादि-अनन्त आत्मा में गुण और स्वभाव है। इसलिए उस गुण का स्वभाव उछलकर अकार्यकारण है, इसलिए विभाव का कार्य करे, ऐसा नहीं है। और विभाव के कारण से उसमें कुछ कार्य हो, ऐसा वह आत्मा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बाहर की बातें तो बहुत करते हैं, व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, अमुक से होता है, ऐसा शुभभाव होवे तो अन्दर आत्मा को ज्ञान हो और शान्ति हो। आहाहा!

भगवान! जिसके स्वभाव में ही अकार्यकारण नाम की शक्ति ठसाठस भरी है। जैसे अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है, उसी प्रकार अकार्यकारण नाम का एक ध्रुव... ध्रुव, नित्य, अचल सहज स्वभाव भगवान आत्मा का स्वयंसिद्ध स्वभाव है; इसलिए वह द्रव्यस्वभाव दया, दान और व्रत के विकल्प को करे, उछलकर उनका कार्य करे, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और वह शुभभाव चाहे जैसा शुभभाव, तीर्थंकरगोत्र बाँधने का शुभभाव, वह भाव आत्मा के शुद्धस्वरूप की पर्याय का कार्य करे, ऐसा उसमें गुण नहीं है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन। जगत कुछ न कुछ अपनी कल्पना से अर्थ करता है। तीन लोक के नाथ के रहस्य के भाव को बदलकर अपनी कल्पना से अर्थ करता है।

यहाँ तो बहिन तो अपने अनुभव से यह बात करती हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में रहते हुए, भूमिका में रहते हुए ऐसा एक विकल्प आया। आहाहा! उसमें ऐसा कहा गया, प्रभु! तेरी प्रभुता तो पर के कारण से कार्य हो और तेरे कारण से विभाव हो, यह तेरी प्रभुता नहीं है। समझ में आया? वह चाहे जितने भगवान का स्मरण करे और भगवान णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... लाख बार, करोड़ बार, अनन्त बार करे तो वह राग का कारण होता है और तुझमें निर्मलता कार्य होता है, प्रभु! ऐसा तीन काल में

नहीं है। वह इसके गुण में नहीं है। गुण में नहीं तो पर्याय में आवे कहाँ से ? जिसके गुण में ही अकार्यकारण नाम का स्वभाव; विभाव का कारण न हो और विभाव से कार्य स्वभाव न हो तो उसकी पर्याय में विभाव के कारण से हो, ऐसा आवे कहाँ से ? आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! अभी तो चलता है भगवान के नाम से, आगम के नाम से कुछ का कुछ... विपरीत मान्यता में करते हैं। आहाहा! बहिन से तो यह साधारण बहिनों में बोला गया है। लिखा गया है। आहाहा!

वह **उछलकर विभाव में एकमेक नहीं हो जाता,...** विभाव भले हो परन्तु उसका तो ज्ञातापना रहना, वह उसका स्वभाव होकर अकार्यकारणरूप से विभाव के कार्यकारणरूप न होना, उस रूप रहता है। आहाहा! विभाव होने पर भी उसे परज्ञेयरूप से जानने के कार्यरूप होता हुआ उसके-विभाव के कारण से कार्य नहीं होता, विभाव को जानने के कार्यरूप होता हुआ और विभाव के जानने के कार्य से विभाव हो, ऐसा नहीं होता हुआ... आहाहा! सूक्ष्म पड़े, प्रभु! तेरी बात बड़ी है, बापू! भगवान! तू बड़ा है, भाई! तेरे माहात्म्य की क्या बात करना! सन्त वीतरागी तीन कषाय के अभाववाले, परमेश्वर पद में जो पाँच में सम्मिलित, उस परमेश्वर पद में रहे हुए, जीव को भगवानरूप से बुलाते हैं। प्रभु! आहाहा!

प्रभु! तू भगवान है, भाई! उस भगवान में अकार्यकारण नाम की जो भग अर्थात् लक्ष्मी। आहाहा! उसका वान, वह तेरा रूप है। अकार्यकारण नाम का जो गुण है, वह भग अर्थात् लक्ष्मी है, वह तेरा स्वरूप और रूप है। उससे तू राग, व्यवहार, दया, दान के राग को उत्पन्न करे और उस राग के कारण निर्मल पर्याय हो, प्रभु! ऐसा कोई तीन काल में आत्मा में गुण नहीं है। आहाहा! क्या आगम को तोड़-मरोड़कर अर्थ करना। धीरुभाई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! यह तो रात्रि में जरा बहिनों में बोला गया। बाहर आया। नहीं तो कहीं बाहर आता भी नहीं। आहाहा!

विभाव में एकमेक हो... अर्थात् कि भिन्न रहता है। परन्तु उसका ज्ञाता होता है, उसका कारण होता है और उससे कार्य नहीं हो, इस प्रकार एकमेक होकर वह नहीं रहता। आहाहा! **द्रव्य तो शुद्ध रहता है;...** वस्तु तो शुद्ध सच्चिदानन्द मूर्ति भगवानस्वरूप, अरे! भगवान परमात्मस्वरूप न होवे तो पर्याय में परमात्मपना प्रगट कहाँ से आयेगा ? कहीं बाहर से आता है ? अरे! पूर्व की पर्याय में से भी परमात्मपना नहीं आता। क्या कहा ?

मोक्ष का निश्चयमोक्षमार्ग है, उससे केवलज्ञान और परमात्मदशा नहीं आती। आहाहा! वह परमात्मदशा परमात्मशक्ति का स्वभाव तुझमें अकार्यकारण आदि अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें से है प्रवाह, कुँए में है, वह हौज में आता है; उसी प्रकार अन्दर है, वह पर्याय में (आता है)। पूर्व की पर्याय के कारण मोक्ष होता है, ऐसा भी उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयमोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, यह भी व्यवहार का कथन है। व्यवहार से तो होता नहीं परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, यह भी व्यवहार कथन है। क्योंकि मोक्षपर्याय है जब उत्पाद, वह तो त्रिकाली स्वभाव में से वह आता है। पूर्व पर्याय का तो व्यय होता है। व्यय में से उत्पाद हो, मोक्षमार्ग की पर्याय का तो व्यय होता है, तब मोक्ष होता है। तो अभाव में से भाव होगा? तब भाव में से भाव होता है। यह अन्दर में भाव भरपूर है, प्रभु! परन्तु तुझे माहात्म्य आना मुश्किल है। आहाहा!

यह मोक्ष की पर्याय सिद्ध की या केवलज्ञान की या अनन्त आनन्द की, वह पर्याय सब द्रव्य में स्वभावरूप है। उसमें एकाग्र होने पर वह उसमें से आती है। पूर्व की पर्याय से भी वह केवलज्ञान नहीं है। आहाहा! व्यवहार कथन आवे, तब तो ऐसा आवे कि द्रव्य, पूर्व की पर्याय से युक्त द्रव्य, वह कारण है और उत्तर की पर्यायरूप वह द्रव्य, वह कार्य है। भाषा ऐसी आती है। स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा। भाई ने (जैन) तत्त्वमीमांसा में बहुत डाला है। छोटी (पुस्तक) में डाला है और बड़ी में डाला है। बहुत कथन तो उपादान-उपादेय का शास्त्र में ऐसा आता है। पूर्वपर्याय युक्त द्रव्य, वह कारण और बाद की पर्याय— उत्तर पर्याय युक्त द्रव्य, कार्य, ऐसा आता है। परन्तु वह तो एक सद्भूतव्यवहारनय का कथन है।

यहाँ तो कहते हैं कि वर्तमान जो कार्य होता है, वह द्रव्य के कारण में से स्वभाव नहीं है उसका दूसरा विभाव होने का। अरे! अपूर्ण रहने का स्वभाव नहीं है। उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है, वह भी पूर्ण भरपूर है। इसलिए स्वतन्त्रता से शोभायमान जिसका प्रताप अखण्ड है, ऐसी पर्याय उसके द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होती है। पूर्व की पर्याय से मोक्ष होता है, यह व्यवहार कहने में आता है। तो फिर राग से-व्यवहार से मोक्ष होता है, यह बात तो बहुत भ्रमणा में जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं। **द्रव्य तो शुद्ध रहता है; मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण...** मात्र इसकी मान्यता भ्रम है। इस प्रभु में अनन्त ऐसे गुण हैं और ऐसा वह मैं हूँ, ऐसे अस्तित्व की मौजूदगी की प्रतीति के अभाव में अनादिकाल की मान्यता के कारण पर ऐसे जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ। आहाहा! मैं शरीर को चलता हूँ, मैं वाणी को बोलता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, पर की हिंसा कर सकता हूँ, इन जड़ पदार्थों को मैं करूँ, यह मान्यता अनादि की अज्ञान के कारण है। आहाहा! पर में तुझसे कार्य हो, ऐसा कोई गुण नहीं न! राग कार्य हो, ऐसा गुण नहीं तो पर का कार्य हो, यह बात कहाँ रही? आहाहा! गजब काम, भाई!

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नव तत्त्व की श्रद्धा... बन्ध अधिकार में तो ऐसा कहा है कि जो श्रद्धा व्यवहार है, वह नव तत्त्व है। श्रद्धा है, वह नव तत्त्व है—ऐसा कहा है। नव तत्त्व के लक्ष्य से है, इसलिए नव तत्त्व है। वह श्रद्धा आत्मतत्त्व नहीं है। आहाहा! बन्ध अधिकार में कहा है। और चारित्र में जो छह काय की दया पालता है, भाव, वैसा शुभभाव-व्यवहार आता है, उसे छह काय की दया (को) छह काय कहते हैं। यहाँ शुभभाव को छह काय कहते हैं क्योंकि उसके लक्ष्य से होता है; इसलिए शुभभाव को छह काय कहते हैं। और शास्त्र के ज्ञान में विकल्प उठते हैं, उसे शब्दज्ञान कहते हैं। आहाहा! बन्ध अधिकार है। है? शब्दज्ञान। आहाहा! शब्दज्ञान। यह तो इसका अर्थ यह कि शब्द के निमित्त से हुआ ज्ञान, इसलिए वह शब्दज्ञान है। छह काय की दया के लक्ष्य से शुभभाव हुआ, इसलिए वह शुभभाव, वही छह कायरूप है। छह कायरूप है, तुझरूप नहीं है। आहाहा!

वास्तव में छह काय, वह जीव का स्वरूप नहीं है। छह काय, वह जीव का स्वरूप नहीं है। पंचास्तिकाय (में) पाठ है। ज्ञानस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा, वह तेरा स्वरूप है। छह काय है, वह तेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त तथा मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देव... आहाहा! वह जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में शब्द है। छह काय, वह जीव नहीं है। जीव तो अन्दर ज्ञानस्वरूप का नाथ अनन्त गुण का भण्डार, उसे हम आत्मा और जीव कहते हैं। वह आत्मा जड़पदार्थ को मैं करूँ, यह मान्यता अनादि की मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! शरीर को हिला सकूँ,

प्रेरणा होवे तो शरीर चले, आत्मा की इच्छा की प्रेरणा होवे तो शरीर चले, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की अनादि की है। आहाहा!

यह लिखते हैं न लेख? शब्द कलम। वह कलम भी अक्षर को स्पर्श नहीं करती। कलम से अक्षर हुए नहीं और इच्छा से अक्षर हुए नहीं, इच्छा से कलम चली नहीं, कलम कलम के कारण से गति करती है। अक्षर के परमाणु उनके कारण से वहाँ स्वरूप से परिणमते हैं। आहाहा! उसका कर्ता भगवान अकार्यकारण नामक स्वभाव के कारण कर्ता है नहीं। उसका कर्ता भी अनादि काल की मान्यता के कारण मैं करता हूँ—ऐसा मानता है। है पहला?

जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ,... मैं लिखता हूँ, ऐसे अक्षर बराबर कलम से और ऐसे गायन जोर देता हूँ। आहाहा! उस जड़ का कर्ता मिथ्यादृष्टि होता है। कठिन काम। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं करता, वहाँ एक-दूसरे को करे, प्रभु! यह मान्यता तो मिथ्यादृष्टि का भ्रम है। आहाहा! उसका स्वभाव जो ज्ञाता-दृष्टा है, उससे विरुद्ध यह मान्यता तो है अर्थात् तत्त्वज्ञान से विरुद्ध, आगम से विरुद्ध—भगवान के वचन से यह विरुद्ध है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **मात्र अनादिकालीन मान्यता के कारण 'पर ऐसे जड़ पदार्थ को मैं करता हूँ,...** एक बात। **रागादि मेरा स्वरूप हैं,...** दया पालने का भाव, व्रत का भाव, अरे..! शुभ बोलने का भाव, वह मेरा है—ऐसी मान्यता अनादि की मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! **रागादि मेरा स्वरूप हैं,...** अर्थात् मैं जिस प्रकार से दूसरे को समझाना चाहता हूँ, वह राग मेरा स्वरूप है। आहाहा! समझाने के काल में राग और वाणी दोनों अत्यन्त भिन्न हैं, उनका आत्मा कर्ता और भोक्ता बिल्कुल नहीं है। आहाहा! दो।

मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ... तीसरी बात। विस्तार किया। **रागादि मेरा स्वरूप हैं, मैं सचमुच विभाव का कर्ता हूँ...** आहाहा! वास्तव में, ऐसा कहा, हों! पर्याय में होता है, वह इसकी पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण (होता है) परन्तु स्वभाव की दृष्टि से उसे कहें तो विभाव का वास्तव में मैं कर्ता हूँ, यह मान्यता अत्यन्त असत्य के सेवन के माननेवाले की है। झूठा जिसका सेवन है। आहाहा! जिसे सत्य प्रभु का सेवन आया नहीं। ज्ञाता-दृष्टा

सेवनयोग्य है और आदरणीय है, यह बात जिसे बैठी नहीं है, वह सब विभाव का वास्तव में कर्ता हूँ, ऐसा मानता है। आहाहा!

परमात्मप्रकाश में तो ऐसा कहा है कि आत्मा तो पंगु है। कर्म उसे ले जाते हैं और कर्म उसे दूसरी गति में ले जाते हैं, ऐसी बात है। परमात्मप्रकाश। है तो अपनी पर्याय परन्तु वह पर्याय विभाव की है, वह उसके समय में हुई है, उसके कारण उस गति में ऐसे जाता है। कर्म के कारण नहीं। तथापि यहाँ तो कहते हैं कि वह विभाव से जाता है, यह भी उसके स्वभाव का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

विभाव का कर्ता हूँ' इत्यादि भ्रमणा हो रही है। इत्यादि भ्रमणा अनादि की अज्ञानी में शास्त्र के पढ़नेवाले ग्यारह अंग पढ़े। एक-एक अंग में अठाराह हजार पद और एक-एक पद में ५१ करोड़ अधिक श्लोक। इतना जानपना किया परन्तु भ्रमणा गयी नहीं। आहाहा! भ्रमणा में रुककर यह सब ज्ञान मेरा ज्ञान है, वह तो सब शब्दज्ञान है। शब्दज्ञान है। शब्द से हुआ ज्ञान निमित्त से। उसे शब्दज्ञान कहकर, वह आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, अनादि की भ्रमणा हो रही है। **यथार्थ ज्ञातृत्वधारा प्रगट हो...** यथार्थ जाननेवाला-देखनेवाला पृथक् है, वैसा पृथक् ज्ञात हो। पृथक् है, वैसा पृथक् अनुभव में आवे। आहाहा! **तो कर्तापना छूटता है।** नहीं तो कर्तापना मान्यता शब्द शास्त्र पढ़ा हो इससे कर्तापना छूटे, ऐसा नहीं है। १९८ (पूरा हुआ)। १९९।

मुमुक्षु : २००

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठीक २००-२००। २०० है न इसमें।

शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ; समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्ग से यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्ग से मुनिपना और केवलज्ञान

होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णता के लक्ष्य से प्रारम्भ हुआ; इसी मार्ग से देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवलज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखने से पूरे माल का पता चल जाता है। दूज के चन्द्र की कला द्वारा पूरे चन्द्र का ख्याल आ जाता है। गुड़ की एक डली में पूरी गुड़ की पारी का पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्त में) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिए सम्यक्त्व में चौदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये। इसी मार्ग से केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिए शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्मा की अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है॥२००॥

२००। **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति...** क्या कहा? (समयसार की) १४वीं-१५वीं गाथा। जो इस आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, असंयुक्त, अन्य-अन्य रहित... आहाहा! अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियतं और पर्याय की अनेकता की पर्यायरहित ऐसा जो आत्मा, जिसे जानने में आवे, उसे यहाँ शुद्धनय की अनुभूति कहते हैं। वह **शुद्धनय की अनुभूति अर्थात् शुद्धनय के विषयभूत...** दो भिन्न किये हैं।

(समयसार) ११वीं गाथा में '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' त्रिकाल वस्तु है शुद्ध चिदानन्द, उसे ही हम शुद्धनय कहते हैं। ऐसा पहले अभेद सिद्ध करके तीसरे बोल में फिर ऐसा कहा कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' वहाँ भेद डाला। ११वीं गाथा। '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्यायमात्र गौण करके असत्य अर्थात् 'नहीं' ऐसा कहा है। वेदान्त कहता है कि पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' व्यवहार अर्थात् पर्याय। पर्याय, वह झूठी है। पर्याय असत्य है। यह तो ठीक। परन्तु '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' शुद्धनय को हम त्रिकाली चीज़ को शुद्धनय कहते हैं। नय और नय का विषय, ऐसा भेद न डालकर भूतार्थ जो त्रिकाल वस्तु है, उसे हम शुद्धनय कहते हैं। ऐसा दूसरे पद में कहकर फिर तीसरे पद में जरा भेद डाला। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यह प्रश्न भाई को बहुत चला था। सोगानी को। '**भूदत्थमस्सिदो**' आश्रय यह क्या? इतनी पराधीनता क्या? बहुत विचार चले न। द्रव्यदृष्टि

प्रकाश में उन्होंने बहुत अच्छा लिखा है। बहुत इस शब्द में विचार (चले हैं)। वह वस्तु स्वतन्त्र है, उसमें '**मस्सिदो**' आश्रय और पर्याय को भूतार्थ का आश्रय! आता है न? उसमें रह गया था परन्तु पश्चात् तो आ गया। आश्रय करता है, वह भी स्वतन्त्ररूप से करता है। निर्मल पर्याय स्वतन्त्ररूप से कर्ता होकर आश्रय करती है। पराधीन नहीं है। पर्याय पराधीन नहीं है।

यहाँ कहते हैं, **अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्मा की अनुभूति...** अर्थात् कि यह आत्मा जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसका अनुभव। व्यवहाररत्नत्रय का नहीं, संयुक्त अर्थात् राग का नहीं, दु:ख का नहीं। अकेले प्रभु का आनन्द का अनुभव। आहाहा! **सो सम्पूर्ण जिनशासन की अनुभूति है।** है न उसमें? '**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' १५वीं गाथा। उसका अर्थ अभी दूसरा करते हैं। '**अपदेससंतमज्झं**' इसका अर्थ और एक व्यक्ति ऐसा करता है कि '**अपदेस**' जिसमें प्रदेश नहीं अखण्ड। ऐसा अर्थ है नहीं। '**अपदेस**' अर्थात् कथन है। जयसेनाचार्य की टीका में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। उसे उड़ा देते हैं। '**अपदेस**' अर्थात् कि अखण्ड। और श्रुत परिचित अनुभूता अर्थात् श्रुत अर्थात् ज्ञान और परिचित अर्थात् दर्शन और अनुभूति अर्थात् चारित्र-ऐसा लेते हैं। अरे! ऐसा है नहीं, प्रभु! समयसार प्रकाशित किया है न, विद्यानन्दजी की ओर से। उसमें यह सब बलभद्र के कथन हैं। सब झूठे हैं। आहाहा! क्या हो?

यहाँ कहते हैं, **अनुभूति...** आहाहा! वह जिनशासन की अनुभूति है। अकेला चिदानन्द आत्मा, जिसका लक्ष्य पर्याय का भी नहीं, त्रिकाली भगवान का लक्ष्य करने से जो आनन्द का अनुभव आवे, उसे जैनशासन में '**अपदेस**' अर्थात् कथन वह है। '**अपदेस**' का अर्थ द्रव्यश्रुत में भी ऐसा है और भावश्रुत वह है। अनुभूति वह भावश्रुत है। '**अपदेससंतम**' '**अपदेस**' अर्थात् कथन द्रव्यश्रुत में भी यह है। यह बात अमृतचन्द्राचार्य ने नहीं डाली, इसलिए आलोचना की है कि '**अपदेस**' का अर्थ उन्हें बराबर समझ में नहीं आया इसलिए... अरे! प्रभु नहीं समझ में आया? '**अपदेस**' शब्द कहा, उसमें ही द्रव्यसूत्र आ गया। अर्थात् द्रव्यसूत्र को भिन्न करने की आवश्यकता नहीं। भाव का अर्थ किया। द्रव्यसूत्र में... क्या कहना है उसमें? कि जितने चार अनुयोग हैं, भगवान की वाणी में '**अपदेस**' अर्थात् कथन। '**अपदेस**' अर्थात् द्रव्यसूत्र। द्रव्यसूत्र में भी अनुभूति का विषय कहा है। भाषा देखो!

जैन वीतराग के जितने शास्त्र हैं, उनमें आत्मा को अबद्धस्पृष्ट है, उसका वर्णन किया है। '**अपदेस**' अर्थात् कथन। जयसेनाचार्य की टीका में है। अब यह आचार्य का अर्थ बदलकर '**अपदेस**' का अर्थ अखण्ड करना। आहाहा! नया अर्थ खड़ा करना, ऐसा करके हम कुछ नया जानते हैं। बापू! आचार्यों-दिगम्बर सन्तों ने जो टीकाएँ की हैं, वे तीन काल में बदलें, ऐसी नहीं हैं। आहाहा!

यह '**अपदेस**' अर्थात् कि आत्मा अबद्ध है, अस्पृष्ट है—ऐसा द्रव्यसूत्र में भी कहा है। आहाहा! अर्थात् वीतराग की वाणी में अखण्ड आत्मा है, अबद्ध (है), ऐसा कहा है। इसलिए फिर द्रव्यसूत्र की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। भाव की व्याख्या की है। द्रव्य तो आ गया। '**अपदेससंतम**' अर्थात् भावश्रुत जो है ज्ञान, वह अबद्धस्पृष्ट को देखता है। यह ज्ञान, वह अनुभूति है। वह अनुभूति, वह जैनशासन है। बीच में राग-व्यवहार आता है, वह जैनशासन नहीं है। आहाहा! '**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' जो कोई भगवान आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अनुभव करता है, वह उसके शास्त्र में परमागम में भी यह कहा है और भावश्रुत के अनुभव में भी यह आता है। इसलिए दोनों आ गये—द्रव्यसूत्र और भावश्रुत। आहाहा! यह यहाँ कहा। है? इसमें २०० की बात है न?

जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। आहाहा! वस्तु अखण्ड अभेद, अबद्ध है, उसमें अनुभव होने पर अबद्ध को कहना, उसमें ही आया कि व्यवहार बद्ध है, उसका निषेध हो गया। उसमें सब आ गया। अबद्ध को क्यों कहना पड़ा? कि बद्ध है, इसलिए अबद्ध को कहा। अबद्ध का अनुभव होने पर बद्ध था, पर्याय में व्यवहार में यह बात ख्याल में आ गयी परन्तु आदर में यह रहा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा कठिन पड़े - ऐसा है। यह सब व्याख्यान तुम्हारे बाहर प्रसिद्ध करने हैं। आहाहा!

जिनशासन की अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। अर्थात्? जिसने एक को जाना, उसने सर्व को जाना। प्रवचनसार की गाथा ४८-४९। जिसने भगवान एक को जाना तो एक को जहाँ जाना, उसे त्रिकाली पर्याय और गुणसहित जाना। त्रिकाली पर्यायसहित न जाना हो एक को तो जाना हो नहीं। इसलिए त्रिकाली पर्याय का धारक गुण और अनन्त गुण का धारक द्रव्य को जानते हुए पर्याय गुण और चौदह ब्रह्माण्ड का ज्ञान

उसमें आ गया। वह पर्याय पर को भी जाननेवाली है, ऐसा व्यवहार... आहाहा! यह व्यवहार, हों! परन्तु एक स्व का अनुभव करे, उसमें चौदह ब्रह्माण्ड का ज्ञान आ गया। समझ में आया?

एक बार तो ऐसा कहा था कि इस पर्याय में जो द्रव्य का ज्ञान होता है, पर्याय में जो द्रव्य का ज्ञान होता है, वह द्रव्य और गुण पर्याय में नहीं आते। उस पर्याय में लोकालोक का ज्ञान होता है, वह लोकालोक पर्याय में नहीं आते परन्तु वह एक ही पर्याय वीतरागी, एक ही पर्याय वीतरागी का अस्तित्व वह द्रव्य-गुण को भी बतलाता है और इसे बतलाता है। इस एक ही पर्याय की ताकत में इतनी ताकत है। वह पर्याय द्रव्य-गुण को स्पर्श नहीं करती। वह पर्याय चौदह ब्रह्माण्ड के दूसरे तत्त्व को स्पर्श नहीं करती, तथापि वह अनुभूति की पर्याय, एक ही पर्याय ... बस है। उसमें दूसरे सबका अभाव है। ऐसी बातें हैं। यह क्या कहा?

(संवत्) १९८५ के वर्ष में वीरजीभाई के साथ चर्चा होती थी। काठियावाड़ में दिगम्बर के अभ्यास की शुरुआत वीरजी वकील, जामनगर। दिगम्बर का अभ्यास दूसरे किसी को नहीं था। शुरुआत में उनका बहुत अभ्यास। उनके साथ एक बार चर्चा ८५ में हुई थी। नारणभाई की दीक्षा थी न ८५ में? तब (हुई थी)। वढवाण के बाहर है न वह यति का? वहाँ दीक्षा हुई थी न? तब रात्रि में बात हुई थी। कहा... आहाहा! एक आत्मा की ज्ञान की अनुभूति की पर्याय, उस पर्याय में द्रव्य-गुण भी ज्ञात हुए, पर्याय ने पर्याय को जाना, पर्याय ने छह द्रव्य के लोकालोक को भी जाना, एक ही पर्याय के लोकालोक और द्रव्य-गुण का सब अस्तित्व आ जाता है। ... वह अस्तित्व इसमें आ नहीं जाता, परन्तु उस अस्तित्व का ज्ञान और लोकालोक का ज्ञान एक समय की पर्याय में आ जाता है। इतनी तो उसकी एक गुण की एक पर्याय का सामर्थ्य है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! यह तो अन्दर से पहले से आता था। चर्चा बहुत सब करते थे। यह चर्चा ८५ में बड़ी चली थी।

८५ में तो एक दूसरी बड़ी चर्चा चली थी। मोहनलालजी के साथ। लींबड़ी संघाडा के स्थानकवासी। ऐसा कि अभव्य को मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान का आवरण नहीं होता। क्योंकि उसे मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान नहीं होता। सुनना! ८५ की बात है।

सुन्दर वोरा के उपाश्रय में। क्यों नहीं ? कहा कि उसे नहीं होता। अरे! प्रभु! ऐसा नहीं है, भाई! अभव्य को भी केवलज्ञान और आनन्द का स्वभाव खुल्ला ही है। उसे भी पाँच आवरण है। मुझे क्या कहना है, इसमें समझ में आता है ?

अभव्य को भी मति आवरण, श्रुत आवरण, अवधि आवरण, मन:पर्यय आवरण, केवलज्ञानावरण। उसे केवलज्ञानावरणीय है। वह ऐसा बताता है कि उसका स्वभाव केवलज्ञान है। 'सर्व जीव है सिद्ध सम।' सूक्ष्म बात है, भाई! उन्होंने 'मोहनमाला' बनायी थी, एक पुस्तक 'मोहनमाला'। ८० के वर्ष में मेरे पास आयी थी। ८० में। ८० में। तुम्हारे जन्म से पहले। पण्डितजी! जन्म के पहले की बात है। ८० के वर्ष। कितने वर्ष हुए। 'मोहनमाला' बनायी थी। मोहनलालजी लींबड़ी संघाडा के छोटे उपाश्रय में। वह फिर मुझे भेजी थी। मैंने पढ़ी। फिर मिले, तब कहा परन्तु यह तुमने क्या लिखा ? चर्चा चली। बड़े थे न, इसलिए जरा... और मेरी दीक्षा अभी छोटी तब। १५ वर्ष की। उनकी दीक्षा ४० या ५० वर्ष की। जरा बोले परन्तु मणिलालजी साथ में थे। (उन्होंने कहा) बोलो नहीं। कानजी महाराज के साथ बोलो नहीं, सामने नहीं बोलो। तुम्हारा नहीं मानेंगे, इनका मानेंगे, ऐसी इनकी छाप है।

मैंने कहा, परन्तु तुम अभव्य को पाँच आवरण का निषेध करते हो। तो अभव्य में केवलज्ञान और सिद्धपद का स्वभाव है, उसका निषेध हो जाता है। बात समझ में आयी इसमें ? अरे! सर्व जीव भगवानस्वरूप है। प्रभु! तुम्हें खबर नहीं। केवलज्ञान से भरपूर अभव्य का जीव है और इसलिए उसे केवलज्ञानावरणीय प्रकृति निमित्तरूप से है। आहाहा! अभव्य को पाँच आवरण हैं। अभव्य को... आहाहा! समय होने को आया तुम्हारा हिन्दी का।

क्या कहा समझ में आया ? कि अभव्य जीव है, उसको केवलज्ञान होता नहीं, मन:पर्ययज्ञान होता नहीं तो उसको दो आवरण है नहीं। बड़ी चर्चा चली। कहा, बिल्कुल झूठी बात है। आपने लिखी है मोहनमाला में झूठी बात है। परन्तु उसकी बड़ी दीक्षा ५०-६० साल की दीक्षा इसलिए थोड़ा... मणिलालजी साथ में थे उसने कहा—कानजीस्वामी के सामने नहीं बोलना। बोलना नहीं। बात अगर बाहर गयी तो आपकी नहीं मानेंगे, उनकी मानेंगे। हमारी पहले से शाख ऐसी थी न। अभव्य को भी केवलज्ञान (स्वभाव) है।

आहाहा! अभव्य को भी सिद्धपद स्वभाव में है। ऐसा न मानो कि उसको पर्याय होती नहीं, इसलिए वह सिद्धस्वरूप नहीं है। ऐई..!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती।

केवलज्ञान स्वभाव आत्मा में अभव्य को है। यदि अभव्य को केवलज्ञान न हो तो केवलज्ञान की प्रकृति न हो। भगवान तो कहते हैं कि अभव्य को पाँच प्रकृति है आवरण में। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल। यह क्या कहते हैं? केवलज्ञानावरणीय है तो अभव्य को भी केवलज्ञान है। प्रगट हो या न हो, वह प्रश्न यहाँ है नहीं। यहाँ तो द्रव्यस्वभाव कहना है न। है न?

चौदह ब्रह्माण्ड के भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। एक आत्मा त्रिकाली ज्ञायक आनन्द का नाथ, अभव्य का भी ऐसा है और भव्य का भी ऐसा है। अभव्य को पर्याय में जानने में आता नहीं। इतना अन्तर है। परन्तु इतने अन्तर से वस्तु में अन्तर है (ऐसा है नहीं)। आहाहा! भव्य के आत्मा में पूर्ण ज्ञान है केवलज्ञान और अभव्य में केवलज्ञान नहीं और अल्पज्ञान है, ऐसा द्रव्य का स्वरूप है ही नहीं। द्रव्य का स्वरूप तो अभव्य को भी केवलज्ञान और अनन्त आनन्द भरा है। तब उसको अनन्त ज्ञान का आवरण केवलज्ञान ऐसा कहने में आया है। यशपालजी! समझ में आया? अभव्य कभी मुक्त नहीं होता, तीन काल में मुक्ति नहीं होती, उसको केवलज्ञान? अरे..! प्रभु! तुझे द्रव्यस्वभाव की खबर नहीं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव क्या है, वह यहाँ बहिन कहते हैं। देखो!

मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व। अनन्त गुणों का अंश प्रगट हुआ। अनन्त गुण का अंश प्रगट हुआ अनुभूति में। **समस्त लोकालोक का स्वरूप ज्ञात हो गया।** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर... आहाहा! समस्त सत्य स्वरूप लोकालोक का जैसा है, ऐसा उसके ख्याल में आ जाता है। ऐसी आत्मा की शक्ति है। अभव्य की शक्ति ऐसी केवलज्ञान की है। मात्र प्रगट नहीं होता। प्रगट नहीं होता, इसलिए केवलज्ञान नहीं है—ऐसा कौन कहता है? आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तुझे तो प्रगट होने की लायकात है। ऐसा न समझो कि हम अभव्य हैं, ऐसा

कहकर निकाल दे। मैं नहीं समझ सकूँ, ऐसा निकाल दे। तू प्रभु! केवलज्ञान का पिण्ड है। तू उसका निषेध कैसे करता है? मैं मेरे का समझ सकूँ नहीं। मैं केवलज्ञान प्रगट कर सकूँ नहीं। प्रभु! तू केवलज्ञान का पिण्ड है न। तुझसे ऐसा कैसे कहने में आता है? मैं भव्य... आहाहा! समय हो गया है।

क्या कहते हैं? धवल। धवल में ऐसा आया है, धवल में। कि यह भव्य जीव है या अभव्य जीव है, यह कैसे जानने में आता है? ऐसा प्रश्न आया है। सर्वार्थसिद्धि में प्रश्न आया है, वह व्यवहार का आया है। और वहाँ निश्चय का आया है—धवल में। यह भव्य है या अभव्य? ध्यान रखो। तो परमात्मा वहाँ कहते हैं, धवल में, मुनिराज, कि उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसका ख्याल में आता है दूसरे को। दूसरे को उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह दूसरे को ख्याल में आता है। इसलिए वह भव्य है, ऐसा निर्णय कर सकते हैं। मोक्षमार्ग का निर्णय कर सकते हैं, दूसरे दूसरे का। दूसरे दूसरे का (निर्णय) कर सके नहीं, ऐसा है नहीं। सर्व लोक ब्रह्माण्ड... आया न? चौदह ब्रह्माण्ड का। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

दूसरे में सम्यग्दर्शन-ज्ञान है या नहीं? वहाँ प्रश्न तो भव्य का है। यह भव्य जीव है या अभव्य है? परन्तु प्रश्न ऐसा चला है कि उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान दिखते हैं। क्योंकि पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति दिखती है और पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान दिखता है और उसमें लीनता भी दिखती है। ऐसा दूसरा जीव दूसरे का मोक्षमार्ग का निर्णय करता है, ऐसे भव्य जीव ऐसा निर्णय कर सकता है। ऐसा पाठ है। आहाहा! यहाँ तो अपना तो निर्णय करे। परन्तु पर का भी यथार्थ निर्णय कर सकते हैं। यह भव्य है या अभव्य? मोक्षमार्ग है या बन्धमार्ग में है? ऐसा वस्तु का स्वरूप अपना अनुभव हुआ तो चौदह ब्रह्माण्ड का पर का भी ज्ञान उसको हो जाता है। वह न हो सके, ऐसा है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)